स्वतन्त्रता सग्राम

स्वतंत्रता संग्राम

बिपनचंद्र
अमलेश त्रिपाठी
बरुण दे

अनुवाद
रामसेवक श्रीवास्तव

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

अनुक्रम

1

ब्रितानी शासन का प्रभाव

"वर्षों पहले हमने भाग्यवधू से एक प्रतिज्ञा की थी और अब वह समय आ रहा है जब हम उस प्रतिज्ञा को समग्र रूप मे या पूरी तौर पर न सही काफी दूर तक पूरा करेगे। रात के बारह बजे जबकि दुनिया नीद की गोद मे होती है, भारत नये जीवन और स्वतन्त्रता में प्रवेश करेगा। --ये वाक्य जवाहरलाल नेहरू ने 15 अगस्त 1947 को संविधान सभा और भारतीय राष्ट्र को सबोधित करते हुए कहे थे।

वे स्वतन्त्र भारत के प्रधानमंत्री की हैसियत से बोल रहे थे। सघर्ष समाप्त हो चुका था। देश स्वतन्त्र था।

लेकिन भाग्यवधू के साथ की गयी वह कौन सी प्रतिज्ञा थी जिसकी ओर नेहरूजी ने इशारा किया था ?

स्वतन्त्रता मिलने से 17 साल पहले 31 दिसंबर, 1929 को रात के ठीक बारह बजे एक अन्य अवसर पर जब घडियाल के घंटे नये वर्ष के आगमन की सूचना दे रहे थे, नेहरूजी ने लाहौर मे रावी के तट पर एकत्रित अपार जन समुदाय के सामने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से तिरंगा फहराते हुए घोषणा की कि स्वतन्त्रता आदोलन का उद्देश्य होगा--पूर्ण स्वराज्य सपूर्ण स्वाधीनता--एक सकल्प लिया गया। और यह फैसला हुआ कि भारत के लोग 26 जनवरी 1930 को आम सभाओं में भारतीय जनता की स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष करने की इच्छा की घोषणा करेंगे। वह दिन स्वतन्त्रता का दिन घोषित किया गया। उस दिन के ऐतिहासिक महत्व के ही कारण--1950 में जब भारत का नया गणतन्त्रीय संविधान तैयार हुआ तो उसे 26 जनवरी को प्रस्तुत किया गया। तब से आज तक हर वर्ष यह दिन गणतन्त्र दिवस के रूप मे मनाया जाता है।

नेहरूजी ने 'भाग्यवधू से की गयी प्रतिज्ञा' की जो बात कही थी उसका इशारा सन् 1929-30 की घटनाओं से था। उस वक्त जो प्रतिज्ञा की गयी थी वह 15 अगस्त 1947 को तब पूरी हुई जब भारत स्वतन्त्र हो गया।

लेकिन भारत की स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष सन् 1929 में शुरू नहीं हुआ। उसका प्रारंभ कई दशक पहले ही हो चुका था और यह पुस्तक भारत की स्वाधीनता और स्वतन्त्रता के उसी ऐतिहासिक सघर्ष की कहानी कहती है।

भारतीय इतिहास का प्रारंभ मसीहा दौर से कई शताब्दी पहले से है। आश्चर्य नहीं कि इस लंबे इतिहास की दिशा समान और एकरूप नहीं रही। एक लंबी अवधि तक भारत एक राष्ट्र न होकर बहुत से राज्यों के रूप में था। ऐसे भी समय आये जब इस उपमहाद्वीप का बहुत बड़ा भाग एक साम्राज्य के आधीन रहा इस पर अनेक बार विदेशियों ने हमले किये। उनमें से कुछ यहां बस गये और भारतीय हो गये और राजा या सम्राट के रूप में शासन किया। कुछ ने देश को लूटा खसोटा और धन संपत्ति बटोर कर वापस चले गये। महान उपलब्धियों के भी वक्त आये और देश को जड़ता और दुख के भी अनेक दौरों से गुजरना पड़ा। लेकिन जब हम भारत के स्वतंत्रता संग्राम की बात करते हैं तब हमारा तात्पर्य भारतीय इतिहास के उस दौर से होता है जिसमें भारत पर अंग्रेजों का शासन था और यहां के लोग विदेशी आधिपत्य को समाप्त करके स्वाधीन हो जाना चाहते थे।

भारत में ब्रितानी शासन का प्रारंभ सन् 1757 से माना जा सकता है जब ब्रितानी ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को पलासी के युद्ध में पराजित कर दिया था। लेकिन भारत में ब्रितानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक सशक्त राष्ट्रीय संघर्ष का विकास 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ। यह संघर्ष भारतीय जनता और ब्रितानी शासकों के हितों की टक्कर का परिणाम था। हितों की इस टक्कर को समझने के लिए भारत में ब्रितानी शासन के आधारभूत चरित्र और भारतीय समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का अध्ययन करना आवश्यक है। विदेशी शासन के चरित्र के ही परिणामस्वरूप भारतीय जनता में राष्ट्रीयता के भाव उठे। उसी चरित्र के कारण एक सशक्त राष्ट्रीय आन्दोलन के उद्भव और विकास के लिए भौतिक नैतिक बौद्धिक और राजनीतिक स्थितियां पैदा हुईं।

भारत में ब्रितानी शासन की अवस्थाएं

सन् 1757 से अंग्रेजों ने भारत पर अपने नियंत्रण का प्रयोग अपने निजी हितों की सिद्धि के लिए किया। लेकिन यह सोचना गलत होगा कि पूरे दौर में उनके शासन का मूल चरित्र एक सा रहा। लगभग दो सौ वर्षों के लंबे इतिहास में वह अनेक चरणों से गुजरा। ब्रिटेन के अपने सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक विकास में परिवर्तन के जो रूप सामने आये उसी के अनुसार उसके शासन और साम्राज्यवादी चरित्र तथा उसकी नीतियां और प्रभाव में भी परिवर्तन आये।

बात यहीं से शुरू की जा सकती है कि सन् 1757 से भी पहले ब्रितानी ईस्ट इंडिया कंपनी की दिलचस्पी केवल पैसा बटोरने में थी। उसने भारत और पूर्वी देशों से होने वाले व्यापार पर अपना एकाधिकार इसलिए चाहा ताकि दूसरे अंग्रेज या यूरोपीय सौदागर और व्यापारिक कंपनियां उससे प्रतिस्पर्द्धा न कर सकें। कंपनी यह भी नहीं चाहती थी कि भारतीय सौदागर देशी माल की खरीद और विदेशों में उसकी बिक्री के मामले में उनके मुकाबले में आयें। दूसरे शब्दों में कंपनी यह चाहती थी कि अपने माल को जितना भी संभव हो सके महंगी कीमत पर बेचे

और भारतीय माल को सस्ती से सस्ती कीमत पर खरीद ताकि उसे अधिकतम लाभ मिल सके। यदि व्यापार की शर्तें सामान्य होतीं और उसमें विभिन्न कंपनियां और व्यक्तियों को मुकाबले मे आने की सुविधा होती तो वह लाभ संभव नहीं होता। कंपनी के लिए अंग्रेज व्यापारियों को प्रतिस्पर्द्धा से दूर रखना इसलिए आसान था कि वह घूस तथा अन्य आर्थिक और राजनीतिक साधनों के सहारे से ब्रितानी सरकार यह आदेश प्राप्त कर लेने म सक्षम थी कि भारत और पूर्वी देशों से व्यापार करने का उसका एकाधिकार होगा। लेकिन ब्रितानी कानून अन्य यूरोपीय देशों के सौदागरों और व्यापारिक कंपनियों को इस व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा से दूर नहीं रख सका अत ईस्ट इंडिया कंपनी को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लंबी और भयानक लड़ाइयां करनी पड़ीं। चूंकि व्यापार के क्षेत्र कई समुद्र पार बहुत दूरी पर थे अत कंपनी को एक शक्तिशाली नौसेना की भी व्यवस्था करनी पड़ी।

कंपनी भारतीय सौदागरों को भी मुकाबले से दूर नहीं रख सकी क्योंकि उन्हें शक्तिशाली मुगल साम्राज्य का संरक्षण प्राप्त था। वास्तविकता यह है कि 17वीं और 18वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों म भारत के भीतर व्यापार करने का अधिकार मुगल सम्राटों या उनके क्षेत्रीय सूबेदारों का विनयपूर्वक आवेदन देकर प्राप्त करना पड़ता था। लेकिन 18वीं शताब्दी के प्रारंभ म मुगल साम्राज्य दुर्बल हो गया और दूर दराज के समुद्र तट के क्षेत्र उसके अधिकार से निकलने लगे। कंपनी ने अपनी उत्कृष्ट नौसैनिक शक्ति का अधिक से अधिक इस्तेमाल करके समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों पर न केवल अपनी उपस्थिति को बनाए रखा वरन् वह उन क्षेत्रों तथा विदेशों से व्यापार करने वाले भारतीय सौदागरों को खदेड़ती भी रही।

ध्यान देने की एक महत्वपूर्ण बात और थी। कंपनी को भारतीय भूमि पर स्थित अपने किलों और व्यापारिक चौकियों की रक्षा करनी थी। अपनी जल और स्थल सेना का रख रखाव करना था। भारत के भीतर और बीच समुद्र में अपने हितों की रक्षा के लिए लड़ाइयां करनी थीं। इसके लिए एक बड़ी रकम की आवश्यकता थी। इतना बड़ा वित्तीय साधन न तो ब्रितानी सरकार के पास था न ईस्ट इंडिया कंपनी के पास। अत इस बड़ी रकम की व्यवस्था भारत से ही करनी थी। कंपनी ने यह काम तटवर्ती क्षेत्रों के अपने किलेबंद शहरों (कलकत्ता, मद्रास और बंबई) म स्थानीय ढंग से कर लगा कर किया। अपने वित्तीय साधनों को बढ़ाने के लिए उसके लिए जरूरी हो गया कि वह भारत में अपने नियंत्रण क्षेत्र का विस्तार करे ताकि अधिक कर उगाहा जा सके।

इसी समय के आसपास ब्रितानी पूंजीवाद भी अपने विकास के सबसे अधिक संभावना-युक्त क्षेत्र में प्रवेश कर रहा था। उद्योग धंधे व्यापार तथा कृषि के अधिकाधिक विकास के लिए अपार पूंजी नियोजन की आवश्यकता थी। चूंकि उस समय इस तरह के पूंजी के निवेश के साधन ब्रिटेन म सीमित थे वहां के पूंजीपतियों ने, अपनी लुटेरा दृष्टि विदेशों पर डालनी शुरू की ताकि ब्रितानी पूंजीवाद के विकास के लिए वहां से आवश्यक धन प्राप्त किया जा सके। क्योंकि भारत अपनी धनाढ्यता के लिए प्रसिद्ध था अत मान लिया गया कि वह इस दिशा मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकने की स्थिति में है।

व्यापारिक एकाधिकार और वित्तीय साधनों पर अधिकार दोनों ही उद्देश्यों की यथाशीघ्र पूर्ति ही नहीं हुई बल्कि सन् 1750-60 के बीच बंगाल और दक्षिण भारत पराजित होकर कंपनी के राजनीतिक अधिकार में आ गये। ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशकों ने इसकी कल्पना तक नहीं की थी।

अब कंपनी को इन अधिकृत क्षेत्रों से राजस्व वसूल करने का सीधा अधिकार प्राप्त हो गया था और वह स्थानीय शासकों सामंतों और जमींदारों के पास एकत्रित धन को छीनने खसोटने में सक्षम हो गयी। कंपनी ने सामंतों-जमींदारों और राजस्व से प्राप्त अधिकांश धन का एकमात्र उपयोग खुद के तथा अपने कर्मचारियों के लाभ तथा भारत में अपने विस्तार के लिए किया। उदाहरण के लिए सन् 1765 और 1770 के बीच कंपनी ने अपनी शुद्ध आय का लगभग 33 प्रतिशत माल के रूप में बंगाल के बाहर भेजा। इतना ही नहीं कंपनी के कर्मचारियों ने भारतीय सौदागरों अलहकारों और जमींदारों से खसोटी गरकानूनी आय का बहुत बडा भाग बाहर भेजा। भारत से निकाली हुई रकम ब्रितानी पूंजीवादी विकास में लगी और उसने उनके विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अनुमान लगाया गया है कि यह रकम उस समय के ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय का लगभग दो प्रतिशत थी।

इसी के साथ साथ कंपनी ने भारतीय व्यापार और उसके उत्पादन पर एकाधिकारिक नियंत्रण प्राप्त करने के लिए अपनी राजनीतिक सत्ता का भी उपयोग किया। धीरे धीरे भारतीय सौदागर बाहर किये जाते रहे। बुनकरों और दूसरे कारीगरों को या तो अपनी उत्पादित चीजें अलाभकारी कीमत पर बेचने या बहुत कम मजदूरी पर कंपनी में काम करने के लिए मजबूर किया जाता रहा। ब्रितानी शासन के इस पहले चरण का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि प्रशासन न्याय व्यवस्था परिवहन और संचार कृषि और औद्योगिक उत्पादन की विधियों व्यापार व्यवस्था या शिक्षा और बौद्धिक क्षेत्रों में मूलभूत परिवर्तन की शुरुआत नहीं की गयी। इस अवस्था में ब्रितानी शासन उन परपरागत साम्राज्यों से बहुत भिन्न नहीं था जो अपने अधीनस्थ क्षेत्रों से लगान वसूल करते थे हालांकि ब्रितानी शासन यह काम बडी चतुरता से कर रहा था।

अपने पूर्ववर्तियों के चरण चिह्नों पर चलते हुए अंग्रेजों ने गांवों में प्रवेश करने की आवश्यकता को तब तक अनुभव नहीं किया जब तक बधे बधाये तंत्र से सफलतापूर्वक उस राजस्व की उगाही होती रही, जो आर्थिक शब्दावली मे उनके लिए अतिरिक्त राशि थी। परिणामस्वरूप जिस तरह के भी प्रशासनिक परिवर्तन किये गये उनका सर्वोपरि इस्तेमाल राजस्व की वसूली के लिए हुआ। सारा प्रयत्न इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए था कि राजस्व की वसूली का ढंग अधिक सुगम हो सके।

बौद्धिक क्षेत्र में उन आधुनिक विचारों के प्रसार का कोई प्रयत्न नहीं किया गया जिनके कारण पश्चिम में जीवन जीने का सारा ढंग ही बदल रहा था। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में केवल दो शिक्षण संस्थाएं खोली गयीं। एक कलकत्ता में और दूसरी बनारस में। दोनो ही स्थान फारसी और संस्कृत के परपरागत अध्ययन के केंद्र थे। यहा तक कि ईसाई धर्म प्रचारकों तक को कंपनी के अधिकृत भूभाग के बाहर रखा गया।

यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि ईस्ट इंडिया कपनी ने भारत पर उस समय अधिकार किया जब ब्रिटेन मे विशाल वाणिज्यिक व्यापार निगमो का युग समाप्त हो चुका था। ब्रितानी समाज में कपनी उभरती हुई सामाजिक शक्तियों की जगह पर चुकती हुई शक्तियों का प्रतिनिधित्व कर रही थी।

औद्योगिक पूजीवाद और मुक्त व्यापार का युग

ईस्ट इडिया कपनी के भारत में एक क्षेत्रीय शक्ति बनने के तत्काल बाद ब्रिटेन मे एक गहरा सघर्ष इस प्रश्न को लेकर छिड गया कि जो नया साम्राज्य प्राप्त हुआ हे वह किसके हितों को सिद्ध करेगा साल दर साल कपनी को ब्रिटेन के अन्य व्यापारिक और औद्योगिक हितो की सिद्धि के लिए तेयार होने पर मजबूर किया गया। सन् 1813 तक आते आते वह दुर्बल होकर भारत में आर्थिक या राजनीतिक शक्ति की एक छाया भर रह गयी। वास्तविक सत्ता ब्रितानी सरकार के हाथो में आ गयी जो कुछ मिलाकर अग्रेज पूजीपतियों के हित सिद्ध करने वाली थी।

इसी दौर में ब्रिटेन में औद्योगिक क्राति हो गयी ओर इसके फलस्वरूप वह विश्व के उत्पादन ओर निर्यात करने वाले देशों की अगली पंक्ति में आ गया। ओद्योगिक क्राति स्वय ब्रिटेन के भीतर होने वाले बडे परिवर्तनों की भी जिम्मेदार रही। समय बीतने के साथ ओद्योगिक पूजीपति शक्तिशाली राजनीनिक प्रभाव के कारण ब्रितानी अर्थव्यवस्था के प्रबल अग बन गये। इस स्थिति में भारतीय उपनिवेश पर शासन करने की नीतियो को अनिवार्य रूप म उनके हितों के अनुकूल निर्देशित करना था। जो भी हो साम्राज्य में उनकी दिलचस्पी का रूप ईस्ट इडिया कपनी की दिलचस्पी से बिलकुल भिन्न था क्योंकि वह केवल एक व्यापारिक निगम था। उसके बाद भारत में ब्रितानी शासन अपने दूसरे चरण म पहुचा।

भारतीय हस्तशिल्प के निर्यात पर एकाधिकार या भारतीय राजस्व का पूजी के रूप में सीधे निवेश से ब्रितानी उद्योगपतियों को बहुत लाभ नहीं हुआ। बल्कि दूसरी तरफ तैयार माल की मात्रा में निरतर वृद्धि के कारण उन्हे विदेशी बाजारों की आवश्यकता पडी। बहुत घनी आबादी और बडे क्षेत्रफल वाला देश भारत उनके लिए एक स्थायी आकर्षण था। इसी के साथ साथ ब्रितानी उद्योगों को कच्चे माल ओर अग्रेज कामगारो को खाद्य पदार्थों की आवश्यकता पडी जिसका आयात किया ही जाना था। दूसरे शब्दो म ब्रिटेन ने यह चाहा कि भारत उसका एक अधीनस्थ व्यापारिक भागीदार हो ताकि एक बाजार के रूप म उसे चूसा जा सके ओर एक आश्रित उपनिवेश के रूप म वह ब्रिटेन के लिए आवश्यक कच्चे माल और खाद्य पदार्थों का उत्पादन ओर उसकी आपूर्ति करे।

लेकिन एक समस्या थी। भारत मे जो माल आता था उसका उसे भुगतान करना पडता था। उसे एक बड़ी रकम लाभाश के रूप में कपनी के हिस्सेदारों और अवकाश प्राप्त ब्रितानी

प्रशासकों तथा सैनिक कर्मचारियों की पेंशन के लिए बाहर भेजना पड़ता था। इन अफसरों को भारत में सेवा के दौरान संचित रकम ब्रिटेन ले जाने की अनुमति भी देनी पड़ती थी। अंग्रेज सौदागरों और चाय, काफी के बागान के मालिकों के लाभ की रकम भी भारत के बाहर जानी ही थी। ब्रिटेन ने इस देश में जो पूंजी लगायी थी उसके सूद और लाभांश का भुगतान भी भारत को करना था। इस सबके लिए जरूरी था कि भारत ब्रिटेन और अन्य देशों को ज्यादा कुछ माल निर्यात करे हो। लेकिन परंपरागत ढंग से भारतीय हस्तशिल्प का जो निर्यात होता आया था वह इस वक्त तक वास्तविक अर्थों में खत्म हो चुका था। दूसरा भी महत्वपूर्ण यह था कि भारत को ऐसा कोई भी माल कंपनी की शोषणनीति के कारण निर्यात करने की अनुमति नहीं मिलती थी जो ब्रिटेन के गृह उद्योगों से प्रतिस्पर्द्धा कर सके। प्रमाण के लिए स्पष्ट है कि केवल कृषिजन्य कच्चा माल तथा अन्य अनुपालित चीजें ही निर्यात की जा सकती थी। अफीम के अलावा (जिसके आयात पर चीन ने प्रतिबंध लगा रखा था लेकिन उसके बावजूद उसके उत्पादन और निर्यात में अधिक वृद्धि हुई) भारतीय सरकार ने रूई, पटसन, सिल्क, तिलहन, गेहूं, खाल और हड्डी, नील और चाय के निर्यात को बढ़ावा दिया। इस प्रकार भारत के विदेशी व्यापार के स्वरूप में एक नाटकीय परिवर्तन आया, यद्यपि उससे कोई बेहतरी नहीं हुई। शताब्दियों से सूती कपड़े तथा हस्तशिल्प की अन्य चीजों का निर्यात करने वाला भारत 19वीं शताब्दी में सूती कपड़ा का आयात और रूई तथा अन्य किस्म के कच्चे माल का निर्यात करने वाला हो गया।

उस समय भारत जिन आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थितियों में फंसा था, उनमें वह नये काम कर ही नहीं सकता था। उसे इस तरह परिवर्तित और रूपांतरित किया ही जाना था ताकि वह ब्रितानी अर्थव्यवस्था के विकास में अपनी नयी भूमिका निभा सके। उसके परंपरागत गैरपूंजीवादी आर्थिक ढांचे को बदल दिया जाना था। भारत की ब्रितानी सरकार ने सन् 1813 के बाद यहां के प्रशासन, अर्थतंत्र और समाज में जिस तरह के परिवर्तन लाने शुरू किये उनका उद्देश्य इन्हीं हितों की सिद्धि था।

आर्थिक क्षेत्र में ब्रितानी पूंजीपतियों को भारत में निर्भय प्रवेश करने और अपनी इच्छानुसार आर्थिक क्रियाएं करने की अनुमति दी गयी। इस सबसे अलग मुक्त व्यापार की शुरुआत हुई और भारत के बंदरगाह और बाजार विलायती माल से पट गये। भारत विलायती माल को अपने यहां निःशुल्क या नाममात्र के शुल्क के बाद ले लेने के लिए विवश था। प्रशासन को भी अधिक विस्तृत और व्यापक बनाया गया। पहले उसकी जिम्मेदारी राजस्व की वसूली से लेकर व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा के लिए कानून और व्यवस्था की स्थापना तक सीमित थी। अब उसके जिम्मे विभिन्न किस्म के बहुत से काम और आ गये। प्रशासन का विस्तार हुआ और उसकी व्याप्ति गांवों तक पहुंची ताकि विलायती माल देश के भीतर दूर दराज के गांवों और छोटे कस्बों तक में पहुंच सके और वहां से निर्यात के लिए कृषिजन्य माल बाहर लाया जा सके। इस प्रकार 19वीं शताब्दी में भारत के ब्रितानी प्रशासन में तेजी के साथ व्यापक परिवर्तन हुए।

इतना ही नहीं, यदि भारतीय समाज के पूरे वैधानिक ढाचे को पूंजीवादी वाणिज्यिक आधार पर आधारित करना था तो उसके लिए उसका पुन कल्प करना जरूरी था। उदाहरण के लिए यदि आयात और निर्यात को समुन्नत करने के लिए अपेक्षित लाखों विनिमयों की प्राण प्रतिष्ठा करनी थी तो उसके लिए भी जरूरी था कि देश के बुनियादी कानून और आचार का आधार करार की पुनीतता हो। अत कानून और विधान संहिताओं के एक सर्वथा नये निकाय पर आधारित एक नयी न्याय प्रणाली का आगमन हुआ जिसका एक उदाहरण भारतीय दंड संहिता तथा दीवानी अदालत है।

राज्य के नये और विस्तृत प्रशासन और न्यायतंत्र तथा ब्रिटेन के व्यापारिक संस्थानों में नीचे की जगहों की व्यवस्था करने के लिए शिक्षित कर्मचारियों के एक विश्वसनीय समूह की आवश्यकता थी। ब्रिटेन के पास इस कार्य के लिए पर्याप्त मात्रा में जनशक्ति नहीं थी। भारत सरकार या ब्रितानी व्यापारी इन सभी जगहों पर अंग्रेजों की नियुक्ति इसलिए नहीं कर सकते थे कि सुदूर भारतीय उपनिवेश और उसकी अनुकूल न पड़ने वाली जलवायु में उन्हें ऊंचा वतन देना पड़ता। अत सन् 1833 के बाद से भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ और विस्तार किया गया।

बड़ी मात्रा में चीजों का आयात और उससे भी बड़ी मात्रा में भारी भरकम कच्चे माल के निर्यात के लिए परिवहन की सस्ती और सुविधाजनक व्यवस्था की आवश्यकता पड़ी। अत सरकार ने नदी मार्गों पर भापचालित नाव चलाने को बढ़ावा दिया और सड़कों का सुधार किया। इन सबसे अलग उसने सन् 1853 के बाद रेलपथों का ऐसा जाल बिछाने में आर्थिक सहयोग दिया जिससे देश के मुख्य नगर और बाजार इसके बंदरगाहों से जुड़ गये। सन् 1905 तक लगभग 3 अरब 50 करोड़ की लागत से 28 हजार मील के रेलपथ का निर्माण हुआ। इसी तरह एक आधुनिक डाक-तार व्यवस्था की भी शुरुआत हुई जिसकी वजह से व्यापारिक कार्यकलाप काफी हद तक सुविधाजनक हो गये।

इसी काल में ब्रितानी कूटनीतिज्ञों और उसके भारतीय प्रशासकों में एक उदार साम्राज्यवादी राजनीतिक विचारधारा का भी उद्भव हुआ। यह भरोसा कर लेने के बाद उत्पादन के क्षेत्र में ब्रिटेन को वस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर एकाधिकार प्राप्त है 19वीं शताब्दी के शुरू के 50 वर्षों में वह एकमात्र ऐसा देश रह गया जिसे पूरी तौर पर औद्योगिक दृष्टि से विकसित कहा जा सके। समुद्रों पर उसका अधिकार था, और तदंतर उसकी प्रसिद्धि दुनिया के कारखाने के रूप में हो गयी। बहुत से लोग यह विश्वास करने लगे कि जब तक मुक्त व्यापार है ब्रिटेन अपने पराग और नाममात्र के कब्जे से भारत तथा अन्य देशों में अपने आर्थिक शोषण के कार्यक्रम को उतनी खूबी के साथ चला सकता है। अत उन्होंने भारतीयों को स्थानीय शासन की कला में शिक्षित करने तथा राजनैतिक सत्ता को अंतत उनके हाथ में सौंप देने की बात करना शुरू किया। बाद के वर्षों में राजनीतिक आंदोलन में भारत के राष्ट्रवादियों ने इन घोषणाओं का खुलकर उपयोग किया।

विलायती शासन के दूसरे चरण में आर्थिक शोषण का जो नया स्वरूप सामने आया उसका मतलब सचमुच यह नहीं था कि शोषण के पुराने स्वरूप खत्म हो गये। भारत के शेष भागों को जीतने विलायती शासन की जड़ों को मजबूत करने प्रशासन और सेना म ऊंच पदों पर नियुक्त हजारों अंग्रेजों को दिये जाने वाले वेतन के भुगतान (जो उस समय के मानक से कहीं अधिक थे) प्रशासनिक और आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन में लगी रकम की व्यवस्था करने और उपनिवेशवाद को देश के उन भीतरी भागों तक पूरी तरह पहुचाने (जहा से कच्चा माल बदरगाहों पर पहुचता था) के लिए भारतीय राजस्व की आवश्यकता थी। फल यह हुआ कि विलायती शासन के दूसरे चरण में भारतीय किसान पर करों का बोझ बुरी तरह बढ़ गया।

इसी दौर में नील अफीम और चाय आदि के उत्पादन के कुछ ऐसे क्षेत्रों का जिनकी विलायती उत्पादकों की प्रतिस्पर्द्धा नहीं थी विकास किया गया। हालांकि उन पर भी या तो सरकार या भारत के विलायती पूजीपतियों का सख्त नियत्रण रहा। इतना ही नहीं भारत पर थोपा गया यह मुक्त व्यापार भी एकपक्षीय था। भारत में बनी उन चीजों पर ब्रिटेन में भारी आयात कर लगा दिया जाता था जो तकनीकी दृष्टि से बेहतर ब्रितानी या उनके अधिकार के उपनिवेशों में बने माल का अब भी मुकाबला कर सकती थीं। उदाहरण के लिए सन् 1824 में भारत में बने जो कपड़े ब्रिटेन भेजे गये उन पर 30 से लेकर 70 प्रतिशत आयात शुल्क लगा। भारतीय चीनी पर लगा शुल्क उसकी वास्तविक कीमत का तिगुना था। कुछ मामलों में ब्रिटेन में यह शुल्क 400 प्रतिशत था। इस तरह की चीजों पर से आयात शुल्क केवल तब खत्म हुआ जब उनका ब्रिटेन के लिए निर्यात एकदम बद हो गया। इसके अलावा भारतीय उत्पादकों को पूरे देश के स्तर पर विकसित बाजार का लाभ उठाने से भी वंचित रखा गया क्योंकि सरकार ने देश के भीतर चीजों पर चुगी लगाने के एक लबे चौडे ढाचे के निर्माण का फैसला कर लिया। इस रूप में भारत को एक ऐसी परस्पर विरोधी स्थिति में डाल दिया गया जिसमें एक ओर उसे अपने ही माल को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए शुल्क चुकाना पडता था और दूसरी ओर विदेशी माल कहीं भी बिना शुल्क के ले जाया जा सकता था। देश के भीतर ही चीजों पर लगने वाली चुगी सन् 1840 और 1850 के बीच केवल तब खत्म हुई जब ब्रितानी उत्पादकों ने भारतीय हस्तशिल्प के उत्पादन पर देश के बाजारों तक में अपनी स्थिति निर्णायक रूप से बेहतर कर ली।

विदेशी पूजीनिवेश और उपनिवेशों में अतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा का दौर

भारत में ब्रितानी शासन के तीसरे चरण की शुरुआत सन् 1860 के बाद मानी जा सकती है जो विश्व की आर्थिक स्थिति में तीन बड़े परिवर्तनों का नतीजा थी। धीरे धीरे पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों और उत्तरी अमेरिका में औद्योगीकरण की प्रक्रिया चालू हुई और वित्तीय साधन

तथा उत्पादन की ब्रिटेन की बेहतर स्थिति समाप्त हो गयी। फ्रास बेलजियम, जर्मनी, सयुक्त राज्य अमेरिका, रूस और बाद म जापान ने अपने यहा शक्तिशाली उद्योगो का विकास किया और अपने माल की खपत के लिए विदेशी बाजार की खोज शुरू की। पूरी दुनिया म नये बाजार के लिए एक गहरी प्रतिस्पर्द्धा शुरू हुई।

दूसरी तरफ, उद्योग मे वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग करने के फलस्वरूप 19वीं शताब्दी के अंतिम 25 वर्षो मे अनेक तकनीकी विकास की कई बडी घटनाए घटीं। आज का इस्पात उद्योग इसी दौर की देन है। सन् 1850 मे सारी दुनिया के इस्पात का उत्पादन केवल 80 हजार टन था यहा तक कि सन् 1870 में यह मात्रा 7 लाख टन से कम थी। सन् 1900 में यह उत्पादन 2 करोड 80 लाख टन पर पहुच गया। इसी दौर में आधुनिक रासायनिक उद्योग का विकास हुआ। औद्योगिक कामों में बिजली और आतरिक दहन से चलने वाले इजनों में पेट्रोल का उपयोग भी इसी काल की देन है। इसका मतलब यह है कि एक तरफ तो औद्योगिक विकास की गति तेज हुई और दूसरी तरफ उद्योगों मे बहुत बडी मात्रा में कच्चे माल की खपत हुई। ऐसा न होता तो सारा औद्योगिक ढाचा ही विसगति का शिकार हो जाता। तेज गति से होने वाले औद्योगिक विकास के कारण शहरी आबादी में निरतर वृद्धि हुई और उसके लिए अधिक से अधिक खाद्य पदार्थो की आवश्यकता पडी। कच्चे माल और खाद्य पदार्थो की प्राप्ति के लिये नये और सुरक्षित स्रोतों की विस्तृत खोज सारी दुनिया मे बडे पैमाने पर शुरू हो गयी। अफ्रीका एशिया और लातिनी अमेरिका के देशों मे खोज करने वाले राष्ट्रा में कृषि और खनिज सबधी कच्चे माल के वास्तविक या सभावनायुक्त स्रोतो पर एकाधिकार प्राप्त करने में दूसरे से बाजी मार लेने की होड लग गयी।

तीसरी तरफ उद्योग व्यापार के विकास तथा उससे आगे उपनिवेशो और उनके बाजारों के शोषण के कारण विकसित पूजीवादी देशों म अपार धन का एकत्रण शुरू हो गया। यह पूजी भी निरतर कम से कम बैंकों निगमों न्यासा तथा उत्पादन और मूल्य नियत करने वाले अतर्राष्ट्रीय सयुक्त व्यावसायिक सस्थाना में सिमट कर इकट्ठा होती गयी। इस पूजी को लगाने की जगहों की तलाश करनी थी। सचमुच इस पूजी को उन सबद्ध देशों में लगाने की बडी गुजाइश थी जहा के बहुसख्यक लोग अभी भी गरीबी में जी रहे थे। लेकिन इन देशा के मजदूर वर्ग ने सगठित होना शुरू कर दिया था अत बडे पैमाने पर पूजी लगाने और फिर औद्योगिक विस्तार के कार्यक्रम चलाने से उस वर्ग की सौदेबाजी की स्थिति बेहतर हो जाती। परिणाम होता कि पहले से चलने वाले उद्योगों में भी मुनाफे म और कमी। दूसरी तरफ यदि इस पूजी का उपयोग बाहरी देशो म कृषि या खनिज सबधी कच्चे माल के उत्पादन के लिए होता तो कई उद्देश्य एक साथ पूरे हो जाते। इस अतिरिक्त पूजी के विकास की जगह खोजनी ही थी और क्योंकि इन अविकसित देशों में मजदूरी की दर बहुत कम थी बडे मुनाफे की पूरी सभावना थी। गृह उद्योगों का अस्तित्व कच्चे माल पर निर्भर था और उसको भी आपूर्ति इसके माध्यम से हो जाती। एक बार फिर विकसित पूजीवादी देशों ने एक के बाद एक ऐसे क्षेत्रों की खोज शुरू की जहा पर वे अपनी अतिरिक्त पूजी लगा सकें।

सामाज्यवाद और विस्तारवाद ने इस चरण में साम्राज्यवादी देशों में एक महत्वपूर्ण सैद्धांतिक और राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति की। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जनता में गणतांत्रिक भावनाओं का तेजी से विकास हुआ तथा अमेरिका और पश्चिमी यूरोप के लगभग सभी देशों में उसे मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ। शासन करने वाले इन देशों के उच्च वर्ग के लोगों में यह सोच कर घबराहट पैदा हुई कि किसान और मजदूर अपने वर्ग हित की सिद्धि के लिए इस अधिकार का प्रयोग करेंगे। उन्हें यह भी आभास हो गया कि उच्च वर्ग द्वारा समाज का राजनीतिक और आर्थिक नियंत्रण करने के दिन धीरे धीरे समाप्त होने जाते हैं। साम्राज्यवाद ने एक मार्ग दिया। इसका उपयोग आम लोगों का ध्यान उस चेतना की ओर से हटा कर बाहरी भव्यता से जोड़ने उनमें कट्टरपंथी राष्ट्रवादिता देशभक्ति और आत्म-गौरव के भाव जगाने के लिए किया जा सकता था ताकि एक बार फिर उनका समाज साम्राज्यवाद के घेरे में लिपट सके। अंग्रेजों ने यह नारा लगा कर कि ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य कभी डूबता ही नहीं है उन मजदूरों के मन में गौरव और संताप का भाव जगाना चाहा जिनकी मैली कुचैली बस्तियों में वास्तविक जीवन में शायद ही कभी सूर्य चमका हो। जर्मनीवासी अपनी गौरव प्रतिष्ठा के लिए एकजुट हो गये। फ्रांसीसियों का ख्याल था कि सभ्यता का प्रसार करना उनका ध्येय है।

जापान ने एशिया और रूस ने स्लावों का मुक्तिदाता होने का दावा किया। उत्तरी अमेरिका ने दावा किया कि लातिनी अमेरिका की देखरेख की जिम्मेदारी उनकी है क्योंकि वे स्पष्टतया नियति से उसमें जुड़े हैं। वे शीघ्र ही यह विश्वास करके चलने लगे थे कि 20वीं शताब्दी अमेरिकी शताब्दी होने वाली है। विस्तार साम्राज्यवाद और राष्ट्रीय महानता के सिद्धांतों ने जनता को अपना मत उसी तरह की सरकार के पक्ष में डालने की प्रेरणा दी जिस तरह की सरकार उन्हें मतदान का अधिकार मिलने से पहले शासन करती आ रही थी। इन सभी तत्वों और शक्तियों का एक ही परिणाम निकला। यानी ऐसे पूर्ण या अर्द्धउपनिवेश जहां के बाजार कच्चे माल और पूंजी निवेश पर साम्राज्यवादी देश अपने एकाधिकार स्थापित कर सकते थे। जैसे जैसे उपनिवेशों या अर्द्धउपनिवेशों पर कब्जा करने की संभावनाएं कम होती गयीं आधिपत्य की तीखी और गहरी प्रतिस्पर्द्धा में तेजी से विकास हुआ। उपनिवेशों में दुनिया को बांटने का संघर्ष इन नयी बस्तियों वाली दुनिया के पुनर्विभाजन के संघर्ष में बदल गया।

ब्रिटेन के लिए यह सारा दौर तनाव और व्यापार से गुजरने का था क्योंकि विकसित पूंजीवादी देशों से आने वाले नये लोगों ने व्यापार और पूंजीनिवेश के क्षेत्र में बनी उसकी प्रधानता की स्थिति की आलोचना की। अतः ब्रिटेन ने अपने वर्तमान साम्राज्य पर नियंत्रण को मजबूत करने तथा उसे विस्तृत करने के लिए शक्तिशाली प्रयास शुरू किया।

भारत में ब्रिटानी शासन का तीसरा चरण इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है कि उसमें साम्राज्यवादी आधिपत्य के अंकुश को नये सिरे से तेज किया गया और इसका प्रतिबिंबन लिटन डफरिन लैन्सडाउन और सबसे अधिक कर्जन सरीखे वायसरायों की प्रतिक्रियावादी नीतियों में हुआ। चूंकि अंग्रेजों को सारी दुनिया में एक गहरी प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ा था उनका

दृष्टि में भारत ही एक ऐसा आश्रयस्थल दिखाई दिया जहा उनकी पूजी सर्वाधिक लाभदायक हो सकती थी।

सन् 1850 के बाद ब्रिटेन की बहुत बड़ी पूजी रेलवे भारत सरकार को ऋण देने तथा अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर चाय बागानो, कोयले की खानो पटसन जहाजरानी व्यापार और बैको म लगायी गयी। इस पूजी को आर्थिक और राजनीतिक खतरो का शिकार होने से बचाने के लिए जरूरी था कि भारत म ब्रितानी शासन की पकड को और अधिक मजबूर किया जाये। इस तथ्य को उस वक्त के ब्रितानी अधिकारियो और कूटनीतिज्ञो ने स्पष्ट रूप में स्वीकार किया। अत एक प्रशासनिक अधिकारी रिचर्ड टेम्पुल ने जो बबई के राज्यपाल थे सन् 1880 मे लिखा कि ब्रिटेन को हर कीमत पर भारत पर अधिकार बनाये रखना होगा क्योंकि ब्रिटेन की बहुत अधिक पूजी इस विश्वास पर इस देश में झोंक दी गया है कि ब्रितानी शासन यहा पर अनतकाल तक बना रहेगा।

ब्रिटेन का साम्राज्यवादी योजना में भारत ने भी एक और महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अफ्रीका और एशिया म ब्रितानी सत्ता का सगठन और विस्तार करने का मुख्य साधन भारतीय सना थी। इसन पूरी दुनिया में ब्रितानी साम्राज्य की रक्षा के लिए ब्रितानी ना सना के साथ साथ ना सेना के एक मुख्य आजार के रूप में कार्य किया। परिणाम यह कि इस स्थायी सेना के महगे रख रखाव मे सन् 1904 मे भारतीय राजस्व का लगभग 52 प्रतिशत लग गया।

स्वायत्त शासन म भारतीयो को शिक्षित करने की सारी बाते इस दौर मे खत्म हो गयी थीं। इनकी पुन चर्चा सन् 1918 में भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के प्रभाव के कारण शुरू हुई। बल्कि इसकी जगह पर यह घोषित किया गया था कि ब्रितानी शासन का उद्देश्य भारत को स्थायी न्यासधारिता (अमानत) या उदार स्वेच्छाचारी शासन के अतर्गत रखना है। यह कहा गया कि भौगोलिक, जातिगत, ऐतिहासिक सामाजिक और सास्कृतिक कारणो से भारत के लोग स्वय शासन कर पाने मे सदा सदा के लिए अयोग्य हो गये ह। अत ब्रिटेन को उनके लिए आने वाली कई शताब्दियो तक एक उदार और सभ्य शासन की व्यवस्था करनी है।

भारत में परिवर्तन की प्रक्रिया पहले ही शुरू हो गयी थी और वह तीसर चरण म भी जारी रही। यह बात अधिक महत्वपूर्ण हो गयी कि ब्रितानी शासन की व्याप्ति भारतीय समाज और भारत की हर जगह तक होनी चाहिये। उसके हर गाव और शहर को दुनिया की अर्थव्यवस्था स ब्रिटेन के लाभ के लिए जोड दिया जाये। लेकिन पहले की ही तरह यह परिवर्तन या रूपान्तरण सीमित या आशिक रहा। ऐसा होने के कारण भारत क ब्रितानी उपनिवेशवाद के चरित्र म मौजूद थे।

प्रथमतया जिस तरह स प्रारभिक समय म ब्रितानी जीत मे लगा राशि की पूर्ति भारतीय राजस्व से की गया उसी तरह प्रशासन तथा आर्थिक और सास्कृतिक परिवर्तन लाने म जो धन खर्च हुआ उसकी पूर्ति भी भारतीय राजस्व स की जाने वाली थी। लेकिन भारत एक गरीब देश था और उपनिवेशवाद न उसके भविष्य को कक बना दिया जबकि आर्थिक दृष्टि से

विकासशील देश आसानी से बढ़ हुए राजस्व का भार वहन कर सकता था भारत में इस तरह की राजस्व वृद्धि का मतलब अधिक कराधान करना था। इस तरह की प्रक्रिया की कुछ स्पष्ट राजनीतिक सीमाएं भी थी। जहां की अर्थव्यवस्था गड़ हो गयी हो वहां पर करों के बढ़ाने का मतलब ही एक नया सम्भव विद्रोह होता है। इतना ही नहीं भारत एक साथ ही सम्पूर्ण प्रशासनिक और सैनिक दायित्व का खर्च और शिक्षा सिंचाई सफाई व्यवस्था और आधुनिक उद्योग व विकास के लिए जरूरी धन व्यवस्था नहीं कर सकता था। वास्तव में भारत में उपनिवेशवाद में यह एक केंद्रीय अंतर्विरोधी तत्व था। औपनिवेशिक शोषण के अधिक विस्तार के लिए अंतरिक विकास की आवश्यकता थी लेकिन भारत को पिछड़ा हुआ रखा गया था अतः शोषण की इस प्रक्रिया ने ही अधिक विस्तार को असंभव बना दिया।

दूसरे जब औपनिवेशिक अधिकारियों ने भारत को आधुनिक बनाने के परिणामों की ओर ध्यान दिया तो वे उसकी प्रक्रिया को बाधित करने को विवश हुए। यहां तक कि परिवर्तन के एक छोटे से अंश ने ऐसी सामाजिक शक्तियों को जन्म दिया जिन्होंने साम्राज्यवाद और भारत में उनके शोषण के तंत्र का विरोध करना शुरू कर दिया। अतः वे औपनिवेशिक अधिकारी एक दूसरे संकट के शिकार हो गये। जिस भारत में परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव इसलिए किया गया था ताकि वह एक लाभकारी उपनिवेश बन सके उसी भारत में परिवर्तन ने साथ ही साथ ऐसे राष्ट्रवादी सामाजिक शक्तियों को जन्म दिया जिन्होंने उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष का संगठन किया और औपनिवेशिक शासन के सामने खतरा पैदा हो गया।

भारत में उपनिवेशवाद के मूल तत्व

ब्रितानी शासन के परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के अंत तक पहुंचते पहुंचते भारत एक विशिष्ट उपनिवेश में बदल गया। वह ब्रितानी उत्पादकों का एक बड़ा बाजार कच्चे माल और खाद्यान्नों का एक बड़ा स्रोत और ब्रितानी पूंजी के निवेश का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था परिवहन व्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा आधुनिक खान और उद्योग ब्रिटिश व्यापार समुद्र के तट की ओर अंतर्राष्ट्रीय जहाजरानी बैंक और बीमा कंपनियां सभी पर विदेशी नियंत्रण था। भारत ने मध्यवर्ग के हजारों अंग्रेजों की नौकरी की व्यवस्था की थी और इसके राजस्व का लगभग एक तिहाई अंग्रेजों को वेतन देने में खर्च होता ही था। भारतीय सेना ने दूर-दराज के ब्रितानी साम्राज्य की देखभाल तथा पूर्व दक्षिण पूर्व मध्य तथा पश्चिमी एशिया और उत्तरी पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका में शाही हितों की रक्षा और बढ़ोतरी में एक मुख्य औजार के रूप में काम किया।

इन सबसे ऊपर भारतीय अर्थव्यवस्था और उसका सामाजिक विकास पूरे तौर पर ब्रितानी अर्थव्यवस्था और उसके सामाजिक विकास के अधीन थे। भारतीय अर्थव्यवस्था को दुनिया की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर आश्रित होने की ऐसी स्थिति के साथ जोड़ा गया था जिसमें

श्रम का एक विचित्र प्रकार का अतर्राष्ट्रीय विभाजन था। सन् 1760 के बाद उन्हीं वर्षों म जबकि ब्रिटेन दुनिया में आगे बढे हुए पूजीवादी देशा के रूप मे विकसित एव उन्नत हो रहा था, भारत का विकास ऋणात्मक रूप में किया जा रहा था ताकि वह दुनिया के आपनिवेशिक देशो मे पिछडो का प्रतिनिधित्व कर सके। कारण आर परिणाम के सदर्भ म ये दोनों प्रक्रियाए एक दूसरे पर आश्रित थीं। व्यापार, वित और तकनीक का भारत और ब्रिटेन के बीच का आर्थिक सबधो का सारा ढाचा ही निरतर इस तरह विकसित हुआ जिसमे भारत ओपनिवेशिक परतत्रता और पिछडेपन का शिकार हुआ।

कृषि पर प्रभाव

ब्रितानी शासन ओर भारत पर उसके प्रभाव ने यहा की जनता को एक राष्ट्र के रूप में सगठित होने तथा एक शक्तिशाली साम्राज्यवाद विरोधी आदोलन को उभारने की परिस्थितिया पैदा कीं। यहा के अग्रेज प्रशासकों द्वारा ब्रिटेन की स्वार्थपूर्ण नीतियो पर अमल किये जाने से भारतीय कृषि तथा किसान वर्ग ओर उसके व्यापार तथा उद्योग सर्वाधिक प्रभावित हुए। सास्कृतिक आर सामाजिक क्षेत्रों म भी उन नीतियो का गहरा असर पडा।

अग्रेजों ने भारत को कृषिज य अर्थव्यवस्था मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण वदलाव पैदा किया लेकिन इसका उद्देश्य उत्पादन को वढाकर भारतीय कृषि का सुधार आर उससे सबद्ध लोगो की, सुख-सुविधा आर सपन्नता को सुनिश्चित करना नही था। उद्देश्य था कृषि से उपलब्ध सपूर्ण राजस्व स्वय प्राप्त करना आर भारतीय कृषि का एसी स्थिति में पड जान क लिए विवश कर देना ताकि वह आपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में एक नियत भूमिका निभा सके। पुराने सबध और सस्थान नष्ट हो चुके थे नयो का जन्म हुआ था। लेकिन ये नये रूप, न तो आधुनिकीकरण के क्षेत्र में किए गये परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करते थे न ही उनकी दिशा सही थी।

अग्रेजों ने भू राजस्व ओर लगानदारी की दो वडी पद्धतिया का सूत्रपात किया। एक थी जमींदारी पद्धति (वाद म इसी जमींदारी पद्धति को सशोधित रूप में महालवारी पद्धति के नाम से उत्तर भारत मे लागू किया गया) दूसरी थी रैयतवारी पद्धति।

जमींदारी पद्धति के अतर्गत कर देने वाल पुराने खेतिहरा राजस्व एकत्र करने वालो और जमींदारो को भूमि सबधी व्यक्तिगत सपत्ति के आशिक अधिकार देकर निजी भू स्वामियो में बदल दिया गया। इस स्थिति म काश्तकारा को प्राप्त लगान का एक बडा भाग सरकार को देना था। इसी के साथ साथ उन्हें ग्रामीण समुदाय का पूरा तार पर मालिक बना दिया गया। खेतिहर आर किसान मर्जी पर आधारित काश्तकारा' म बदल दिये गये।

रयतवारी पद्धति के अतगत सरकार खती करने वाले उन व्यक्तियों से सीधे राजस्व वसूल करती थी जिन्हें कानूनी तार पर अपने कब्जे की फसली जमीन के स्वामित्व का अधिकार प्राप्त था। लेकिन स्वामित्व का उनका अधिकार सीमित था। इसका कारण यह था कि राजस्व बदोवस्त

स्थायी ढंग से नहीं किया गया था। और यह कि राजस्व बहुत ऊंची दर से मांगा जाता था। वे प्रायः इसका भुगतान नहीं कर पाते थे।

पद्धति का नाम कुछ भी हो तकलीफ खेतिहर और किसान ही उठा रहे थे। जहां तक व्यावहारिकता का प्रश्न है उनकी हैसियत पूरी तौर पर 'मर्जी पर आधारित काश्तकार' की थी हालांकि उन्हें बहुत ऊंची दर पर लगान देने के लिए विवश किया जाता था। उन्हें न केवल बहुत से गैरकानूनी कर और महसूल देने को मजबूर किया जाता था बल्कि उनसे बेगार भी कराया जाता थी। इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि राजस्व पद्धति का नाम या प्रकृति जो भी हो परिणाम के रूप में सरकार ने भू स्वामी की हैसियत ले ली। बहुत देर से खासकर सन् 1901 के बाद लगान की दर में धीरे धीरे कमी की गयी लेकिन इस अवस्था तक पहुंचते पहुंचते भूमि संबंधी अव्यवस्था उस सीमा तक नष्ट हो चुकी थी और भू स्वामियों महाजनों और साहूकारों ने गांवों को भीतर से इतनी सख्ती से जकड़ लिया था कि लगान में कमी करने से खेतिहर किसानों को व्यावहारिक अर्थों में कोई लाभ नहीं था।

भारत की कृषिजन्य अर्थव्यवस्था के लिए ब्रिटेन ने जो नीति अपनाई उसकी वजह से एक बड़ी बुराई यह पैदा हुई, कि देश में एक प्रभावशाली आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के रूप में कर्ज देने वाले महाजन वर्ग का उदय हुआ। ऊंची दर पर लगान की मांग और उसकी वसूली के सख्त तरीकों के कारण कर भुगतान के लिए खेतिहर-किसानों को अक्सर कर्ज लेना पड़ता। अत्यधिक सूद देने के अलावा फसल तैयार हो जाने पर उसे अक्सर अपना अनाज सस्ते भाव पर बेच देने के लिए विवश कर दिया जाता। अपनी चिरकालिक गरीबी से विवश किसान को खास तौर पर सूखा अकाल और बाढ़ के दिनों में महाजन की शरण लेनी पड़ती थी। दूसरी तरफ महाजन अपने लाभ के लिए नयी न्याय व्यवस्था और प्रशासन तंत्र का तिकड़मपूर्ण प्रयोग करने में समर्थ था। सच्चाई यह है कि इस मामले में खुद सरकार ने ही उसकी मदद की क्योंकि बिना महाजन के सहयोग के न तो समय के भीतर लगान की वसूली हो पाती न ही कृषि-उपज के निर्यात के लिए बंदरगाह तक पहुंचाई जा सकती। यहां तक कि तिजारती फसलों का निर्यात के लिए तत्काल प्राप्त करने में सरकार को इन महाजनों का सहारा इसलिए लेना पड़ता था ताकि वे किसानों को वित्तीय मदद देकर राजी कर सकें। अतः यह आश्चर्यजनक नहीं कि समय के बीतने के साथ इस महाजन वर्ग ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक प्रमुखतापूर्ण स्थिति प्राप्त करना शुरू कर दिया। जमींदारी और रैयतवारी दोनों ही पद्धतियों में बहुत बड़े पैमाने पर जमीन वास्तविक खेतिहरों के हाथों से निकल कर महाजनों व्यापारियों अधिकारियों और धनी किसानों के हाथों में चली गयी। परिणाम यह हुआ कि भू स्वामित्ववाद पूरे देश में भूमि संबंधी रिश्तों का एक प्रभुत्वपूर्ण अंग बन गया।

लगान वसूल करने वाले बिचौलिये भी पैदा हुए। इस प्रक्रिया को उप भूप्रदान कहा जाता है। इन नये भू स्वामियों और जमींदारों का जमीन से संबंध पुराने जमींदारों से भी कम था। यह तकलीफ उठाने के बदले कि लगान की वसूली के लिए एक मशीनरी का संगठन हो उन्होंने बिचौलियों के नाम अपने अधिकार को उपपट्टा कर दिया।

इस प्रकार ब्रितानी शासन के प्रभाव स्वरूप भूमि सबधी रिश्तो के ऐसे नये ढाचे का विकास आ जो अत्यत प्रतिगामी था, अग्रगामी का एकदम उल्टा। इस नयी पद्धति म कृषि के विकास ी रत्ती भर भी सभावना नहीं थी। सामाजिक धरातल पर सतह से लेकर शिखर तक एक ये सामाजिक वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ। शिखर पर भू स्वामी, बिचौलिये और कर्ज देने वाले हाजन तथा सतह पर मर्जी के काश्तकार, बटाईदार और खेतिहर मजदूर पैदा हुए। यह नया वरूप न तो पूजीवादी था न सामतवादी और न ही मुगलो की पुरानी व्यवस्था की कोई कडी ा। यह एक नया ढाचा था जिसे उपनिवेशवाद ने बनाया। यह अर्द्ध-सामती और अर्द्ध-औपनिवेशिक कहा जाता है।

इस सबका सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम यह था कि खेती के तरीकों म सुधार करने या अधिक उत्पादन के लिए उसे आधुनिक ढग से विकसित करने का सर्वथा कोई प्रयत्न ही नहीं किया गया। खेती करने का ढग अपरिवर्तित रहा। बहतर किस्म के औजार अच्छे बीज, और विभिन्न किस्म के खाद और उर्वरको के इस्तेमाल की कोई शुरुआत ही नहीं की गयी। दरिद्रता के मारे हुए खेतिहर किसानो के पास कृषि को समुन्नत करने के साधन नहीं थे। भू-स्वामियों में ऐसा करने का उत्साह नहीं था और उपनिवेशित सरकार का बर्ताव एक विचित्र किस्म के जमींदार का था। उसकी दिलचस्पी अधिक राजस्व खसोटने मे थी और उसने भारतीय कृषि को विकसित और समुन्नत करने या उसका आधुनिकीकरण करने की दिशा म कोई कदम नहीं उठाया।

परिणाम था कृषि के उत्पादन म एक लब समय तक का गतिरोध। कृषि सबधी आकडे केवल 20वीं शताब्दी के ही उपलब्ध ह और यहा पर तस्वीर बहुत निराशाजनक है। सन् 1901 और 1919 के बीच जबकि सारे कृषिजन्य उत्पादन में 14 प्रतिशत की गिरावट आयी खाद्यान्नों के प्रति व्यक्ति उत्पादन मे इस गिरावट का प्रतिशत 24 था। काफी दूर तक यह गिरावट सन् 1918 के बाद आयी।

उद्योग-व्यापार पर प्रभाव

कृषि की ही तरह भारत की ब्रितानी सरकार ने उद्योग और व्यापार पर भी अपना नियत्रण शुद्ध रूप मे ब्रितानी हितों के पोषण की दृष्टि से किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत उपनिवेशवाद (जो एक व्यापारिकक्राति थी) क प्रभाव म आया और विश्व बाजार से जुड गया लेकिन वह अपनी हैसियत को अधीनस्थ बनाने के लिए विवश कर दिया गया। खास तौर से सन् 1858 के बाद विदेशी व्यापार में बडी वृद्धि हुई। सन् 1834 में यह व्यापार 15 करोड का था जो 1858 मे 60 करोड और 1899 मे 2 अरब 13 करोड हो गया। सन् 1924 में यह बढकर 7 अरब 50 करोड की ऊचाई पर पहुंच गया लेकिन वृद्धि ने न तो भारतीय अर्थव्यवस्था के किसी स्वच्छ पक्ष का प्रतिनिधित्व किया न ही भारतीय जनता के कल्याण में इसका कोई अवदान

रहा क्योंकि इसका इस्तेमाल हो भारतीय अर्थव्यवस्था को औपनिवेशिक और ब्रिटिश पूंजीवाद का आश्रित बनाने के लिए मुख्य औजार के रूप में किया गया था। भारत के विदेशी व्यापार का विकास न तो स्वाभाविक था न ही सामान्य। इसका पोषण साम्राज्यवाद के हितों की सिद्धि के लिए बनावटी ढंग से किया गया था। विदेशी व्यापार की बनावट और उसकी प्रकृति में असन्तुलन था। ब्रिटेन में उत्पादित वस्तुओं का देश में ढेर लगा दिया था और उसे मजबूर कर दिया गया था कि वह ब्रिटेन तथा अन्य बाहरी देशों की आवश्यकता के अनुसार कच्चे माल का उत्पादन तथा निर्यात करे।

अतः एक बात और। विदेशी व्यापार ने देश के भीतर के वितरण को बुरी तरह प्रभावित किया। ब्रितानी नीति ने साधनों को किसानों और कारीगरों से छीनकर सौदागरों, महाजनों और ब्रितानी पूंजीपतियों के हाथों में पहुंचाने में मदद की।

इस दौर के भारत के विदेशी व्यापार का एक विशिष्ट पक्ष यह था कि आयात की तुलना में निर्यात में निरंतर वृद्धि हुई। हमें यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि यह भारत के लिए लाभकारी था। इस निर्यात का मतलब भारत के धन और साधन का बाहर जाना था क्योंकि इसके नाम पर भारत बाहरी देशों पर भविष्य में कोई दावा नहीं कर सकता था। हमें यह अवश्य ही याद रखना चाहिए कि विदेशी व्यापार का विपुल भाग विदेशी हाथों में था और लगभग सारा माल विदेशी जहाजों पर ही बाहर भेजा जाता था।

ब्रितानी शासन का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव था शहरी और ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग का ह्रास और विनाश। न केवल भारत के हाथ से एशिया और यूरोप के विदेशी बाजार निकल गये वरन् भारतीय बाजार भी बड़े पैमाने पर मशीनों द्वारा बनाये सस्ते माल से पट गये। परिणाम था देशी हस्तशिल्प की समाप्ति। देशी उद्योगों की बरबादी और रोजगार के अन्य साधनों के अभाव में लाखों की संख्या में कारीगर खेती की ओर तेजी से मुड़े। अतः कृषि पर आबादी का दबाव बढ़ गया।

आधुनिक उद्योगों का विकास

ब्रितानी शासन ने आधुनिक पूंजीवादी उद्योग के पनपने की परिस्थितियां पैदा की। इसने पूरे देश में बड़े पैमाने पर परिवहन की व्यवस्था करके एक अखिल भारतीय बाजार बनाया। भारत में बहुत दिनों से कृषि और ग्रामीण उद्योगों के बीच एक सामंजस्य बना हुआ था। लेकिन चूंकि घरेलू ढंग के ग्रामीण उत्पादन का स्वरूप (जिसमें हस्तशिल्प उद्योग शामिल थे) या तो नष्ट या बुरी तरह छिन्न विच्छिन्न हो गया था, ग्रामीण उद्योगों और कृषि के बीच का रिश्ता भी खत्म हो गया। लाखों की संख्या में कारीगर बेरोजगार हो गये थे। नयी राजस्व व्यवस्था में लाखों खेतिहर अपनी जमीन से वंचित हो गये। लेकिन इन दोनों स्थितियों के फलस्वरूप एक स्वतंत्र मजदूर शक्ति का भी जन्म हुआ। इन मजदूरों के पास रोजी रोटी के लिए सिवाय इसके कोई

चारा नहा था कि व दनिक मजदूरी पर काम करें। इस प्रकार एक आधुनिक पूजीवादी उद्योग के लिए आवश्यक दा चीज—अखिल भारतीय वाजार आर प्रचुर सख्या में सस्ते मजदूर—उपलब्ध हा गयी। आधुनिक उद्योगा की स्थापना का काम 19वीं शताब्दी के अतिम 50 वर्षो म निरतर चला।

भारत म आद्योगिक विकास 20वीं शताब्दी के प्रारभ तक मुख्यतया चार प्रकार क उद्यागा तक सीमित रहा। सूती कपडे आर पटसन कायला खान आर चाय बागान। कुछ आर छोटे उद्यागों जसे रुई की ओटाई-जमाई ऊनी कपडे आटा पीसन धान कूटने आर कडिया चारन की मिल चमडे के शोधनालय कागज ओर चीनी क कारखाने, नमक कहवा सुवचल पेट्रोल और लोह की खाना आदि को विकसित किया गया। इजीनियरी रेलवे आर लोहे तथा पीतल की ढलाइ के कुछ कारखान भा स्थापित किये गये।

इन तथ्या क आधार पर हमे यह कल्पना नहा करनी चाहिए कि एक आद्यागिक क्राति की आधारशिला रखी जा रही थी। ऐसा दूर दूर तक नही था सबसे पहली बात ता यह कि अधिकाश आधुनिक उद्याग जा सचमुच विकसित हुए विदेशी पूजीपतिया के नियत्रण मे थे। दूसरे हालाकि इस दार में आद्यागिक विकास नियमित आर क्रमवद्ध रूप म हुआ लेकिन उसकी गति अत्यत मद्धिम थी। दश की विशालता आर उसकी उस वक्त की जनसख्या की तुलना म आद्यागाकरण क प्रयत्न इतन नाम मात्र क थ कि उसक सदभ म आद्यागाकरण शब्द का प्रयाग ही गलत लगता ह। यहा तक कि सन् 1913 तक फेक्टरी कानून के अतर्गत आने वाले मजदूरों की कुल सख्या 10 लाख से कम था।

प्रथम विश्व युद्ध आर सन् 1930-40 के वीच की मदी ने भारत के पूजीपति वर्ग के लोगा को पहली वार अस्थायी तार पर (व्यावसायिक दिशा म) आग वढन का अवसर दिया। विदेशी आयात से कोइ प्रतिस्पद्धा नहीं थी आर सरकार भी भारतीय पूजीपतिया व्यापारियों आर ठेकेदारों को माल की आपूर्ति क वडे वड आदश दने को विवश कर दी गयी थी। इस दार में भारतीय पूजीपतिया न पर्याप्त लाभ कमाया लेकिन युद्ध की समाप्ति के साथ विदेशी प्रतिस्पर्द्धा फिर शुरू हा गयी ओर जल्द ही उद्योगा में मदी या निष्क्रियता का समय आ गया।

इस प्रकार दखा जा सकता ह कि सन् 1947 तक भारत का औद्योगिक विकास मद्धिम आर वाधित रहा। आद्यागिक क्राति का प्रतिनिधित्व ता दूर उसकी शुरुआत तक नही हुई। इसमें अधिक महत्व का बात यह ह कि सीमित विकास की स्वतत्रता नहीं थी वह भी विदेशी पूजी पर आश्रित था। दूसरे यह कि विकास का ढाचा ही एसा वनाया गया था कि उसका ओर अधिक विस्तार ब्रिटेन पर आश्रित रहे। वडी पूजी से उत्पादित माल आर रसायन उद्योगा का लगभग पूरा अभाव था। इसके विना उद्योग का स्वायत्त आर तेज विकास मुश्किल से हो पाता। मशीनी आजार बनाने ओर धातुशोधन के उद्योग तो सही अर्थो म थे ही नहीं। इतना ही नही तकनीक के क्षेत्र म भारत पूजीवादी दुनिया पर पूरी तार स आश्रित था। देश मे किसी भी प्रकार का तकनीकी अनुसधान कार्य नहीं किया गया।

संक्षेप में भारत में एक वाणिज्यिक परिवर्तन आया, औद्योगिक क्रांति नहीं हुई। फलस्वरूप एक स्वतंत्र औद्योगिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की ओर न होकर एक आश्रित, अर्द्धविकसित औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की ओर था। ब्रितानी शासन के अंतर्गत भारत की औद्योगिक प्रगति का एक नियेधक पक्ष और था और उसे देश के कुछ क्षेत्रों और नगरों में केंद्रित कर दिया गया था। यहां तक कि सिंचाई की सुविधाओं और कारखानों के लिए बिजली का बंटवारा भी बहुत असमान अनुपात में किया गया था। इसकी वजह से आय के स्वरूप, आर्थिक विकास और सामाजिक स्तरीकरण में एक बडी क्षेत्रीय असमानता बढी।

भारत में ब्रितानी शासन का एक बडा कुपरिणाम यह था कि दरिद्रता अपनी चरम सीमा पर रही और देश के अधिसंख्य लोग सामान्य समय में जिंदा रहने के लिए आवश्यक न्यूनतम से भी कम पर गुजारा करते रहे और जब देश अकाल या बाढ की चपेट में आया तब लाखों की संख्या मे मरते रहे। प्रति व्यक्ति आय कम थी और बेरोजगारी बहुत फैली हुई थी। दादाभाई नौरोजी ने सन् 1880 में यह दिखाया कि यहां का जेल के एक अपराधी के खाने-कपडे पर एक भारतीय की औसत आमदनी से 50 प्रतिशत अधिक खर्च किया जा रहा था। इस दरिद्रता का परिणाम रहा दुर्बल स्वास्थ्य, आयु की क्षीणता और समय से पहले मृत्यु। लोगों की यह दरिद्रता स्पष्ट रूप से 19वीं शताब्दी के अंतिम 50 वर्षों में निरंतर पडने वाले उन अकालों में दिखी गयी जिससे देश तहस-नहस हो गया था। सन् 1860 और 1908 के बीच के 20 वर्ष अकाल के वर्ष रहे। एक अनुमान के अनुसार सन् 1854 से लेकर 1901 के बीच अकाल से लगभग 2 करोड 90 लाख व्यक्तियों की मृत्यु हुई। इन अकालों से ही जाहिर हो गया कि दरिद्रता और दीर्घकालिक भुखमरी ने उपनिवेशित भारत में गहरी जड जमा ली थीं।

भारत की दरिद्रता उसके भूगोल, या प्राकृतिक साधनों की कमी, या यहां के लोगों के चरित्र या क्षमता में अंतर्निहित किसी दोष से पैदा नहीं हुई थी। न ही वह मुगलकाल या पूर्व-ब्रितानी अतीत का अवशेष थी, यह दरिद्रता पिछले दो दशकों की देन थी। उसके पहले तक भारत पश्चिमी यूरोप के देशों से ज्यादा पिछडा हुआ नहीं था। न ही उस समय के रहन सहन के स्तर में दुनिया के अन्य देशों की तुलना में कोई बडा अंतर था। यथार्थ यह है कि जिस दौर में पश्चिमी देश विकसित और संपन्न हो रहे थे, भारत के कंधे पर आधुनिक उपनिवेशवाद का जुआ रखकर उसे विकसित होने से वंचित कर दिया गया। आज के बहुत से विकसित देशों का विकास लगभग पूरी तरह उसी दौर में हुआ जिसमें भारत पर अंग्रेजों का शासन था। उनमें से अधिसंख्य सन् 1850 के बाद तक यही करते रहे। सन् 1750 तक दुनिया के विभिन्न देशों के रहन-सहन के स्तर में बडा फर्क नहीं था। इस संबंध में यह बात दिलचस्पी के साथ ध्यान देने की है कि ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति का प्रारंभ और बंगाल पर उनकी विजय का संयोगवश समय एक ही है।

मूल तथ्य यह है कि जिन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रक्रियाओं ने ब्रिटेन की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति, और उसके औद्योगिक विकास को जन्म दिया उन्हीं प्रक्रियाओं

से भारत के सामाजिक और सास्कृतिक पिछडपन तथा उसके अपेक्षा से कम आर्थिक विकास का भी जन्म हुआ और इस स्थिति को बदस्तूर रखा गया। इसक कारण भी स्पष्ट ह। ब्रिटन ने भारत की अर्थव्यवस्था का अपनी अथव्यवस्था के अधीन रखा और भारत की मूलभूत सामाजिक प्रवृत्तियों का निरूपण अपनी आवश्यक्ताओ के अनुसार किया। परिणाम भारत के कृषि और उद्योग मे गतिरोध का आना जमींदारा भू स्वामिया राजाओ महाजनों व्यापारिया पूजीपतिया और विदेशी सरकार क अधिकारिया द्वारा उसके किसानों मजदूरा का शोषण ओर दरिद्रता बीमारी, और अर्द्ध भुखमरी की स्थिति का विस्तार।

सास्कृतिक और सामाजिक क्षेत्रों में प्रभाव

ब्रितानी शासन के साथ साथ पश्चिम से एक सबध भी जुडा ओर वे आधुनिक विचार जो पहले पहल पश्चिमी यूरोप में विकसित हुए थ भारत म आये। यदि अग्रज भारत में आये ही न होते तो यह देश उन परिवर्तनो से अछूता रह गया होता जो 18वीं और 19वीं शताब्दी म पश्चिम म आये थे। परिवर्तन की हवा निश्चय ही भारतीय तट पर भी पहुची होती क्योंकि इस दश ने कभी भी कूपमडूकता की नीति नही अपनायी। शताब्दियो से इसने न केवल एशिया बल्कि यूरोप के देशो स यात्रा और व्यापार के जरिये सपर्क स्थापित कर लिया था। यूरोप या अन्यत्र कही जो घटनाए घटीं और पश्चिम में जो नय विचार आये, उनके समाचार इन्हीं साधनो से 18वीं शताब्दी में ही भारत म पहुचने लगे थे। लेकिन यह सभव है कि इस प्रक्रिया की गति मद्धिम रही होती, और इसम बहुत समय लगा होता। ब्रितानी शासन ने उन्हें शीघ्र भारत पहुचाने में न केवल मदद की बल्कि विदेशी आधिपत्य की प्रकृति के ही कारण उन प्रभावो का तेजी से विस्तार हुआ और वे देशी सदर्भो से जुडकर सार्थक हो गये।

प्रभुसत्ता मानववाद, जनतत्र ओर युक्तिवाद ने भारत के लोगों के बाद्धिक जीवन को प्रभावित करना शुरू किया और उनम क्रांतिकारी परिवर्तन आये। इन नये विचारो से न केवल भारतवासियो को अपनी अर्थव्यवस्था सरकार और समाज के गुण-दोष पर विवेचक दृष्टि से विचार करने बल्कि भारत म ब्रितानी साम्राज्यवाद की वास्तविक प्रकृति को समझने म भी मदद मिली।

आधुनिक विचारो का प्रसार कई माध्यमो राजनैतिक दलों छापाखाना, प्रचार पुस्तिकाओं और सार्वजनिक मचों स हुआ। आधुनिक शिक्षा के प्रसार की जो शुरुआत सन् 1813 के बाद *सरकार ईसाई धर्म के प्रचारको और भारतीयों के निजी प्रयत्नों द्वारा हुई*, उसने भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि यह भूमिका पूरे तोर पर अतर्विरोधों स भरी हुई ओर सकीर्ण रही।

पहली बात यह कि आधुनिक शि ा का प्रसार बहुत सीमित था। यह लगभग सा वर्षो तक परपरागत शिक्षा व्यवस्था की क्षतिपूर्ति करने म असमर्थ रहा। विदेशी सरकार ने प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा की उपेक्षा की। उच्चतर शिक्षा के प्रति तो उसका दृष्टिकोण सन् 1858

के तत्काल बाद ही विद्वेषपूर्ण हो गया था। जैसे ही बहुत से शिक्षित भारतीयों ने हाल ही में अर्जित अपने आधुनिक ज्ञान का प्रयोग ब्रितानी शासन की साम्राज्यवादी और शोषक प्रकृति का विश्लेषण और आलोचना तथा साम्राज्यवाद विरोधी राजनैतिक आंदोलन के संगठन में किया ब्रितानी शासकों ने उच्च शिक्षा में कटौती के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया। वास्तव में सरकार उच्च शिक्षा के प्रसार को रोकने के अपने प्रयत्न में असफल रही। क्योंकि एक बार शुरू हो जाने के बाद स्तर में निरंतर गिरावट आने के बावजूद जनता की दबाई न जा सकने वाली माँग के कारण उसका क्रम चलता रहा।

यदि उस शिक्षा प्रणाली ने राष्ट्रवादिता के वाहक की भूमिका निभाई तो यह भूमिका इस रूप में अप्रत्यक्ष थी कि उसने शिक्षार्थियों को भौतिक तथा सामाजिक विज्ञान तथा कला विषयक आधारभूत साहित्य उपलब्ध किया जिससे उनकी सामाजिक विश्लेषण करने की क्षमता को प्रोत्साहन मिला। अन्यथा उस प्रणाली का ढांचा स्वरूप उद्देश्य ढंग और विषयवस्तु तथा पाठ्यक्रम सभी कुछ इस तरह तैयार किये गये जिनसे उपनिवेशवाद के हितों की सिद्धि होती थी।

उपनिवेशवादी प्रकृति के कारण भारतीय शिक्षा के जो कतिपय अन्य पक्ष उभरे उन पर भी ध्यान देना चाहिए। आधुनिक उद्योग के उद्भव और विकास के लिए आधुनिक तकनीकी शिक्षा की प्रारंभिक आवश्यकता होती है। एक पक्ष यह है कि उस शिक्षा की पूरी उपेक्षा की गयी। दूसरा पक्ष यह कि शिक्षा के माध्यम के लिए भारतीय भाषाओं की जगह पर अंग्रेजी पर बल दिया गया। इसकी वजह से शिक्षा का न केवल जनता में प्रसार रुक गया बल्कि शिक्षित समुदाय और आम जनता के बीच भाषाई और सांस्कृतिक खाई पैदा हो गयी। शिक्षा के लिए आवश्यक फंड की सरकार द्वारा अस्वीकृति के कारण धीरे धीरे उसके स्तर में ह्रास आया और वह अत्यंत नीचे आ गया और क्योंकि विद्यार्थियों को स्कूलों-कालेजों में फीस देनी पड़ती थी अतः शिक्षा पर कस्बों और शहरों में रहने वालों तथा मध्य और उच्च वर्ग के लोगों का वस्तुतया एकाधिकार हो गया।

नये विचार एक नया आर्थिक और राजनीतिक जीवन तथा ब्रितानी शासन ने भारतीय लोगों के सामाजिक जीवन पर एक गहरी छाप छोड़ी। इसकी अनुभूति पहले शहरी क्षेत्रों में हुई। बाद में इसने गांवों में भी प्रवेश किया। आधुनिक उद्योग संचार के नये साधन विकसित होता शहरीकरण तथा कारखानों दफ्तरों अस्पतालों और स्कूलों में स्त्रियों की अधिकाधिक नियुक्ति से सामाजिक परिवर्तन में तेजी आयी। सामाजिक अलगाव और जातिगत कट्टरपंथिता समाप्त हो रही थी। भूमि और ग्रामीण संबंधों के पूरी तरह छिन्न भिन्न हो जाने की वजह से देहाती क्षेत्रों में जातीय संतुलन बिगड़ गया। हालांकि बहुत सी बुराइयां बनी हुई थीं लेकिन पूंजीवाद के प्रवेश ने सामाजिक हैसियत को धन का आश्रित बना दिया और लाभ कमाना सर्वाधिक चाहा जाने वाला सामाजिक काम हो गया।

शुरू शुरू में उपनिवेश सरकार की नीतियों ने सामाजिक सुधार को प्रोत्साहन दिया। भारतीय

समाज को आधुनिक बनाने के प्रयत्न हुए ताकि देश पर आर्थिक अकुश लग सके तथा ब्रितानी शासन की जड मजबूत की जा सके। भारत की जाति व्यवस्था से लिपटे घोर सामाजिक अन्याय और समाज मे स्त्रियो की हीन स्थिति की तरफ भी कुछ अधिकारियो का ध्यान लगा। इसका कारण उसकी इसानी भावना था और इसने कुछ दूर तक एक भूमिका निभायी। इस अवस्था मे भारतीय समाज के सुधार मे ईसाई धर्म प्रचारको का भी योगदान रहा। लेकिन शीघ्र ही उपनिवेशवाद के दीर्घकालीन हित और उसकी मूलभूत अनुदान प्रकृति का आग्रह प्रबल ढग से सामने आ गया और सामाजिक सुधार की उपनिवेशवादी नीति बदल दी गयी। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजो ने सुधारको को समर्थन देना बद कर दिया और वे धीरे धीरे समाज के उन लोगों के पक्ष में आ गये जो कट्टर और रूढिवादी थे।

जो भी हो, अंग्रेजो ने जिस सामाजिक नीति का अनुसरण किया था वह निष्क्रिय नहीं रह सकी। राष्ट्रवादिता की बढती हुई चुनौतियो का मुकाबला करने के लिए शासको ने तेजी के साथ **फूट डालो और राज्य करो** की नीति अपना कर साम्प्रदायिकता और जातिवाद को सक्रिय प्रोत्साहन दिया। परिणाम यह हुआ कि समाज की प्रतिक्रियावादी शक्तिया प्रभावशाली हुईं।

जनता के मन मे बौद्धिक और राजनीतिक स्तर पर जो हलचल पैदा हुई उसने भी सामाजिक परिवर्तन के आदोलन को आगे बढाया। लेकिन सामाजिक परिवर्तन की सबसे अधिक प्रबल शक्तिया तब उभरीं जब छोटी जाति के लोगों तथा स्त्रियों ने अपनी दलित स्थिति के प्रति जागरूक होकर समाज पुनर्प्रतिस्थापन के लिए सघर्ष करना शुरू किया। 19वीं शताब्दी के अत मे ज्योतिबा फुले सरीखे लोगो के नेतृत्व मे निचली जाति का एक प्रभावशाली आदोलन निर्मित हुआ। इसी तरह दक्षिण भारत तथा केरल में सन् 1920-30 के बीच उच्च वर्ग के सामाजिक-आर्थिक उत्पीडन के विरुद्ध निम्न वर्ग ने स्वय को सघर्ष के लिए सगठित किया। स्त्रिया और आदिवासी लोग भी अपने अधिकारों की रक्षा मे उठ खड़े हुए। साम्राज्यवाद के विरुद्ध सघर्ष मे सभी लोगों को तयार करने के लिए राष्ट्रीय आदोलन ने प्रतिबद्धता के स्वर मे घोषणा की कि उसका उद्देश्य धर्म जाति और स्त्री पुरुष की विशिष्टताओ को समाप्त करना है। इतना ही नहीं प्रदर्शनों मे आम जनता की हिस्सेदारी सार्वजनिक सभाओं लोकप्रिय आन्दोलनों मजदूर सघो और किसान सभाओं ने जातीयता और आरोपित वरिष्ठता की धारणा को दुर्बल किया।

भारतीय सस्कृति का आधुनिकीकरण एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष था। एक ओर भारतीय समाज के रूढिवादी और प्रतिक्रियावादी वर्ग ने आधुनिक सस्कृति की शुरुआत का विरोध इसलिए किया ताकि उनकी शिकार अपनी सामाजिक और सास्कृतिक हैसियत की रक्षा कर सकें लेकिन दूसरी ओर मध्य और उच्च श्रेणी के कुछ खास वर्ग के भारतीय उसकी निरोधी प्रवृत्ति से दुखी हुए। उन्होंने पश्चिमी जीवन और सस्कृति के स्वस्थ मानवतावादी और वैज्ञानिक तत्वों को सावधानीपूर्वक अपनाने के बजाये बिना परीक्षण किये ही उनका अधानुकरण किया। उन्होंने यूरोपीय तौर-तरीकों और रीति-रिवाजों की बन्दर की तरह नकल की। उन्हें यह अहसास नहीं

रहा कि आधुनिकता का प्रश्न सोचने विचारने की दृष्टि और मूल्यों से जुड़ा हुआ है न कि बातचीत करने के तरीके पोशाक या खान की आदतो से। उन्होंने यह महसूस नहीं किया कि आधुनिक विचार और संस्कृति को भारतीय संस्कृति में सुगठित करके ही सब से अच्छी तरह अपनाया जा सकता है।

एक बार फिर इस प्रतिभास की जड़ वापस जाकर उपनिवेशित नीतियों से जुड़ीं। भारतीयों को 'राज' की वफादार प्रजा और अपने माल का बेहतर ग्राहक बनाने के लिए अंग्रेजों ने अपने उपनिवेश भारत पर अंग्रेजी संस्कृति थोपने का हर प्रयत्न किया।

ब्रितानी लेखकों और कूटनीतिज्ञों ने भी भारतीय समाज और संस्कृति की आलोचना भारत पर अपने राजनीतिक और आर्थिक शासन का औचित्य सिद्ध करने के लिए की। उन्होंने घोषणा की क्योंकि भारत के समाज और संस्कृति में ही बुनियादी दोष है अतः वहा के लोगों की नियति ही यह है कि वे अनतकाल तक विदेशियों द्वारा शासित होते रहे। इन दोनों ही चीजो की भारत मे गहरी प्रतिक्रिया हुई। बहुत से भारतीयो ने स्वशासन सबधी अपनी योग्यता को सिद्ध करने के लिए भारत के दूरस्थ अतीत को महिमा मडित करना आवश्यक समझा। दूसरो ने पश्चिमी सभ्यता की नकल करने वालो को विषय बनाकर उनकी खिल्ली उडाई और आधुनिक विचार और संस्कृति के अतस्थापन का विरोध किया। उनका विश्वास था कि अपनी सांस्कृतिक स्वायत्तता को सुरक्षित रखने का सबसे अच्छा तरीका होगा एक बार फिर अपने ही भीतर झाकना। हालाकि इस तरह से सोचने वालो की संख्या कम थी लेकिन उनका एक निश्चित प्रभाव लोगो पर (खास तौर से शहरो के निम्न-मध्य वर्ग पर) रहा।

ब्रितानी शासन ने भारत के सपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र को एक शासन के अधीन ला दिया। उसने समान प्रशासन और कानून लागू करके देश को एकबद्ध भी किया। सचार के आधुनिक तरीको (रेल तार की आधुनिक व्यवस्था सडकों का विकास और मोटर परिवहन) ने भी एकबद्धता की दृष्टि से वैसा ही असर डाला। गावो और स्थानिक जगहो की आर्थिक आत्मनिर्भरता के विनाश और भीतरी व्यापार के विकास ने भी एकबद्ध भारतीय अर्थव्यवस्था के उभार की परिस्थितिया पैदा की। आधुनिक उद्योगो ने कच्चे माल के स्रोत और बाजार दोनो ही दृष्टियो से पूरे भारत को अपना क्षेत्र बनाया था और सारा देश उनकी बाहों में आ गया। यहा तक कि उन्होंने मजदूरो की भर्ती भी एक व्यापक अतर्क्षेत्रीय आधार पर की। धीरे धीरे भारतीय लोगो का आर्थिक भाग्य एक दूसरे से जुडता जा रहा था और भारत का जीवन एक समुच्चय का रूप लेने लगा था। सारे देश में शिक्षा का स्वरूप एक था। आधुनिक विचारो को ग्रहण करने की विधि एक थी। इसके कारण धीरे धीरे अखिल भारतीय स्तर पर एक ऐसे शिक्षित वर्ग का जन्म हुआ जिसका समाज की ओर देखने का तरीका और दृष्टिकोण समान था। इसी तरह इस दौर में दो नये वर्गो का जन्म हुआ। एक पूजीपति वर्ग और दूसरा मजदूर वर्ग। इनकी प्रकृति पूरे देश के धरातल में समान थी और ये जाति धर्म और क्षेत्र के परपरागत विभाजनो से ऊपर उठे हुए थे।

इन सभी चीजो से अलग भारतीय लागों का दमन करने वाले एक शत्रु का अस्तित्व बदस्तूर था। एक शत्रु ने भारतीया का उनके सामाजिक वग, जाति धर्म आर क्षेत्र के आग्रह से ऊपर उठाकर एकवद्ध किया। परिणाम यह हुआ कि साम्राज्यवाद विरोधी सघष म इस दौर म एकता की जो भावना पदा हुइ उसने लागा को भावनात्मक ओर मनावेज्ञानिक स्तर पर एकवद्ध किया आर एक समान राष्ट्रीय दृष्टिकोण का जन्म हुआ।

ब्रितानी शासन तथा भारत के सामाजिक गुट और वर्ग

समय के बीतने के साथ साथ ब्रितानी शासन का प्रभाव अधिक स्पष्ट रूप म उभरा। ब्रितानी राज्य तथा भारतीयो के उद्देश्यो, लक्ष्या ओर हिता की टक्कर आर अतर्विराध एकदम खुलकर सामन आ गये। अधिक स अधिक भारतीयों ने महसूस किया कि अग्रेज अपने स्वार्थो की सिद्धि के लिए भारत पर राज्य कर रहे ह। उन्हे सामान्य रूप में अग्रजा राज्य, आर विशेष रूप म अंग्रेज पूजीपतियों के हितों की रक्षा के लिए भारतीय हितों की वलि चढा दन म कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। उपनिवेशवाद ही भारत क आर्थिक सामाजिक, सास्कृतिक आर राजनीतिक पिछडपन का वडा कारण वन गया ह। भारतीय समाज के विभिन्न वर्गो आर गुटों ने धीरे धीरे यह पता लगा लिया कि ब्रितानी शासन सभी आधारभूत क्षत्रा म उनके विकास म वाधा पहुचा रहा ह।

सभवतया किसान वर्ग ब्रितानी उपनिवेशवाद का मुख्य शिकार था। सरकार ने उसक उत्पादन का वडा अश लगान ओर अन्य करा के रूप में ले लिया। वह जल्द ही भू-स्वामिया आर कर्ज दने वाले महाजना की मजवूत पकड मे फस गया। उसको लगा कि न ता वह अपनी जमीन का मालिक है न अपनी पैदावार का आर न ही अपनी श्रम शक्ति का। आर जव उसने जमीदारों भूस्वामियों आर महाजना के विरुद्ध राजनीतिक आर आर्थिक सघष का सगठन किया तव सरकार ने कानून आर व्यवस्था के नाम पर अपनी सारी पुलिस आर मशानरी का उसके विरुद्ध इस्तेमाल किया ओर अक्सर निर्दयतापूवक उसक सघर्ष को कुचल दिया। वक्त क साथ साथ किसानों ने साम्राज्यवादी भूमिका को समझ लिया आर पाया कि उनके दुखमय सघर्ष की मुख्य जिम्मेदारी इस तत्र की ही ह।

कारीगरों और शिल्पकारो को भी साम्राज्यवाद के कारण मुसीवत झेलनी पड़ीं थीं। विना नौकरी और मुआवजे क अन्य नय स्रोतों के विकास से उनके सदियो पुराने जीवन निर्वाह क साधना का छीन लिया गया था। 19वीं शताब्दी के अत तक उनकी हालत अत्यत नाजुक और खस्ता हा गयी थी। फल यह हुआ कि 20वीं शताब्दी के साम्राज्यवाद विरोधी सघर्ष म उन्होंन वहुत सक्रिय भाग लिया।

आधुनिक उद्योगा क विकास क साथ भारत में एक नये सामाजिक वग—मजदूर वग का जन्म हुआ। यद्यपि यह वग सख्या में छाटा था आर पूरी आवादी म इसका अनुपात वहुत कम था फिर भी इसन एक नय सामाजिक दृष्टिकाण का प्रतिनिधित्व किया। इसके सामन सदियो

पुराना परपराआ रीति रिवाजा और जीवन के तौर-तरीकों के साथ की टोन की विवशता नहीं थी। प्रारंभ से ही उसके हित और दृष्टिकोण की प्रकृति अखिल भारतीय रही। अलावा इसके मजदूरा का एकत्रण कारखाना और शहरा म हुआ। इन्हीं कारणा से उनके राजनीतिक कार्यो को उनकी सख्या की तुलना म कहीं बहुत अधिक महत्व मिला।

भारतीय मजदूरा की काम करने और रहने का स्थिति बहुत ही असतोषजनक थी। सन् 1911 तक उनके काम के घटा को लेकर नियत्रण की कोई कानूनी व्यवस्था नहीं थी। बीमारी बुढ़ापा बरोजगारी दुर्घटना या आकस्मिक मृत्यु के विरुद्ध किसी प्रकार का सामाजिक बीमा नहीं था। भविष्य निधि की योजनाए नहीं थी। प्रसूति लाभ योजना सन् 1930-40 के बीच चलायी गयी हालाकि वह भी अत्यत असतोषजनक थी।

सन् 1889 और 1929 के बीच कारखाने के मजदूरा की वास्तविक मजदूरी में गिरावट आयी। सन् 1880 और 1890 के बीच मिलने वाली मजदूरी के स्तर को 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक मे पुन लाना केवल तब समव हुआ जब एक शक्तिशाली मजदूर सघ के आदोलन का विकास हो गया और यह भी तब जब श्रम उत्पादकता म 50 प्रतिशत की वृद्धि हो गयी। परिणाम यह कि एक औसत मजदूर जिदा रहने के लिए जितना आवश्यक है उससे भी कम पर जी रहा था। ब्रितानी शासन म भारतीय मजदूरों की हालत को निचोड के रूप म प्रस्तुत करते हुए जर्मनी के प्रसिद्ध आर्थिक इतिहासकार जुरगेन कुच्यास्की ने सन् 1938 में लिखा

> आधा पेट भोजन और बिना हवा रोशनी और पानी के जानवरा की जगह (दडब म) रहने वाला भारत का आद्योगिक मजदूर विश्व के आद्योगिक पूजीवाद म सबसे अधिक शोषित प्राणी है।

चाय और काफी के बागाना में हालत इससे भी खराब थी। ये बागान क्षीण आबादी वाल ऐस क्षेत्रा म स्थित थे जहा की जलवायु स्वास्थ्य को खराब करने वाली थी लेकिन बागाना के मालिक इतनी पर्याप्त मजदूरी नही देते थे कि बाहर के मजदूर आकर्षित हो सक। इसकी जगह पर मजदूरा की भर्ती म वे झूठ वायदे करते थे जाल फरेब करत थे। मजदूरा के बागाना म बिलकुल गुलामा की तरह पडे रहने के लिए वे सख्ती मारपीट और शारीरिक यातना का सहारा लेते थे। यह एक आम तरीका था। सरकार न उन्हे पूरी सहायता दी और दड के सख्त कानून बनाये जिनका सहारा लेकर वे बागान के मजदूरा को अपने उत्पीडनकारी नियत्रण म रख सक।

समय क साथ साथ भारत के इस मजदूर वर्ग ने भी एक शक्तिशाली साम्राज्य विरोधी रुख अपनाया।

राष्ट्रीय आन्दोलन की रीढ का काम करने वाला आबादी का एक अन्य बड़ा सामाजिक गुट मध्य और निम्न-मध्य वर्ग का था। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध म जब अग्रेजो ने छोटे मोटे सरकारी कर्मचारिया की बडी सख्या म भर्ती की और नये स्कूल तथा अदालतों के खुलने से

ायी नौकरियों की जगह बनी तो इस वर्ग के लोगों को रोजगार के नये अवसर मिले। देश के भीतर और विदेशी व्यापार में अचानक वृद्धि होने के कारण हर स्तर पर एक दूकानदार वर्ग का उदय हुआ। लेकिन जल्दी ही एक अर्द्धविकसित उपनिवेशित अर्थतंत्र के तर्क ने प्रभावशाली ढंग से अपने आग्रह को सामने रखा। 19वीं शताब्दी के अंत तक सीमित संख्या वाले शिक्षित भारतीय—जिनकी पूरे देश की संख्या दिल्ली जैसे छोटे राज्य के आज के शिक्षितों की भी संख्या से कम थी—बेरोजगारी के शिकार हो गये। यहां तक कि जिन्हें नौकरियां मिल गयीं उन्हें भी लगा कि बेहतर तनख्वाह वाली ज्यादा जगह मध्य और उच्च वर्ग के अंग्रेजों के लिए आरक्षित हैं। विशेषकर नौकरी की संभावना उन लोगों के लिए क्षीण हो गयी जो बी ए का प्रमाण-पत्र पाने से पहले विश्वविद्यालय की पढाई खत्म करने के लिए विवश थे। मध्य और निम्न-मध्य वर्ग के भारतीयों ने जल्द ही यह महसूस किया कि केवल आर्थिक दृष्टि से विकसित और सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से आधुनिक देश ही उन्हें एक सार्थक और उपयुक्त जीवन बिताने के आर्थिक और सांस्कृतिक अवसर दे सकता है। वही तेजी से बढ़ती गरीबी से, बेरोजगारी से और सामर्थ्य की सामाजिक-आर्थिक क्षति से बचा सकता है।

भारत के औद्योगिक-पूंजीपति वर्ग का विकास सन् 1858 के बाद हुआ था। इस वर्ग ने शीघ्र ही ब्रिटानी पूंजीपतियों से प्रतिस्पर्द्धा शुरू की और अनुभव किया कि उसका विकास सरकारी व्यापार, परियात शुल्क परिवहन और सरकार की वित्तीय नीतियों के कारण बाधित हो रहा है। एक स्वतंत्र आर्थिक विकास के लिए संघर्ष करते हुए प्रायः हर आधारभूत आर्थिक मुद्दे पर साम्राज्यवाद से उसकी टक्कर हुई।

भारत का पूंजीवादी वर्ग अपनी प्रारंभिक दुर्बलताओं और बाधाओं के कारण हुई क्षति की पूर्ति के लिए सरकार से सीधी और सक्रिय मदद चाहता था ताकि वह दृढ़तापूर्वक जमे हुए पश्चिमी यूरोप के उद्योगों के मुकाबले में आ सके। फ्रांस, जर्मनी और जापान के तत्कालीन उद्योग बड़े पैमाने पर और सक्रिय रूप में दी गयी सरकारी सहायता से विकसित हो रहे थे। इस प्रकार की सहायता भारतीय पूंजीपतियों को नहीं दी गयी। अधिकतर भारतीय उद्योग की सबसे बड़ी आवश्यकता यह थी कि परियात शुल्क से छूट मिले ताकि उनका उत्पादन विदेशों के अधिक सस्ते माल के नीचे दब न जाये। न केवल उन्हें ऐसी छूट ही दी गयी बल्कि मुक्त व्यापार को भारत में विश्व के किसी भी अन्य देश से अधिक संपूर्णता के साथ चालू किया गया।

एक सहानुभूतिपूर्ण नौकरशाही भारतीय पूंजीपतियों को अनेक तरीकों से सहायता और सहयोग दे सकती थी। पश्चिमी यूरोप में नौकरशाही पूंजीपति वर्ग की वैसी ही समर्थक थी जैसे कि स्वयं पूंजीपति वर्ग। दोनों सकड़ों तरह के संबंधों में एक दूसरे से बंधे थे। भारत में यह नौकरशाही विदेशी था। वह अंग्रेज पूंजीपतियों के साथ खाता पीता थी। उसकी स्वाभाविक सहानुभूति अपने दरबारियों और उनकी औद्योगिक महत्वाकांक्षाओं से थी चाहे उसका वाहे ब्रिटेन में हो चाहे भारत में। दूसरी तरफ यह नौकरशाही भारत के औद्योगिक प्रयत्नों के प्रति असहानुभूतिपूर्ण—यहां तक कि विद्वेषपूर्ण थी।

क्षेत्र म आगे बढने की जा भावना उभरी थी वह भी तेजी से खत्म हा गयी। भारत की ब्रितानी सरकार न शिक्षा पर अपने बजट का 2 प्रतिशत स भी कम खर्च किया आम जनता आर स्त्रिया की शिक्षा की उपेक्षा का तथा आधुनिक विचारा क प्रसार आर उच्च शिक्षा के प्रति विद्वेषपूर्ण हो गयी। सन् 1858 के बाद ब्रितानी शासकों न सामाजिक सुधार क सार प्रयत्ना स हाथ खाच लिया आर अपने को समाज धम ओर सस्कृति की सर्वाधिक पिछडी परपरागत आर ज्ञान विरोधी शक्तिया से जोड लिया।

फलस्वरूप भारत के आधुनिक बुद्धिजीवियो ने ब्रितानी शासन की मूल प्रवृत्ति को नय सिरे से समझने आर उसका परीक्षण करन का कठिन काम शुरू किया। उनकी समय को विकसित होन में समय लगा। लेकिन 19वीं शताब्दी के अत तक उन्हाने यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि जिस चीज को उन्हाने पहले भारत का आधुनिकीकरण समझा था वह वास्तव में उसका उपनिवेशीकरण था। अब उन्हाने साम्राज्यवाद के विरोध मे एक राष्ट्रवादी राजनीतिक आदोलन सगठित करने के लिए कमर कस ली।

तीन अन्य सामाजिक वर्गों (जमींदार भू स्वामी राजे रजवाडे उच्च सरकारी पदो पर आसीन भारतीय नौकरशाही ओर परपराबद्ध शिक्षित वर्ग) का साम्राज्यवाद के प्रति दृष्टिकोण अनिश्चित आर द्विपक्षी था। एक वर्ग क रूप मे जमीदार भू स्वामी ओर राजे रजवाडे विदशी सरकार के प्रति वफादार थे क्योकि उनके ओर शासकों के हित सयोगवश एक हो गये थे। इसी तरह नोकरशाही में उच्चतर पदो पर आसीन भारतीयो न अपन शासको के साथ साथ एक गरीब देश म उच्च स्तरीय रहन-सहन प्रशासनिक अधिकार के अहसास आर ऊची सामाजिक हसियत के लाभ म हिस्सा बटाया। व पूरे तोर पर ब्रितानी शासन के प्रति अंतिम समय तक वफादार बन रह। लेकिन इन सामाजिक वर्गो के भी बहुत से व्यक्तियों ने उस समय की देशभक्ति की भावना से प्रभावित होकर राष्ट्रीय आदोलन म हिस्सा लिया।

परपराबद्ध शिक्षित वर्ग–जिसमे धार्मिक चितक पंडे पुजारी उपदेशक आर सनातन शिक्षा प्रणाली के शिक्षक आते थे–विरोधी दबावो मे पिस गया। समाज ओर धर्म सबधी अपने सनातनी दृष्टिकोण के कारण इस वर्ग क लोग राजनीतिक रूढिवाद की आर आकर्षित हुए। सत्ताधारियों के प्रति वफादार बने रहने की उनकी एक लबी ऐतिहासिक परपरा भी थी। इसी दार मे इस वर्ग के निचले स्तर के अधिसख्य लोगो की हालत मे तेजी स गिरावट आयी क्योंकि आधुनिक स्कूलो-कालेजो के प्रसार के कारण परपरागत पाठशालाए आर मदरसे तथा उच्च अध्ययन क पारपरिक केंद्र बन्द हा गये। परपरा से बधे हुए बहुत से बुद्धिजीवी भी आधुनिक सस्कृति आर विचार तथा धार्मिक समाज सुधार के आदोलनो के (सैद्धातिक आधार पर ओर यह सोचकर कि समाज पर उनका प्रभाव क्षीण हो जायगा) कट्टर विरोधी थे। ईसाई धर्म प्रचारको के धर्म परिवर्तन के आक्रामक प्रचार ने भी उनके क्रोध को बढाया।

परिणाम यह हुआ कि अतत परपराबद्ध बुद्धिजीवियो म दो परस्पर विरोधी विचारधाराओ का जन्म हुआ। एक का अनुसरण करने वाला ने आधुनिक विचारा के प्रति अपनी उदासीनता

को बनाये रखते हुए राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लेने का समर्थन किया। दूसरे ने इस उन्माद में विदेशी शासन का समर्थन किया कि परंपरागत रूप से समाज पर आधिपत्य बनाये रखने की जो स्थिति उसे प्राप्त थी वह बनी रहेगी। सरकार ने इस दूसरी विचारधारा वाले लोगों को सक्रिय प्रोत्साहन दिया।

इसके कारण मंदिरों, मठों, मस्जिदों, दरगाहों, गुरुद्वारों और अन्य धार्मिक संस्थानों का नियंत्रण निर्बाध रूप में और दृढ़तापूर्वक परंपराबद्ध शिक्षित वर्ग के हाथ में आ गया। सरकार ने भी इस वर्ग को पेंशन, वित्तीय पुरस्कार, उपाधियों और सम्मान आदि के माध्यम से संरक्षण देना शुरू किया। उसने सनातन शिक्षा प्रणाली को बनावटी ढंग से जीवित रखने के लिए भी कदम उठाया। जैसा कि हमने पहले ही देखा है इसने सामाजिक और सांस्कृतिक सुधारों की ओर से हाथ खींचकर रूढ़िवादियों की निगाह में आदर प्राप्त कर लिया। राष्ट्रीयता, जनतंत्र और धार्मिक विश्वास के आधुनिक विचारों के प्रसार को रोकने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने इस दृष्टिकोण तक का प्रचार किया कि भारत के परंपरागत विचार और संस्थान वहां के लोगों के सर्वथा अनुकूल हैं। भारतीयों को अपने अर्धतंत्र, राजनीति और प्रशासन की व्यवस्था अंग्रेजों पर छोड़कर अपना ध्यान भारत के दार्शनिक और धार्मिक उत्तराधिकार और जीवन के तथाकथित आध्यात्मिक पक्ष पर केंद्रित करना चाहिए। श्रम के इस विभाजन ने भी परंपराबद्ध शिक्षित वर्ग को आकर्षित किया।

एक अन्य बड़ा तत्व जिसने सभी भारतीयों—रजवाड़ों से लेकर रंकों, जमींदारों से लेकर काश्तकारों, नौकरशाही के ऊंचे पदों के अधिकारियों से लेकर लिपिकों और धनिकों से लेकर गरीबों—को राष्ट्रीयता के उन्माद में खड़ा कर दिया, शासकों का रंगभेद संबंधी अहंकार का प्रदर्शन था। भारत में अंग्रेजों ने यहां के लोगों से हमेशा एक दूरी बनाये रखी और यह महसूस करते रहे कि वे जातीय स्तर पर विशिष्ट हैं। लेकिन 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब दोनों के बीच की सामाजिक और जातिगत खाई चौड़ी हो गयी तो एक गुणात्मक परिवर्तन आया। साम्राज्यवाद और उसके सिद्धांतों को पुनर्जीवित करने के एक कार्यक्रम के रूप में यूरोप में जातीय सिद्धांतों को प्रचारित करने की एक लहर उठी और बताया गया कि गोरे लोग जन्मना काले लोगों से बेहतर हैं। भारत में अंग्रेजों ने खुले रूप में घोषणा की कि भारतीय एक हीन जाति हैं। उन्होंने विजेता शक्ति के अंग के रूप में विशेषाधिकारों के लिए आग्रह किया। वायसराय मेयो जैसे एक उच्चपदीय व्यक्ति ने सन् 1870 में पंजाब के उपराज्यपाल (लेफ्टिनेंट गवर्नर) को लिखा, "अपने मातहतों को सिखाइये कि हम सभी संभ्रांत अंग्रेज हैं जो एक हीन जाति पर शासन करने के एक शानदार काम में लगे हुए हैं।" जातीय अहंकार के ऐसे निर्लज्ज प्रदर्शन से ही सोचने समझने वाले हर आत्मसम्मानी भारतीय ने अपने को अपमानित और तुच्छ अनुभव किया। उसे राष्ट्रीय कार्यकलापों में हिस्सा लेने के लिए उत्तेजित कर दिया गया।

संक्षेप में, ब्रितानी शासन के मूलभूत औपनिवेशिक चरित्र और भारतवासियों के जीवन पर उसके हानिकारक प्रभाव ने भारत में एक शक्तिशाली साम्राज्यवादी विरोधी आंदोलन के

उद्भव और विकास को रूप दिया। यह आन्दोलन एक राष्ट्रीय आन्दोलन था क्योंकि इसने अपने अंक में भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों और दलों को समेट लिया। इन वर्गों और दलों में साम्राज्यवाद को लेकर अपने निजी अंतर्विरोध थे जिनके कारण वे एक ऐसे राष्ट्रीय आन्दोलन में साथ हो लिए जो सभी का था। उनमें आपस में भी अपने हितों को लेकर टक्कर हुई। लेकिन एक समान शत्रु के विरुद्ध उन्होंने अपने मतभेदों को भुला कर स्वयं को एकबद्ध किया।

2

प्रारंभिक चरण

परपरागत प्रतिरोध

भारतीय जनता न ब्रितानी शासन का प्रतिरोध उसके आरभ स ही किया। सन् 1857 तक मुश्किल स कोई साल बाता होगा जिसमें देश का कोई न कोई भाग सशस्त्र विद्रोह से प्रकंपित न हुआ हो। मोटे तार पर यह क्रमबद्ध विद्रोह (जिसकी प्रकृति पूरे तार पर परपरागत थी) तीन रूपों में सामने आया—नागरिक विद्राह आदिवासियों के उपद्रव आर किसानों के आदालन तथा विद्राह।

नागरिक विद्रोह

भारत पर ब्रिटेन की विजय ओर उसके शासन की जडं जमाने की प्रक्रिया के साथ साथ जनता में गभीर असतोष आर आक्राश उपजा। यहा तक कि ब्रितानी भारत की सेना क भारतीय सनिकों पर उसका प्रभाव पड़ा। यह जन-असतोष लगभग 100 वर्षो तक अधिकार च्युत सरदारों उनक उत्तराधिकारियों आर सबंधियो जमींदारों पालीगरो भूतपूर्व सेनिको अलहकारों आर भारतीय रियासतों के अनुजीवियों के नतृत्व मे सशस्त्र प्रतिरोध का रूप लेता रहा। अपनी शिकायता आर मुसीबतों के कारण बहुत बडी सख्या में किसान आर कारागर इन विद्रोहो म हिस्सा लते रहे। प्राय वे ही इन विद्रोहों के आधार स्तभ हाते थे। य नागरिक विद्रोह ब्रितानी शासन के बगाल आर बिहार म स्थापित हान के साथ ही शुरू हा गय थ। राजस्व की वसूली म तेजी लाने ईस्ट इडिया कपनी आर उसके मुलाजिमों द्वारा कारीगरों के शोषण आर पुराने जमींदारा की समाप्ति ने परिस्थिति को विस्फोटक बना दिया। प्राय हर जिले आर सूबे में जन विद्राह हुए।

बगाल के कार्यविरत सनिको ओर विस्थापित किसाना ने उस मशहूर सन्यासी विद्रोह म भाग लिया था जिसका नेतृत्व धार्मिक मठवासिया आर बेदखल जमींदारों ने किया था। सन्यासी विद्राह सन् 1763 स 1800 तक चला। उसके बाद सन् 1766 से 1772 तक चुआर विद्रोह चला जिसकी व्याप्ति बगाल आर बिहार के पाच जिलो तक थी। सन् 1795 आर 1816 के बीच चुआरा का दूसरा विद्रोह चला।

ब्रितानी शासन के देश के दूसरे भागों में विस्तार के साथ भी ऐसे विद्रोहों का जन्म हुआ। उडीसा के जमींदारों का विद्रोह सन् 1804 से 1817 तक चला। दक्षिण भारत में विजयनगर के राजा ने सन् 1794 में विद्रोह किया। 18वीं शताब्दी के नवें दशक में पालीगरों ने तमिलनाडु में सन् 1801 में मलाबार और दिण्डिगल में सन् 1801-05 में तटवर्ती आंध्र में और सन् 1813 से 1834 तक परलाकिमिदा में विद्रोह किया। मसूर वालों ने सन् 1800 में और सन् 1831 में विद्रोह किया। विजागापटनम विद्रोह सन् 1830 34 के बीच हुआ। त्रावणकोर के दीवान वेलू ताम्पी ने सन् 1805 में विद्रोह किया। पश्चिमी भारत में सौराष्ट्र के सरदारों ने सन् 1816 32 के बीच बार बार विद्रोह किया। गुजरात के कालियों ने सन् 1824 25 1828 1839 और सन् 1849 में विद्रोह किया। महाराष्ट्र में अनेक विद्रोह हुए। वास्तविकता यह है कि यहां निरंतर विद्रोह होते रहे। सन् 1824 29 में कित्तूर सन् 1821 में कोल्हापुर सन् 1844 में सतारा और सन् 1844 में गदकरियों के विद्रोह की चर्चा विशेष रूप से की जा सकती है। उत्तर भारत कम अशांत नहीं था। सन् 1824 में पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा के जाटों ने गंभीर अशांति पैदा की। सन् 1805 में बिलासपुर के राजपूतों सन् 1814 17 में अलीगढ के ताल्लुकेदारों और सन् 1842 में जबलपुर के बुन्देलों ने जो विद्रोह किये वे भी प्रमुख हैं।

ये विद्रोह जो ब्रितानी शासन के पहले 100 वर्षों के इतिहास में आदि से अंत तक व्याप्त हैं किसानों जमींदारों और छोटे सरदारों के आपस के पारस्परिक संबंध और वफादारी पर आधारित थे। वे सर्वथा स्थानिक और अपनी अपनी तरह के थे। उनमें दृष्टि पीछे की ओर थी जिसमें राष्ट्रीयता की आधुनिक अनुभूति उपनिवेशवाद के स्वभाव और प्रकृति या नये सामाजिक संबंधों के आधार पर बनने वाले नये समाज की आधुनिक समझ का अभाव था। उनका नेतृत्व अनिवार्यतया परंपरागत था जिसमें उनके आसपास की बदलती हुई दुनिया की चेतना बिलकुल थी ही नहीं। कभी कभी उन विद्रोहों को दबाने के लिए अंग्रेजों को बडी सेनाओं का इस्तेमाल करना पडा लेकिन इसके बावजूद उन्होंने ब्रितानी शासन के सामने कोई वास्तविक चुनौती नहीं रखी। उन विद्रोहों की बनी देन यह है कि उन्होंने विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष करने की मूल्यवान स्थानीय परंपराएं स्थापित कीं।

परंपरागत ढंग से ब्रितानी शासन का विरोध करने की परिणति सन् 1857 के विद्रोह में हुई जिसमें किसानों कारीगरों और सैनिकों ने लाखों की संख्या में भाग लिया। सन् 1857 का विद्रोह ब्रितानी शासन की जड हिलाने के लिए काफी था।

विद्रोह की शुरुआत ईस्ट इंडिया कंपनी की फौज के सिपाहियों के गदर के साथ हुई लेकिन उसने बहुत जल्द ही व्यापक क्षेत्र के लोगों को अपनी जकड में ले लिया। यह जनता की विदेशी शासन के विरुद्ध वर्षों से जमी हुई शिकायतों का परिणाम था। किसान सरकार की भू-राजस्व की नीति से असंतुष्ट थे। उनकी जमीन चली गयी थी। वे पुलिस छोटे अधिकारियों और निचली अदालतों के दमन और भ्रष्टाचार के शिकार थे भारतीय समाज

के उच्च और मध्यम वर्ग के लोग (खास तौर पर उत्तरी भारत के) इसलिए विपत्तिग्रस्त हो गये थे क्योंकि उन्हें नौकरी के ऊंचे पदों से अलग कर दिया गया था। धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों—जैसे पंडितों और मौलवियों की आमदनी खत्म हो गयी क्योंकि उनके संरक्षक भारतीय राजाओं, राजकुमारों और जमींदार के अधिकार खत्म हो गये थे। सन् 1856 में ब्रितानी सरकार ने अवध को अपने राज्य में मिला लिया। इसमें बड़े पैमाने पर लोगों में विशेषकर अवध के लोगों में काफी आक्रोश पैदा हुआ। सरकार की इस कारवाई से सैनिकों में क्रोध जगा क्योंकि उनमें से अधिकांश अवध के रहने वाले थे। इसके अलावा उन्हें भूमि पर ज्यादा कर देना पड़ता था, क्योंकि उनके परिवार के लोग अवध में थे जहां उनकी जमीन थी ब्रितानी सरकार ने अधिकतर ताल्लुकदारी और जमींदारों की जागीर जब्त कर ली थीं। ये बेदखल ताल्लुकदार ब्रितानी सरकार के खतरनाक विरोधी बन गये। दूसरे क्षेत्रों को अपने राज्य में मिला लेने की ब्रितानी नीति का वायसराय लार्ड डलहौजी ने अनुसरण किया और उसकी जगह से भी देशी रियासतों के बहुत से राजाओं के मन में भय समा गया। इन राजाओं ने अब महसूस किया कि पूरी तरह समर्पित हो जाने और अपमानजनक ढंग से अपनी वफादारी की घोषणा के बावजूद ब्रितानी शासन उनके बने रहने का आश्वासन नहीं दे सकता। विलयन की नीति का ही यह सीधा परिणाम था कि नाना साहब, झांसी की रानी और बहादुरशाह ब्रितानी शासन के कट्टर शत्रु हो गये। कंपनी के सैनिक अपनी कम तनख्वाह, कष्टप्रद जीवन और अपने अंग्रेज अफसरों के दुर्व्यवहार के कारण असंतुष्ट थे—उस वक्त के एक अंग्रेज पर्यवेक्षक ने लिखा ' सिपाही को एक बदतर जीव समझा जाता है। उसके साथ भोंडा व्यवहार होता है उसे मक्खीचूस माना जाता है। सूअर कहा जाता है कनिष्ठ लोग भी उसके साथ जानवरों जैसा सुलूक करते हैं। इसके अलावा एक सिपाही की पदोन्नति की संभावनाएं बहुत कम हैं। कोई भी भारतीय साठ-सत्तर रुपये मासिक के सूबेदार के पद से ऊपर नहीं पहुंच सकता।

इस प्रकार सन् 1857 तक एक जनव्यापी विद्रोह की परिस्थितियां पैदा हो गयी थीं। चर्बी लगे कारतूस के प्रकरण ने चिंगारी को भड़कने का अवसर दिया। इनफील्ड राइफलों के कारतूसों में एक चर्बी लगा कागज होता था जिसे इस्तेमाल के पहले दांत से काटकर निकालना पड़ता था। चर्बी कभी कभी गौ या सूअर के मांस की होती थी। इस तथ्य ने सिपाहियों की धार्मिक भावनाओं को उभारा और उनमें क्रोध पैदा हुआ। वे विद्रोह करने के लिए तैयार हो गये। उनके विद्रोह ने भारतीय समाज के दूसरे वर्गों को भी विद्रोह का अवसर प्रदान किया।

10 मई 1857 को दिल्ली से 36 मील दूर मेरठ में गदर शुरू हुआ और उसके बाद उत्तर में पंजाब, दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में राजपूताना और पूर्व में बिहार तक बढ़ता गया। मेरठ में सिपाहियों ने अपने अफसरों को मारा और दिल्ली के लिए रवाना हुए। दूसरी सुबह

का दिल्ली में पहुचना वहा क सिपाहियों के लिये गदर का एक सकेत था। इन सिपाहिया ने शहर पर कब्जा कर लिया आर बूढे वहादुरशाह जफर को भारत का शासक घोषित किया। इस प्रकार सिपाहिया ने गदर को एक क्रांतिकारी युद्ध म वदल दिया। इसके बाद सारे भारतीय सरदारा आर जमींदारा ने विद्रोह में हिस्सा ले लिया आर मुगल सम्राट वहादुरशाह जफर क प्रति अपनी वफादारी की शीघ्र घोषणा कर दी। जफर भारतीय एकता के प्रतीक वन गये थे।

उत्तर और मध्य भारत म हर जगह पर सिपाहियों का यह गदर जनता के विद्रोह में बदल गया। आम आदमी कुल्हाड़ी आर भाले तीर धनुप लाठी-दराती आर देशी बदूकों से लडा। विशेप रूप से आज के उत्तर प्रदेश और बिहार में किसाना आर कारीगरो ने उस आदोलन म व्यापक पैमाने पर हिस्सा लिया था आर उन्ही की वजह से विद्रोह को वास्तविक शक्ति मिली थी। एक अनुमान के अनुसार अग्रेजा मे लडते हुए अवध म डेढ लाख और बिहार म एक लाख नागरिक शहीद हुए थे।

सन् 1857 के विद्रोह की शक्ति का एक महत्वपूर्ण पक्ष हिंदू-मुस्लिम एकता थी। सिपाहिया आम लोगों आर उनके नेताआ म हिंदुआ और मुसलमानों म पूरा सहयोग था। सारे विद्रोहिया ने एक मुस्लिम वहादुरशाह जफर का अपना सम्राट स्वीकार किया। हिंदू और मुसलमान विद्रोही सिपाहिया ने एक दूसर की भावना का आदर किया। प्रमाण के लिए विद्रोह जहा कहीं भी सफल हुआ वहा हिंदुआ की भावनाआ के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए गोहत्या वद करन के आदेश दिये गये—इसके अलावा सभी स्तरा पर हिंदुआ आर मुसलमाना का पर्याप्त प्रतिनिधित्व था। एक ऊचे अग्रेज अधिकारी ने बाद म शिकायत की 'इस मामल मे हम मुसलमाना को हिंदुओ के खिलाफ खडा नही कर सके। वास्तव में सन् 1857 का विद्रोह स्पष्टतया सिद्ध करता है कि भारत की राजनीति या उसके लोग मध्यकाल मे या सन् 1858 के पहले साम्प्रदायिक नहीं थे।

ब्रितानी साम्राज्यवाद सारी दुनिया में अपनी शक्ति के शिखर पर था। रियासतों क अधिसख्य रजवाडों और सरदारा ने उसे मदद दी। उसकी सैनिक शक्ति विद्रोहिया क मुकाबले म कहीं बहुत वडी थी। विद्रोहिया म शस्त्रो से लेकर सगठन अनुशासन आर एकतावद्ध कृत सकल्प नेतृत्व का अभाव था इसके पहले कि विद्रोही अपनी इन कमियों पर काबू पा सकें ब्रितानी सरकार ने अपनी अपार शक्ति आर साधन का इस्तेमाल करके विद्रोह को निहायत बेरहमी से कुचल दिया। 20 सितबर 1857 को अग्रेजा ने बहादुरशाह जफर को गिरफ्तार कर लिया आर विद्रोहियो स लडने हुए एक के बाद एक पराजित होते गये। नाना साहेब को कानपुर में पराजित होना पडा। उनके एक वफादार सेनापति तात्या टोपे ने अप्रेल 1859 तक वीरता ओर कुशलता के साथ गुरिल्ला युद्ध जारी रखा। लेकिन अपने एक जमींदार दोस्त क विश्वासघात के शिकार हो गये। झासी की रानी हाथ मे तलवार लिये 17 जून 1858 का लडती हुई वीरगति को प्राप्त हुई। सन् 1859 तक विहार के

कुवर सिह दिल्ली के विद्रोहियो का कुशल नतृत्व करने वाल सिपाहा वख्त खा वरली के खान वहादुर खा और फैजावाद क मालवा अहमदुल्लाह सभी मारे जा चुके थे। अवध की वेगम को नेपाल भागना पडा। सन् 1959 के अत तक भारत पर ब्रितानी शासन पूरी तरह स्थापित हो चुका था, लेकिन विद्रोह अकारथ नहा गया था। यद्यपि भारत को वचान का यह हताशा भरा प्रयत्न पुराने तरीक से आर परपरागत नतृत्व म किया गया था, लकिन वह ब्रितानी साम्राज्य से भारतीय जनता को मुक्त करन का पहला वडा सघर्ष था। देश मे घर घर में विद्रोही नायकों की चचा होने लगी। हालांकि उनके नाम की चर्चा भी ब्रितानी शासका का अत्यत अप्रिय लगती थी।

आदिवासी विद्रोह

भारत के बडे भाग म फले आदिवासिया ने सक्डों विद्रोहा मे हिस्सा लिया। उन्होंने उपनिवेशवादी शासन की घुसपैठ और ब्रितानी शासन के विस्तार पर आक्रोश प्रक्ट किया। सवसे वडी वात यह कि उन्ह अपने सहज आर निश्चित जीवन म महाजना व्यापारिया आर लगान वसूल करने वाले कृपकों की घुसपठ पर आपत्ति थी जा उनकी उपनिवेशित अर्थव्यवस्था आर शोपण के प्रभाव तथा शासन के अनर्गत उनको लाने में सहायक थ। आदिवासिया का विद्रोह उनक अथक साहस आर वलिदान तथा सरकारी मशीनरी द्वारा उन्ह क्रूर ढग से दबा देने, दोनो ही दृष्टियों से उल्लेखनीय ह। एक तरफ आधुनिक अस्त्र शस्त्रा से युक्त ब्रितानी भारत की अनुशासित सेनाए थीं आर दूसरी तरफ तीर धुनप आर टांगियो जेसे आदिकालान हथियारा वाले आदिवासी। वे क्रुद्ध थे गलत ढग से सगठित थे, और गैर-बरावरी की लडाइयों में लाखो की सख्या मे मारे गये। उनके अनेक विद्रोहो मे से सन् 1820 से 1837 का कोला का 1855 56 का सथालों का, 1879 का रम्पाओ का ओर 1895 1901 का मुडाआ का विदाह सर्वाधिक महत्वपूर्ण ह।

किसान आदोलन और विद्रोह

आपनिवेशिक शापण का मुख्य आघात भारतीय किसाना को सहना पडा आर उन्होने अनत हर कदम पर उससे सघर्ष किया। किसाना ने ब्रितानी उपनिवशवाद का जो प्रतिरोध किया उसके विवरण, दुर्भाग्यवश आसानी से उपलब्ध नहीं ह। भारत में ऐतिहासिक अध्ययनशीलता की दुर्वलताआ के कारण वे अभी भी सरकारी पुरालेख सग्रहालयो या आधुनिक इतिहास को सजोने वाली अन्य जगहा म वद पडे ह। इतना ही नहीं सरकारी दस्तावेजों म इन किसान विद्रोहा को डकैती या उच्छृखलता का काम वताया गया। ब्रितानी

शासन का प्रतिरोध करने वाले किसानों के अनेक कार्यों की प्रारंभिक झलक पा लेने की कोशिश अभी हमने पिछले कुछ वर्षों स ही शुरू की ह।

जैसा कि हमने पहले ही देखा जमींदारों और छोटे सरदारों के नेतृत्व म होने वाले नागरिक विद्रोहों के आधार स्तभ किसान ही थे। सन् 1857 के विद्रोह के बारे में भी यह बात सर्वाधिक सच है। किसान विद्रोह का एक दूसरा स्वरूप भी था जिसकी रगत धार्मिक थी। वे धार्मिक सुधार और शुद्धि के आदोलन के रूप म शुरू हुए थे लेकिन उन्होंने शीघ्र ही बिना इस बात का ख्याल किये कि जमींदार भू-स्वामी और महाजन किस धर्म के हे उन पर सीधा आक्रमण करना शुरू कर दिया। इससे स्पष्ट हो गया कि आदोलन की जडे जमीन से ही (धर्म से नहीं) निकली है। अत में वे ब्रितानी साम्राज्यवाद स टकराये। ऐसा था स्वरूप। प्रमाण के लिए वहाबी आदोलन (जिसने एक वक्त मे बगाल बिहार पजाब और मद्रास को समेट लिया था) बगाल का फरजी आदोलन और पजाब का कूका विद्रोह।

सन् 1858 के बाद ब्रितानी शासन के किसानी प्रतिरोध की प्रकृति म एक खास किस्म का बदलाव आया। अब किसानों ने सीधे सीधे अपनी मागो के लिए सरकार चाय बागानो के विदेशी मालिको और देशी जमींदार-महाजनों के विरुद्ध लडाई शुरू की।

सन् 1859-60 का नील आदोलन आधुनिक दौर के बड़ किसान आदोलनो में से एक है जिसने बगाल को अपनी चपेट मे ले लिया था। नील की खेती पर यूरोपीय किसानो का एकमात्र अधिकार था। विदेशी लोग किसानो को नील उगाने के लिए मजबूर करते थे ओर उन्हे अपने अकथनीय दमन का शिकार बनाते थे। उन्हे गरकानूनी मारपीट तथा रोके रखने का सहारा लेकर अलाभकारी दर पर नील का उत्पादन करने के लिए मजबूर करते थे। सन् 1860 में प्रकाशित प्रसिद्ध बगाली लेखक दीनबधु मित्र के नाटक नील दर्पण म इस दमन का स्पष्ट चित्रण है। सन् 1859 म किसानो के आक्रोश का विस्फोट हुआ। उन्होंने एक साथ ही हजारों-लाखो की सख्या में नील का उत्पादन करने से इकार कर दिया तथा बागवानों और उनके सशस्त्र अनुजीवियो की मारपीट और हिंसा का डटकर मुकाबला किया। इस अवसर पर बगाल का शिक्षित वर्ग सामने आया और उसने विद्रोही किसानो के समर्थन म एक प्रबल आदोलन सगठित किया। सरकार एक ऐसा आयोग नियुक्त करने को विवश हुई जो इस प्रणाली म व्याप्त बुराइयो को कम करने के सुझाव दे सके। लेकिन बागवानो का दमन और किसानों के प्रतिरोध जारी रहे। सन् 1866 68 म दरभगा और चपारण में बिहार के नील उत्पादक किसानों ने बड़े पैमाने पर विद्रोह किया। इसी तरह सन् 1883 और 1889-90 मे जैसोर (बगाल) के किसानो ने विद्रोह किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के सातवे दशक में एक बार फिर भूमि सबधी अशांति फैली। इस बार की जगह पूर्वी बगाल था। वहा के प्रभावशाली जमींदार काश्तकारों का दमन करने में कुख्यात थे। उन्होंने बेदखली फसल और चलसपत्ति को गरकानूनी ढग स हथियाने

तग आर परेशान करने बडे पैमान पर शक्ति का इस्तेमाल करके लगान बढाने आर काश्तकारा को खेत पर कब्जा करने के उनके हक से वंचित करने क तरीको का खुलकर सहारा लिया। बगाली किसाना की भी प्रतिरोध की एक लबी परपरा थी जिसका आरभ सन् 1782 म तब हुआ था जब उत्तर बगाल क किसानो ने ईस्ट इंडिया कपनी के मालगुजार देवी सिह के खिलाफ विद्रोह किया था। सन् 1872 76 में वे 'लगान न देने' के लिए गठित सघो में एकबद्ध हुए आर पूर्वी बगाल क विभिन्न भागा म जमींदारो आर उनके सिरबारा (अभिकर्त्ताओ) पर आक्रमण किए। किसाना का प्रतिरोध केवल तब कम हुआ जब सरकार ने हस्तक्षेप करके उसे दबाने के प्रभावशाली कदम उठाये। लेकिन इसके बावजूद आन वाले वर्षो मे छुटपुट प्रतिराध चलते रह। वे केवल तब खत्म हुए जब सरकार ने जमींदारा के दमन से किसाना को बचाने के लिए कानून बनाने का वायदा किया। एक बार फिर बहुत बडी सख्या म नये शिक्षित वर्ग ने किसानों को समर्थन दिया।

जमीन सबधी एक बडा उपद्रव सन् 1875 में महाराष्ट्र के पूना और अहमदनगर जिलों में हुआ। महाराष्ट्र मे सरकार ने राजस्व का बदोबस्त सीधे किसानों के साथ कर दिया था। लेकिन इसी के साथ सरकार की लगान की माग इतनी ऊची दर पर थी कि अधिकतर किसानों के लिए उसका भुगतान महाजनों स कर्ज लिए बिना असभव था। ये महाजन ऊची दर पर सूद लेते थे अधिक से अधिक जमीन रेहन में या बिक कर महाजनों के कब्जे में चली जाती थी। महाजन भी किसान और उसकी जमीन पर अपनी जकड मजबूत बनाये रखने के लिए हर सभव कानूनी गरकानूनी हथकडे आर फरब का सहारा लेता था। सन् 1874 के अत तक पहुचते पहुचते किसाना का धर्य टूट गया। पूना और अहमदनगर जिला के किसान महाजना का सामाजिक बहिष्कार करने के लिए सगठित हुए। इस प्रक्रिया न शीघ्र ही भूमि सबधी उपद्रवों का रूप ले लिया। उन्होंने हर जगह कर्ज के दस्तावेजों और डिग्री क कागजातों को जबरदस्ती अपने कब्जे में ले लिया आर उन्हें खुलेआम आग के हवाल कर दिया। पुलिस किसाना के प्रतिरोध ओर रोष को दबाने में असफल रही। सरकार को पूना स्थित अपनी सारी पेदल आर घुडसवार सेना तथा तोपखान का इस्तेमाल करना पडा, तब कहीं जाकर आदोलन दब सका। एक बार फिर महाराष्ट्र के आधुनिक शिक्षित वर्ग न किसाना की मागा का समर्थन किया। लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि किसानों के दुख का असली कारण सरकार द्वारा बहुत ऊची दर पर लगान मागना, आर किसानों को आसान तरीक स कर्ज दिला सकने में असफल होना है।

देश के अन्य भागा में भी किसाना ने प्रतिरोध किये। जेन्मा भूस्वामियों के दमन से उत्तजित होकर उत्तर करल म मलाबार क मप्पिला किसाना ने सन् 1836 आर 1854 के बीच 22 बार विद्राह किये। मप्पिला किसानों के असन्तोष की नये सिरे से अभिव्यक्ति सन् 1873 1880 के बीच के पाच बड विद्रोहा में भी हुई। इसी तरह स ऊची दर पर लगान के निर्धारण क कारण सन् 1893-94 में आसाम के मदानी भागों में एक के बाद एक किसान

विद्रोह हुए। किसानों ने ऊँची दर पर लगान देने से इंकार कर दिया। जमीन पर कब्जा करने वाले सरकारी कर्मचारियों का संगठित होकर मुकाबला किया और लगान वसूल करने वाले कुर्कअमीनों को मार कर भगा दिया। सरकार को किसान आन्दोलन को दबाने के लिए बड़ी संख्या में सैनिक और सशस्त्र पुलिस लगानी पड़ी। निर्ममतापूर्वक गोली चलाने और संगीनों का इस्तेमाल करने से बहुत से किसान मारे गये। आसाम के लोग आज भी पुलिस और सेना के उस समय के क्रूर वहशियाना बर्ताव को भूले नहीं हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के किसी भी चरण में किसान आंदोलनों या जन विद्रोहों से भारत में अंग्रेजों की सर्वोच्चता के सामने खतरा उपस्थित नहीं हुआ। भारतीय अर्थव्यवस्था को उपनिवेशवाद पर आश्रित करने के बाद के असहनीय दमन और बड़े पैमाने पर बेदखली ने किसानों और आदिवासियों को झकझोर दिया। वे आन्दोलन और विद्रोह उनकी स्वाभाविक और स्वतः प्रेरित प्रतिक्रिया के परिणाम थे। वे अपना गुस्सा अक्सर उसी पर उतारते थे जो उनके दुख का तात्कालिक कारण दिखायी देता था। जैसे नील के बागवान, जमींदार या महाजन। लेकिन उन्होंने अंग्रेजों की उन कोशिशों का भी डटकर मुकाबला किया जिसके सहारे वे कानून और व्यवस्था की रक्षा के नाम पर भूमि संबंधी औपनिवेशिक ढांचे को सहारा देना चाहते थे। अतः व्यवहार में भारत की अशिक्षित और अज्ञानी जनता ने उच्च वर्ग के नवशिक्षित भारतीयों की तुलना में उपनिवेशवाद के अभिशाप को ज्यादा अच्छी तरह समझा। लेकिन इसी के साथ साथ यह भी निश्चित था कि उनका संघर्ष असफलता का शिकार होगा। उनका विश्वास, साहस, वीरता और अपार त्याग की इच्छा दुनिया भर के साधनों और अत्याधुनिक अस्त्र शस्त्रों से युक्त शक्तिशाली साम्राज्य के मुकाबले में कुछ भी नहीं थी। उनके पास कोई नयी विचारधारा नहीं थी—उपनिवेशवाद से जन्मी नयी सामाजिक शक्तियों के विश्लेषण पर आधारित कोई नया सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक कार्यक्रम नहीं था। उनमें समाज और जीवन जीने के नये ढंग की उस स्पष्ट अवधारणा का अभाव था जो बड़े पैमाने पर लोगों को संगठित कर सके। यहां वहां छुटपुट और असंगठित ढंग के विद्रोह चाहे जितनी बड़ी संख्या में हुए हों, वे आधुनिक साम्राज्यवाद को पराजित नहीं कर सके। उसके लिए आधुनिक विचार और विश्लेषण पर, समाज की एक नयी दृष्टि पर, ऐसे नये आदर्शों और दलों (जो राजनीतिक कार्यों के लिए पूरे देश के स्तर पर जनता को प्रेरित कर सकें) पर आधारित आक्रमण की आवश्यकता थी। यह स्थिति 20वीं शताब्दी में तब आयी जब किसान वर्ग का असंतोष साम्राज्यवाद विरोधी व्यापक असंतोष के साथ जुड़ गया और उनके राजनीतिक कार्यकलाप राष्ट्रीय आंदोलन और आधुनिक किसान आंदोलनों के माध्यम से सामने आये। बहरहाल 19वीं शताब्दी के जन-आंदोलन और विद्रोह निश्चय ही साम्राज्यवाद का प्रतिरोध करने वाली उस अपार शक्ति के द्योतक हैं जो भारतीय जनता में सुसुप्त पड़ी हुई थी।

आधुनिक राजनीति और नये राजनीतिक सगठन

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध राजनीतिक राष्ट्रवादी चेतना के फूलन फलन आर एक सगठित राष्ट्रीय आदोलन क उद्भव और विकास का साक्षी है। इस दार में भारत क नय शिक्षित वर्ग ने राजनीतिक शिक्षा के प्रसार आर देश म राजनीतिक कार्यकलाप प्रारभ करने के लिए राजनीतिक सघा की स्थापना की। इस काय क लिए नये राजनीतिक विचारो यथार्थ की नयी बौद्धिक अनुभूति सघर्ष आर प्रतिरोध को नयी शक्तिया आर राजनीतिक सगठन की नयी तकनीको का आधार बनाना था। इस विचारधारा नीति, सगठन और नेतृत्व म आये मोड़ों की अगुवाई करनी थी। क्याकि भारतीय नय राजनीतिक कायकलापा से बिल्कुल अपरिचित थे अत यह कार्य कठिन था। यहा तक कि यह धारणा भी एकदम नयी थी कि जनता अपने शासका के विरुद्ध राजनीतिक ढग से सगठित हो सकती ह। परिणाम यह हुआ कि प्रारभ के राजनीतिक कार्यकताओं ओर सघा की गति अपक्षाकृत धीमी रही और साधारण जनता को आधुनिक राजनीति के घेरे मे लाने म आधी शताब्दी से अधिक समय लग गया।

राजा राममोहन राय पहले भारतीय नेता थे जिन्हाने राजनैतिक सुधार के लिए आदोलन का सूत्रपात किया। उन्हाने अखबार की स्वतत्रता जूरियों द्वारा मुकदमे की सुनवाई कार्यपालिका आर न्यायपालिका के अलगाव उच्चतर पदी पर भारतीयो की नियुक्ति जमींदारा के दमन से प्रजा की रक्षा आर भारतीय उद्योग व्यापार के विकास के लिए सघर्ष किया। उन्ह उम्मीद थी कि एक दिन ब्रितानी शासन का अत होगा आर भारत स्वतत्र होगा। इसी को उन्हाने सार्वजनिक जीवन के अपने सारे कार्यकलापा का आधार बनाया। उन्हाने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों म गहरी दिलचस्पी ली आर हर जगह स्वाधीनता, जनतत्र और राष्ट्रीयता के उद्देश्य का समर्थन किया।

राममोहन राय के स्वर्गवास के बाद उनकी परपरा को डेरोजियस नाम के एक क्रांतिकारी बगाली युवक ने आग बढाया। यह नाम उन्ह विख्यात आग्ल भारतीय शिक्षक हेनरी विवियन डरोजियो के बाद मिला था। डेरोजियो ने अपने शिष्यों को स्वतत्रता आर देशभक्ति क उस प्रखर प्रम की प्रेरणा दी थी जिसका वैचारिक आधार फ्रासीसी क्रांति, टॉम पेन आर जेरमी बथम थे। डेरोजियो ने अनेक जन-सस्थाए आधुनिक विचारो ओर भारत में उनक प्रयोग पर विचार विमर्श करने के लिए खाली थीं। उन विचारा के प्रचार के लिए उन्हाने अनेक समाचारपत्र और पत्रिकाए भी प्रकाशित कीं। अत आधुनिक राजनीनिक चेतना के बीज 19वी शताब्दी क दूसरे आर तीसरे दशक म राजा राममोहन राय आर डेराजियो द्वारा बाय गये।

भारत म पहली राजनीतिक सस्था सन् 1838 में कलकत्ता में 'लड हाल्डस सासायटी' के नाम से बनी लेकिन इसकी शुरुआत बगाल बिहार आर उडीसा क जमींदार वर्ग के

हितों की रक्षा के संकीर्ण उद्देश्य से की गयी थी। सन् 1843 में बंगाल 'ब्रिटिश इंडियन सोसायटी' का गठन एक बृहत्तर राजनीतिक उद्देश्य से किया गया। सन् 1851 में 'ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन' बनाया गया। उसके बाद सन् 1852 में 'मद्रास नेटिव एसोसिएशन' और 'बंबई एसोसिएशन' स्थापित हुए। पूरे देश में छोटे शहरों और कस्बों में ऐसी ही अनेक संस्थाएं और क्लब स्थापित हुए। वे सभी स्थानीय किस्म के थे और प्रायः अधिसंख्य पर धनाढ्य व्यापारियों और जमींदारों का प्रभुत्व बना रहा। उन्होंने ब्रितानी भारतीय शासन तथा ब्रितानी संसद के सामने राजनीतिक और आर्थिक मांग रखी और मुख्य रूप से प्रशासनिक सुधार, अधिक अनुपात में प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की नियुक्ति, शिक्षा के प्रसार, सरकार में भारतीयों की भागीदारी और भारतीय उद्योग व्यापार को प्रोत्साहन दिलवाने के लिए कार्य किया।

सन् 1857 के विद्रोह की असफलता से यह स्पष्ट हो गया था कि उच्च वर्गों (जमींदारों, रजवाड़ों और भू स्वामियों) के नेतृत्व में ब्रितानी शासन के विरुद्ध चलने वाला परंपरागत राजनैतिक प्रतिरोध बिलकुल सफल नहीं हो सकता था और यह भी कि उपनिवेशवाद का प्रतिरोध अनिवार्यतया नये तरीकों से होना चाहिए। दूसरी तरफ जैसा कि हमने पहले ही देखा, ब्रितानी शासन और उसकी नीतियों की प्रकृति में सन् 1858 के बाद एक बड़ा परिवर्तन आया। वह अधिक प्रतिक्रियावादी हो गयी। भारत का शिक्षित वर्ग धीरे धीरे लेकिन व्यापक तौर पर ब्रितानी नीतियों की पहले से अधिक आलोचना करने लगा। उसने ब्रितानी शासन की शोषण की प्रकृति को समझना शुरू किया। यह ध्यान देने की बात है कि उपनिवेशवाद संबंधी किसान वर्ग की स्वाभाविक प्रतिक्रिया की तुलना में आधुनिक भारतीय शिक्षित वर्ग की प्रतिक्रिया संकोचपूर्ण, कम सशक्त और कम वैज्ञानिक थी। भारतीय शिक्षित वर्ग की समझ को विकसित होने में काफी समय लगा—लेकिन क्योंकि विचारों पर आधारित प्रक्रिया एक बार शुरू हो गयी थी, उसने साम्राज्यवाद की वास्तविक प्रकृति को गहराई में उतरकर समझा और नतीजा यह हुआ कि वह एक आधुनिक राजनीतिक कार्यकलाप में बदल गयी।

राजनीतिक दृष्टि से प्रबुद्ध भारतीयों ने अनुभव किया चूंकि उस वक्त के राजनीतिक संगठनों की स्थापना संकीर्ण दृष्टि से की गयी थी अतः वे बदलती हुई परिस्थितियों में लाभकारी नहीं होंगे। उदाहरण के लिए ब्रिटिश इण्डिया एसोसिएशन, जिसने अपने को तेजी के साथ जमींदारों के हितों से जोड़ लिया था और अंततः शासकों के साथ हो गया। लेकिन नयी राजनीति को तीव्रतापूर्वक ब्रितानी शासन के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित करना था। इसीलिए उन्होंने एक नये प्रकार के राष्ट्रवादी राजनीतिक संगठन का रास्ता टटोल निकाला।

सन् 1866 में दादाभाई नौरोजी ने भारतीय प्रश्नों पर विचार विमर्श करने और ब्रितानी जनता के मत को प्रभावित करने के लिए लंदन में 'ईस्ट इंडिया एसोसिएशन' का संगठन

किया। भारत के बडे नगरा म भी उसकी शाखाए सगठित की गयी। दादाभाई नौरोजी शीघ्र ही अपने समकालीना आर भारत की बाद की पीढियों म भारत के महान वृद्ध पुरुष' के रूप मे परिचित हाने वाले थे। उनका जन्म सन् 1825 में हुआ था। वह एक सफल व्यवसायी हुए लकिन उन्हाने अपना सारा जीवन आर सपत्ति राष्ट्रीय आदोलन को समर्पित कर दी। उनकी सबसे बडी देन ब्रितानी शासन का आथिक विश्लेपण है। उन्होने दिखाया कि भारत की गरीबी और आर्थिक पिछडापन स्थानीय स्थितियो म निहित नही ह वरन् उसका कारण आपनिवेशिक शासन हे जो भारत की पूजी आर सपत्ति को निचोड ले रहा था। अपने जीवन म आदि से अत तक वे युवका के सपर्क म रह ओर निरतर अपने चितन ओर राजनीति को परिवर्तनवादी दिशा मे विकसित करते रहे। सन् 1870 म न्यायमूर्ति रानाडे गणेश वासुदेव जोशी एस एच चिपलुणकर तथा अ य लोगों ने 'पूना सार्वजनिक सभा' का सगठन किया। सभा ने आने वाले 30 वर्षो तक सक्रिय रूप से राजनीतिक शिक्षण का कार्य किया।

सन् 1876 80 के बीच में लिटन के वायसराय होने के दोर म खुले ढग से प्रतिक्रियावादी आर भारत विराधी जा कदम उठाये गये उनके कारण भारतीय राष्ट्रवादिया के कार्यकलाप की मद गति तेज हो गयी। लकाशायर के उत्पादका को तुष्ट करने के लिए ब्रितानी कपडा पर से आयात शुल्क की समाप्ति से अपन परों पर खडा हाते हुए भारत के कपडा उद्योग स सबद्ध लोगा में ईर्ष्या जगी। अफगानिस्तान के विरुद्ध आक्रमण आर विस्तारवादी युद्ध हुआ। इसके खर्च की पूर्ति की जिम्मेदारी भारतीय खजाने पर थोपी गयी। शस्त्र कानून को इस उद्देश्य से लागू किया गया कि भारतीय जनता के लिए किसी भी तरह का प्रतिरोध असभव हो जाय और वह अपने बचाव तक के लिए अपने का प्रशिक्षित न कर सके भारतीय भापा प्रेस विधेयक जिसके सहारे ब्रितानी शासन की बढती हुई आलाचना पर प्रतिबध लगाने की व्यवस्था हुई। दिल्ली म उस समय शाही दरबार का आयोजन किया गया जब लाखो की सख्या में लोग अकाल से मर रहे थे। भारतीय नागरिक सवा की तुलनात्मक परीक्षा के लिए नियत 21 वर्ष की अधिकतम आयु का 19 वर्ष कर दिया गया आर उसके फलस्वरूप भारतीया के उस सवा म आने की सभावना आर कम हो गयी। य सार कदम ब्रितानी शासन के शोपक ओर औपनिवशिक चरित्र की स्पष्ट अभिव्यक्ति थे। पूरे दश में एक साथ ही इन कदमों क विराध में आयोजन हुए। स्वदेशी क सिद्धात का पहला उपदेश 19वीं शताब्दी के सातवे दशक म भारताय उद्योग को ब्रितानी उत्पादका के हमल से बचाने की पद्धति के रूप म सामन आया।

युवा भारतीयो की नयी राजनीतिक मनस्थिति का दशन पहल पहल बगाल म हुआ। ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन की रूढिवादी आर जमींदार समथक राजनीति उन मध्य और शिक्षित वर्ग के लागों के अनुकूल नहीं पडती थी जिन्होंने जमींदारा क मुकाबल म खडा होन वाला जनता का अगुवाई का दावा किया। उन्हाने इस सिद्धात का भी मानने से इकार कर दिया कि भारत की अनिवार्यतया अनत काल तक ब्रितानी शासन के अतगत रहना

किसी भी हालत म इसमे कोई संदेह नहीं कि सन् 1885 म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ छोटे स्तर पर सकोचपूर्वक मद गति से लेकिन सगठित रूप म देश की स्वतत्रता के लिए सघर्ष शुरु हो गया। इसे साल दर साल अपनी शक्ति को बढ़ाकर अतत भारतीय जनता को विदेशी सरकार के विरुद्ध चलने वाले सशक्त और जुझारू आदोलन स सपृक्त करना था।

जो भी हो यह मानना गलत होगा कि सन् 1805 और 1905 के बीच राष्ट्रीय चेतना को जो प्रसार हुआ उसका एकमात्र या मुख्य माध्यम कांग्रेस ही थी। उस दौर म राष्ट्रीयता को धारदार बनाने या उसे विकसित करने की अनेकों और दिशाए थीं बहुत से स्थानीय और प्रातीय स्तर के राजनीतिक सगठन अनुदिन राजनीतिक आदोलन चला रहे थ। हर वर्ष प्रातीय सम्मेलन होते थे जिनमें बडी सख्या मे जनता हिस्सा लेती थी। राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने राष्ट्रीयता के प्रचारक और सगठनकर्ता का काम किया। उस समय के अधिकतर समाचारपत्र व्यापारिक लाभ के लिए नहीं बल्कि सजगतापूर्वक राष्ट्रीय कार्यकलापो के अग के रूप म प्रकाशित किय गये। उनके स्वामियो और सपादको को अक्सर निजी रूप म अपार त्याग करना पड़ा था। उस काल के सभी बडे समाचारपत्रो की स्थापना राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म से पहले ही हो चुकी थी। बगाल म **अमृत बाजार पत्रिका इंडियन मिरर सजीवनी** और **बगाली** मद्रास मे **हिंदू, स्वदेशमित्रन आध्रप्रकाश** और **केरल पत्रिका** बबई के **मराठा केसरी इदुप्रकाश** और **सुधारक** उत्तर प्रदेश के **एडवोकेट, हिंदुस्तानी** और **आजाद** पजाब के **ट्रिब्यून अखबार ए-आम** और **कोहेनूर** उस दौर के प्रमुख राष्ट्रीय समाचारपत्रो में से थे।

प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों के क्रियाकलाप और कार्यक्रम

प्रारंभिक दौर के भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ का विश्वास था कि राजनीतिक मुक्ति के लिए सीधे सघर्ष का कार्यक्रम इतिहास की कार्यसूची में अभी नही था। कार्यसूची म था राष्ट्रवादी भावना का पैदा किया जाना उसे गहन करना राष्ट्रवादी राजनीति के दायरे में भारतीय जनता को अधिक सख्या म लाना और उन्हे राजनीति और राजनीतिक आदोलन और सघर्ष के लिए प्रशिक्षित करना। इस दृष्टि से पहला महत्वपूर्ण कार्य था राजनीतिक प्रश्नो म जनता की रुचि उत्पन्न करना और देश म जनमत का सगठन। दूसरा देशव्यापी स्तर पर लोकप्रिय मागो को व्यवस्थित रूप म रखना ताकि विकसित होता हुआ जनमत सारे देश का ध्यान आकर्षित कर सके। पहले चरण म सबसे महत्वपूर्ण था राजनीतिक दृष्टि स प्रबुद्ध देशवासियो और राजनीतिक नेताओ-कार्यकर्ताओ म राष्ट्रीय एकता की भावना का जागरण। प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादी इस तथ्य के प्रति पूर्णतया सतर्क थ कि भारत निर्माण की प्रक्रिया में है। भारतीय राष्ट्रीयता धीरे धीरे अस्तित्व म आ रही थी अत यह मानकर नही चला

जा सकता था कि इसकी सिद्धि हो गयी है। राजनीतिक नेताओं का क्षेत्र जाति और धर्म के पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर राष्ट्रीय एकता की भावना को गहराने और विकसित करने का काम निरंतर और अनिवार्य रूप में करना ही था। उदाहरण के लिए, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आशा की कि वह देश के विभिन्न भागों के सक्रिय राष्ट्रवादियों के बीच मित्रता के संबंधों का प्रगाढ़ करने की दिशा में एक छोटी सी शुरुआत करेगी। प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों ने अपनी आर्थिक और राजनीतिक मांगों को इस दृष्टि से तैयार किया था ताकि वे भारतीय जनता को एक समान आर्थिक और राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर संगठनबद्ध कर सकें।

साम्राज्यवाद का आर्थिक विवेचन

संभवतया प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों का सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक काम उनका साम्राज्यवाद का आर्थिक विवेचन था। उन्होंने उस वक्त के आर्थिक शोषण के तीनों रूपों यानी व्यापार, उद्योग और वित्त पर नजर रखी। वे अच्छी तरह समझ गये कि ब्रिटेन के आर्थिक साम्राज्यवाद के पीछे सार दृष्टि भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रितानी अर्थव्यवस्था के अधीन रखना है। उन्होंने औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के मूलभूत लक्षणों (यानी भारत को कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता, ब्रितानी उत्पादकों के बाजार तथा विदेशी पूंजी लगाने के एक क्षेत्र मे बदलने) को विकसित करने के ब्रितानी प्रयत्न का जोरदार विरोध किया। उन्होंने उपनिवेशवादी ढांचे पर खड़ी सरकार की प्राय सभी आर्थिक नीतियों के विरोध में प्रभावशाली आंदोलन आयोजित किये। अलावा इसके उन्होंने आर्थिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह पैरवी की कि भारत पर ब्रिटेन की आर्थिक अधीनस्थता कम की जाय—यहां तक कि उसे समाप्त कर दिया जाये।

इस दौर के राष्ट्रवादियों ने भारत की बढ़ती हुई गरीबी की चर्चा अपने लेखों और भाषणों मे निरंतर की और उसे ब्रिटेन द्वारा भारत के आर्थिक शोषण से जोड़ा। दादाभाई नौरोजी ने इशारा किया कि भारतवासी 'मात्र परजीवी-दास' थे। वे अमरीकी गुलामों से भी बदतर थे क्योंकि कम से कम उनकी देखरेख उन अमेरिकी मालिकों द्वारा की जाती थी जिनकी वे संपत्ति थे। उन्होंने घोषणा की कि ब्रितानी शासन, अनंतकाल तक का बढ़ता निरंतर बढ़ता हुआ ऐसा विदेशी आक्रमण है जो धीरे धीरे लेकिन पूरी तरह देश को नष्ट' कर रहा है।

इन राष्ट्रवादियों ने परंपरागत हस्तशिल्प उद्योग के विनाश और आधुनिक उद्योगों के विकास को बाधित करने वाली सरकार की आर्थिक नीतियों की निंदा की। उनमें से अधिकतर ने भारत की रेलों, उद्योगों और चाय-काफी के बागानों में लगाये जाने के लिए बड़ी मात्रा में विदेशी पूंजी के आयात का इस आधार पर विरोध किया कि उसकी वजह से भारतीय

आदोलन चलाया। उन्होने सरकार से राज्य द्वारा सचालित कृषि बैंको से किसानो को कम सूद पर ऋण दिलवाने ओर बडे पैमाने पर सिचाई सुविधाओ की व्यवस्था करने की माग की। उनमें से कुछ ने भूमि सबधी उन अर्द्धसामती रिश्तो को भी निन्दा की जिसे अग्रेज बनाये रखने के प्रयत्न मे थे। उन्होने बागानो के मजदूरो की हालत मे सुधार लाने के लिए आदोलन किये। कराधान ओर व्यय के उस समय के स्वरूप मे भी आमूल परिवर्तन करने की माग की। उन्होंने ध्यान दिलाया कि कराधान की वर्तमान प्रणाली से गरीबो पर भारी बोझ पडता है जबकि धनवान खासकर विदेशियो पर उसका असर बहुत कम पडता है। अत उन्होने नमक कर और अन्य करो को समाप्त करने की माग की जिनसे गरीब ओर निम्न-मध्य वर्ग के लोग बुरी तरह प्रभावित थे। उनका कहना था कि व्यय का उस वक्त का स्वरूप भारतीयों के विकास और कल्याण की अभिवृद्धि करने के बजाए ब्रिटेन की शाही आवश्यकताओ की पूर्ति का साधन था। उन्होने उस सेना पर ऊची रकम खर्च किये जाने की निदा की जिसका इस्तेमाल एशिया ओर अफ्रीका मे ब्रिटेन का आधिपत्य बनाये रखने के लिए होता था। उन्होने उस नागरिक सेवा के खर्च पर भी आक्रमण किया जिसके सदस्यो को देश के आर्थिक विकास के अनुपात से बहुत अधिक वेतन दिया जाता था। उन्होने निंदा की उस सरकारी नीति की जो विदेश व्यापार ओर रेलो के विकास की अभिवृद्धि इसलिए कर रही थी ताकि उत्पादित माल का आयात ओर कच्चे माल का निर्यात बढे। उनका कहना था कि व्यापार ओर यातायात की नीतिया इस तरह चलायी जानी चाहिए जिससे देश के भीतर आर्थिक विकास हो।

साम्राज्यवाद विरोधी आलोचना के राष्ट्रवादियो के शस्त्रागार मे एक सर्वाधिक सशक्त हथियार था निष्क्रमण सिद्धात । उन्होने कहा कि भारतीय धन ओर पूजी का एक बडा भाग या तो देश के बाहर भेज दिया जाता है या उसका एकपक्षीय ढग से कर्जो के ब्याज भारत में लगी ब्रितानी पूजी की कमाई ओर यहा पर सेवा करने वाले सैनिक या नागरिक अधिकारियों के वेतन और पशन के रूप मे निर्यात कर दिया जाता है। निष्क्रमण ही विदेश द्वारा भारत के आर्थिक शोषण का प्रकट ओर ठोस स्वरूप था। इस निष्क्रमण पर हमला करके उन राष्ट्रवादियो ने साम्राज्यवादी अर्थशास्त्र के सारतत्व पर ही आपत्ति कर दी। यह एक प्रतीक भी था जिसके माध्यम से आम जनता औपनिवेशिक शोषण की स्थिति को समझ सकती थी। [1]

उन दिनो यह दावा किया जाता था कि ब्रितानी शासन ने भारत को जानमाल की सुरक्षा का लाभ दिया। इस दावे पर आपत्ति करते हुए दादाभाई नोरोजी ने कहा

> कल्पना यह है कि भारत मे जान ओर माल की सुरक्षा है। वास्तविकता यह है कि ऐसी कोई चीज नहीं है। जान ओर माल की सुरक्षा एक अर्थ मे या एक तरह से यो है कि लोग आपस की या देशी निरकुश राजाओ की हिंसा से सुरक्षित हैं लेकिन इगलैंड की जकडन कुछ ऐसा है कि सपत्ति की सुरक्षा बिलकुल नहीं

> है और परिणामस्वरूप जान की सुरक्षा नहीं है। भारत का सम्पत्ति सुरक्षित नहीं है। जो कुछ सुरक्षित है और अच्छी तरह सुरक्षित है वह यह है कि इंग्लैंड पूरी तरह निश्चिंत और सुरक्षित है। वह ऐसा ही करता है। पूर्णतया सुरक्षित ढंग से भारत से धन ले जाता है। उसकी सम्पत्ति का आकलन की दर से ३ या ४ करोड़ पाउंड सालाना हजम कर रहा है। अतः मैं विनम्रता के साथ यह कहने का साहस करता हूँ कि भारत जान और माल की सुरक्षा का सुख नहीं भोग रहा है। भारत में लाखों लोगों के लिए जीवन का अर्थ है आधा पेट भोजन भुखमरी अकाल और बीमारी।

अंग्रेजों ने यह सुझाव का भी प्रयत्न किया कि उनके आने के साथ साथ देश में कानून और व्यवस्था के समान निर्वाह का प्रारंभ हुआ। इसका खंडन करते हुए उन्होंने तिरस्कार के साथ व्यंग्यात्मक ढंग से कहा

> एक भारतीय कहावत है 'प्रार्थना करता हूँ कि मारना है तो पीठ पर मारो पेट पर मत मारो'। देश के निरंकुश राजाओं के राज्य में लोग जो कुछ भी पैदा करते हैं उसे रखते हैं और उसका सुख भोगते हैं यद्यपि कभी कभी उन्हें पीठ पर मार खानी पड़ती है। ब्रितानी भारत के निरंकुशों के राज्य में आत्मा शांतिपूर्वक है कहीं हिंसा नहीं है। उसके रक्त को निचोड़ कर बाहर ले जाया जा रहा है। परोक्ष रूप में शांतिपूर्वक और निपुणता के साथ वह कानून और व्यवस्था का पालन करते हुए शांति में भूखा रहता है और शांति में मर जाता है।

इस तरह आर्थिक प्रश्नों पर जो आन्दोलन हुए उनके फलस्वरूप देशव्यापी स्तर पर यह मत विकसित हुआ कि ब्रितानी शासन भारत के शोषण पर टिका है और देश को निर्धन बना रहा है। उसने आर्थिक पिछड़ेपन और विश्वासहीनता को जन्म दिया है। ये हानियां उन परोक्ष लाभों से वजन में बहुत भारी थीं जो ब्रितानी शासन के कारण संभवतया मिले हों।

प्रशासनिक सुधार

प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादी अधिकारीविशेष द्वारा उठाये गये प्रशासनिक कदमों के निर्भय आलोचक थे। उन्होंने भ्रष्टाचार अक्षमता और दमन में लिपटी प्रशासनिक प्रणाली में सुधार लाने के लिए निरंतर कार्य किया। जिस सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रशासनिक सुधार के लिए उन्होंने आंदोलन किया वह था प्रशासनिक सेवा की उच्चतर श्रेणी के पदों का भारतीयकरण। यह मांग आर्थिक राजनीतिक और नैतिक आधार पर प्रस्तुत की गयी। आर्थिक आधार यह कि यूरोपवासियों को दिये जाने वाले ऊंचे वेतन के कारण भारतीय वित्त पर एक बड़ा बोझ पड़ता था, और क्योंकि उस वेतन का बड़ा भाग ब्रिटेन भेज दिया जाता था अतः

निष्क्रमण को बढ़ावा मिलता था। राजनीतिक आधार यह कि यूरोपीय नागरिक प्रशासक भारतीय आवश्यकताओं को नजरअंदाज करते थे। खासकर भारतीय पूंजीपतियों की कीमत पर यूरोपीय पूंजीपतियों की पक्षधरता करते थे। नैतिक आधार यह कि उसने भारतीय चरित्र को बौना बना दिया और उसे अपने ही देश में हीनता की एक स्थायी स्थिति में ला दिया। इसी के साथ उन राष्ट्रवादियों ने कम वेतन पाने वाले निचली श्रेणी के कर्मचारियों को अधिक वेतन दिलवाने के लिए आंदोलन किया। वे मानते थे कि निचले स्तर पर अक्षमता और भ्रष्टाचार काफी दूर तक इसलिए था क्योंकि नौकरियों का वेतन बहुत कम था।

पुलिस और सरकार के एजेंटों का व्यवहार आम जनता के प्रति क्रूरतापूर्ण और दमनकारी था। उन राष्ट्रवादियों ने उसके विरुद्ध भी लगातार आंदोलन किया। राष्ट्रीय समाचारपत्रों में नित्य ही इस तरह के अत्याचारों का विवरण देने वाले अनेक समाचार प्रकाशित होते थे। राष्ट्रवादियों ने न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग कर देने की मांग की कि जनता को उससे कुछ सुरक्षा प्राप्त हो सके। उन्होंने मुकदमों में विभिन्न स्तरों पर कम और ज्यादा रुपये खर्च किये जाने की कानूनी बाध्यता के कारण पैदा होने वाले विलंब की निंदा की। जब भी किसी भारतीय और यूरोपीय के बीच फौजदारी का मुकदमा हो जाता था न्यायाधीश यूरोपियों का पक्ष लेने लगते थे। राष्ट्रवादियों ने इस न्यायिक विकार की निंदा करते हुए मांग की कि कानून द्वारा प्रदत्त समानता का अधिकार यूरोपियों पर भी लागू किया जाना चाहिए। उन्होंने जनता को निरस्त्र करने की नीति का विरोध किया और पैरवी की कि हर व्यक्ति को अस्त्र रखने का अधिकार है। उन्होंने भारत के पड़ोसी देशों के प्रति सरकार की आक्रामक विदेश नीति का तथा बर्मा को भारत में मिलाने अफगानिस्तान पर आक्रमण करने और पश्चिमोत्तर भारत के आदिवासियों के दमन का विरोध किया।

भारत में जनकल्याण संबंधी सेवाएं बहुत छोटे स्तर पर चल रही थीं। उन राष्ट्रवादियों ने इसकी निंदा करते हुए मांग की कि सरकार राज्य के जनकल्याण संबंधी कामों का उत्तरदायित्व ले और उसे विकसित करे। खास तौर पर उन्होंने आम जनता में शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने तकनीकी और उच्चतर शिक्षा के लिए अधिक सुविधाओं तथा चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं को विस्तृत करने की भी मांग की। इन सबसे आगे जैसा कि हमने पहले ही देखा है उन्होंने भारतीय उद्योग और कृषि के विकास के लिए प्रभावशाली शासकीय कदम उठाने की मांग की।

उन नेताओं ने दक्षिण अफ्रीका मलाया मारिशस, फिजी वेस्ट इंडीज और ब्रिटिश गुयाना जैसे ब्रितानी उपनिवेशों में विस्थापित भारतीय मजदूरों की स्थिति को भी अपने आंदोलन का मुद्दा बनाया। इन देशों में भारतीय मजदूरों को रंगभेद की सबसे अधिक निकृष्ट नीति और हर तरह के दमन का शिकार होना पड़ता था। ज्यादातर अर्थों में उनकी हालत गुलामी से अच्छी नहीं थी। सन् 1893 के बाद दक्षिण अफ्रीका में मोहनदास करमचंद गांधी ने मानवीय अधिकारों के लिए जो जनव्यापी संघर्ष किया उसे राष्ट्रवादियों ने पूरा समर्थन दिया।

विदेशी किसानों ने कम मजदूरी देकर ऐसी स्थिति पैदा कर दी थी जिसमे मजदूर लगभग गुलामी की जिन्दगी जीने के लिए मजबूर हो गये थे। राष्ट्रवादियों ने उनके मसले को भी अपने हाथ में लिया। लेकिन इसी के साथ यह बात भी ध्यान देने की है कि उन्होंने भारतीय कारखानों और खानों में काम करने वाले उन मजदूरों के बचाव में कोई आवाज नहीं उठायी जो निर्दयी शोषण के शिकार बना दिये गये थे। इस मामले मे भारतीय नेताओं ने देशी पूंजीपतियों के हितों को प्राथमिकता दी।

नागरिक अधिकारों की सुरक्षा

राजनीतिक दृष्टि से प्रबुद्ध भारतीयों के मन में शुरू से ही आधुनिक नागरिक अधिकारों (भाषण प्रेस विचार और सगठन बनाने की स्वतत्रता) के प्रति तीव्र आकर्षण था। परिणाम यह कि जब कभी भी सरकार ने इन नागरिक अधिकारों को सीमित करने का प्रयत्न किया उन्होंने जोरदार ढग से उनका बचाव किया। भारतीय भाषा प्रेस विधेयक (1878) द्वारा कोशिश की गयी थी कि प्रांतीय भाषाओं में छपने वाले समाचारपत्रों की जबान बन्द कर दी जाये। इसका दृढतापूर्वक तब तक विरोध किया जाता रहा जब तक कि सन् 1880 में विधेयक को निरस्त नहीं कर दिया गया। इसी तरह सन् 1880 90 के बीच सरकारी गोपनीयता को बचाये रखने के नाम पर समाचारपत्रों के आलोचना करने के अधिकार को खत्म करने की कोशिश की गयी और इसका भी कडा विरोध किया गया।

इस सिलसिले में सबसे नाटकीय घटना थी बालगगाधर तिलक तथा और बहुत से नेताओं तथा सपादकों की सन् 1897 में गिरफ्तारी। कुछ पर ब्रितानी भारत की सरकार के प्रति विद्वेष फैलाने का अभियोग लगाया गया था। श्री तिलक उस समय तक एक महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी नेता के रूप में विख्यात हो चुके थे। उन्हे 18 महीने की कठोर बर्बर जेल की सजा दी गयी। नाटू बधू के रूप मे ख्यात पूना के दो नेताओं को बिना मुकदमे की सुनवाई किये कालापानी भेज दिया गया। अन्य बहुत से सपादकों को भी ऐसी ही सजाए दी गयीं। राष्ट्रीय समाचारपत्र और राजनैतिक सगठन नागरिक अधिकारों पर हुए इस आक्रमण का मुकाबला करने के लिए कमर कसकर तैयार हो गये और एक देशव्यापी विरोध आदोलन आयोजित हुआ। बालगगाधर तिलक रातोरात एक अखिल भारतीय स्तर के लोकप्रिय नेता हो गये और जनता ने उन्हें लोकमान्य की उपाधि दी।

अब सरकार ने भाषण और प्रेस की स्वतत्रता को कम करने और पुलिस के अधिकार बढाने के लिए नये कानून बनाये। विधेयक के बाद राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं पर भी वे ही कानून लागू किये जा सकते थे जिनका इस्तेमाल गुडो बदमाशों के लिए होता था। इन कानूनों का देशव्यापी विरोध हुआ। वास्तव मे इसी के साथ साथ नागरिक अधिकारों की सुरक्षा का सघर्ष स्वतत्रता के सघर्ष का एक अविच्छिन्न अग बन जाने वाला था।

संवैधानिक सुधार और स्वशासी सरकार की माग

प्रारंभिक दार के राष्ट्रवादी शुरू स ही यह विश्वास करते थ कि भारत का अतत एक स्वशासी सरकार का माग की दिशा म बढना चाहिए। लकिन उन्हान इस उद्देश्य को तत्काल पूरा कर दन की माग नही का। इसकी जगह पर उन्हान स्वतत्रता प्राप्ति की दिशा म एक एक करके कदम रखने का सुझाव दिया। उनकी तात्कालिक राजनीति अत्यत सामान्य थी। प्रारभ उन्हान यह कह भर दिया कि विधान परिषदो का विस्तार आर सुधार करके भारतीय जन का सरकार म अधिक हिस्सा दना चाहिए। भारतीय विधान परिषद विधेयक (इंडिया काउंसिल्स एक्ट) सन् 1861 क अनुसार परिषदा म कुछ गरकानूनी लागा का मनानीत करने की व्यवस्था हुई थी। सरकार द्वारा मनानीत वे गरसरकारी व्यक्ति प्राय जमींदार या बडे व्यापारी होते थ जा पूरे तार पर सरकारा दृष्टिकोण के समर्थक थ। प्रमाण के लिए सन् 1888 म उन्हाने बिना किसी सकाच क नमक कर की वृद्धि का समथन किया। काग्रसा मच पर उन्ह अक्सर व्यग्य के साथ 'जी हुजूरा' या शानदार धुरहू-कतपारू' के रूप में याद किया जाता था। राष्ट्रवादिया न विधान परिषदा के अधिकारो को व्यापक करने आर सदस्यों के अधिकारा म वृद्धि करन की माग की ताकि व बजट पर बहस कर सके आय दिन के प्रशासन की समालोचना कर सक उस पर आपत्ति कर सकें। इन सबस आगे उन्हाने माग की कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधिया का परिषद का सदस्य बनाया जाय।

सार्वजनिक दबाव मे सरकार ने पुरानी व्यवस्था मे सशोधन करके नया भारतीय विधान परिषद विधेयक (1892) पास किया। विधेयक ने गरसरकारी सदस्या की सख्या मे वृद्धि की लेकिन उनम से कुछ सदस्यो का चुनाव परोक्ष रूप म होना था। सदस्यो को बजट पर बालने का अधिकार भी दिया गया लेकिन उन्हें उस पर मत दने का अधिकार नहीं मिला। इस तरह का अल्प सुधार भारतीयो के असतोष को बिलकुल कम नही कर सका। उन्हें लगा कि उनकी मागा का मजाक उडाया गया है। अब उन्होन इस बात के लिए आदोलन किया कि परिषद म गरसरकारी निर्वाचित सदस्यो का बहुमत होना चाहिए। बल्कि उनकी सबसे बडी माग यह थी कि जन-कोष पर गरसरकारी भारतीय नियत्रण होना चाहिए। उन्होने नारा लगाया 'बिना प्रतिनिधित्व के कराधान नहीं'। लेकिन इसी के साथ व अपनी जनतान्त्रिक मागा के आधार का व्यापक बनाने म असफल रहे। उन्हाने आम जनता या स्त्रिया को मतदान का अधिकार दिलाने की माग नही की। जाहिर था कि उनकी मागों से *केवल मध्य* और उच्च वर्ग का लाभ मिलता।

प्रारंभिक दार क राष्ट्रवादियों ने अपने राजनीतिक उद्देश्या की दिशा मे शताब्दी की समाप्ति के वक्त तक काफी प्रगति की। उनकी माग मामूली सुधारो तक सीमित नहीं थीं। अब उन्होंने माग की कि आस्ट्रेलिया आर कनाडा जैसे स्वशासी उपनिवेशा की तरह भारत म भी पूर्णतया स्वशासी सरकार हो और वित्त तथा विधान दानो पर भारत का पूर्ण नियत्रण

हो। उ होने प्रणाली में परिवर्तन की माग की। प्रमाण के लिए सन् 1904 म दादाभाई नाराजी ने ओर सन् 1905 म गोपाल कृष्ण गाखले ने भारतीय काग्रेस के अध्यक्ष के रूप म भाषण देते हुए यह माग की। दादाभाई नौरोजी पहले भारतीय थे जिन्हाने सन् 1906 मे कलकत्ता में काग्रेस के अधिवेशन मे इस माग के लिए स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया। इस प्रकार आरंभिक दोर और उसके बाद के राष्ट्रवादियो म मूलभूत असहमति राजनीतिक लक्ष्य की परिभाषा को लेकर नहीं थी। वास्तविक असहमति थी सम्मत लक्ष्या की प्राप्ति के लिए सघर्ष के तरीके को लेकर और उन सामाजिक वर्गो या गुटों के चरित्र को लेकर जिनके आधार पर संघर्ष शुरू करना था। दूसरे शब्दा में असहमति लक्ष्या को लेकर नहीं उ'ह व्यावहारिक रूप में प्राप्त करने के तरीके को लेकर थी।

राजनीतिक कार्य के तरीके

राजनेतिक कार्य करने के लिए प्रारंभिक दार के राष्ट्रवादिया ने जो तरीके अपनाये उन्हीं की वजह से उ हे नरमपथी की उपाधि मिली। सक्षेप म कहा जा सकता है कि ये तरीके छोटे रूप मे धीरे धीरे व्यवस्थित राजनीतिक प्रगति क लिए अपने को सवेधानिक आदोलन के चाखटे में सीमित रखकर काम करते थे। वे विश्वास करते थे कि उनका मुख्य काम जनता को आधुनिक राजनीति मे शिक्षित करना राष्ट्रवादी राजनीनिक चेतना को विकसित करना और राजनीतिक प्रश्नों पर एक सगठित जनमत तयार करना था। इस लक्ष्य के लिए उ होने बहुत से तरीको पर भरोसा किया। उन्होने बठकें आयोजित कीं जिनमें बहुत उच्च स्तर के राजनतिक ओर बोद्धिक भाषण दिये जाते थे तथा लोकप्रिय मागा को लेकर प्रस्ताव पारित किये जाते थे। समाचारपत्रों के जरिय उन्होंने निरतर सरकार क गुणदोष का विवेचन किया। उन्हाने उच्च सरकारी अफसरों ओर ब्रितानी ससद को अनेकों याचिकाए ओर स्मरणपत्र तक दिये। वे याचिकाए और स्मरणपत्र सावधानीपूर्वक तैयार किये गये दस्तावेज होते थे जिनम परिश्रमपूर्वक तर्कों ओर तथ्या को क्रमबद्ध रूप में रखा गया होता था। हालाकि प्रत्यक्ष रूप मे वे याचिकाए सरकार को सबोधित होती थी लेकिन उनका वास्तविक उद्देश्य भारतीय जनता को शिक्षित करना होता था। प्रमाण के लिए जब सन् 1891 म पूना सावजनिक सभा द्वारा सावधानीपूर्वक तेयार किये गए स्मरणपत्र का सरकार की आर से दो पक्तिया म उत्तर आया और उस पर युवक गोखले ने निराशा प्रकट की तो न्यायाधीश रानाड ने उत्तर देते हुए कहा

> आप यह महसूस नहीं करते कि हमारे देश के इतिहास म हमारा क्या स्थान है। य स्मरणपत्र सरकार को नाममात्र के लिए सबोधित किये जान ह। वास्तव मे वे सबोधित होते ह जनता को ताकि वह जान सके कि इन मामलों में कैसे

सोचा जाता है। क्योंकि इस तरह की राजनीति यहा के लिए एकदम नयी है
अत किसी आर परिणाम की आशा किये बगर इस काम को आने वाले अनेको
वर्षो तक करते रहना आवश्यक ह।

उन नताआ के राजनीतिक कामों का दूसरा उद्देश्य इच्छित परिवर्तन लाने के लिए ब्रितानी सरकार आर जनमत को प्रभावित करना था। उन्हें यकीन था कि अग्रेजों को भारत की वास्तविक स्थिति का पता नहीं था। अत उन्होंने याचिकाओं आर स्मरणपत्रो के जरिये ओर ब्रिटेन मे सक्रिय राजनैतिक प्रचार करके ब्रितानी जनता आर उसके नेताआ को (भारत की परिस्थिति के प्रति) प्रबुद्ध करना शुरू किया। सन् 1889 में राष्ट्रीय काग्रेस की एक ब्रिटिश कमेटी की स्थापना की गयी। भारत के शीर्षस्थ नेताआ के प्रतिनिधिमडल ब्रिटेन भेजे गये। इस समिति ने सन् 1890 मे इंडिया नाम की पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। दादाभाई नौरोजी ने ब्रिटेन में रहकर वहा की जनता और राजनीतिज्ञों के बीच प्रचार कार्य करने में अपने जीवन आर आय का एक बडा भाग लगा दिया।

हालांकि प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों ने केवल कानूनी आदोलन में विश्वास किया लेकिन उसे भी सीमित आधार पर ही सही (सिवाय समाचारपत्रों के माध्यम के) वे देशव्यापी स्तर पर सगठित करन या निरतर चलात रहने में सफल नहीं हुए। इसका एक कारण कोष की नितात कमी थी। वे निरतर धन क अभाव में रह। उस वक्त तक धनी भारतीयो जैसे जमींदारों व्यापारिया आर पूजीपतिया ने राष्ट्रीय आदोलन के लिए वित्तीय सहायता नहीं दी थी। अधिसख्य राजनीतिक नेताआ को अपनी ही कमाइ का सहारा था जो प्राय बहुत अल्प थी। प्रमाण के लिए सुरेंद्रनाथ बनर्जी आर गोपाल कृष्ण गाखले। दोनों शिक्षक थे। उन्हें उसी मामूली कमाई पर निर्वाह करना पडता था। तिलक ने कानून के छात्रा को पढाने के लिए निजी क्लास खोल रखा था। अशत कोष की इस कमी की वजह से प्रारंभिक दौर म राष्ट्रवादियो में वकालत आर पत्रकारिता के दो स्वतत्र पेशों के लोगों की प्रधानता रही।

जनता की भूमिका

प्रारंभिक दार के आदालन की मूलभूत कमजारी उसके सामाजिक आधार की सकीर्णता म थी। उस वक्त लाग उसके प्रति व्यापक रूप स आकर्षित नहीं हुए थे। उसके प्रभाव का क्षेत्र मुख्यतया शहरा के शिक्षित भारतीया तक सीमित था। विशेषकर नेतृत्व भी पेशेवर वर्गो यथा वकीला डाक्टरा पत्रकारा, शिक्षका आर कुछ व्यापारियों तथा भू-स्वामिया क दायरे म बधा हुआ था।

जहा तक राजनीति का प्रश्न था—नेतागण जनता म विश्वास नहीं करते थे। वे मानते

थ कि भारताय लोगा म उस चरित्र आर क्षमता का अभाव ह जिसक बल पर आधुनिक राजनीति म भाग लिया जा सकता ह उस समय की सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्यवादी सत्ता क विरुद्ध सफल सघप किया जा सकता ह। सक्रिय राजनैतिक सघर्ष के मार्ग म आन वाली कठिनाइया का जिक्र करते हुए गाखले न कहा था 'देश म अनगिनत वर्ग आर उपवग ह। आबादी का बहुलाश अज्ञानी ह सनातनी भावा आर विचारा से दृढतापूवक चिपका हुआ ह वह किसी भी प्रकार क परिवर्तन के प्रति न केवल उदासीन है बल्कि उसे समझता हा नहीं है। यहा पर नरमपथी नताओ न एक भयकर भूल की। उन्हाने जनता के कवल सामाजिक सास्कृतिक आर राजनतिक पिछडपन को दखा। उन्हाने यह नही देखा कि केवल जनता क पास ही शार्य आर बलिदान क व गुण ह जिनकी एक लबे सामाज्यवाद विराधी सघर्ष को आवश्यकता ह। केवल जनता ही उनकी राजनैतिक मार्गों को आग बढाने की वास्तविक शक्ति दे सकती था यहा तक कि समय के साथ साथ उसक सास्कृतिक ओर राजनतिक पिछडपन को दूर भी किया जा सकता था। व यह मानकर चल थे कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक जुझारू जन सघर्ष कवल तभी छेडा जा सकता था जबकि भारतीय समाज के विविध वर्गो के लोग एक राष्ट्र के रूप म सयुक्त कर दिये गय हा। लेकिन वास्तव म देश क एक राष्ट्र के रूप म सयुक्त हा जान की स्थिति सघर्ष के हा दौरान आई। जनता क प्रति अपनाये गय इस गलत रुख का परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रवादिता के प्रारंभिक दार म जनता का एक निष्क्रिय भूमिका निभान का दायित्व दिया गया। हालाकि वह गलत रुख भी नताओ म इसलिए पदा हुआ था कि वे जनता स अलग-थलग थ। उस भूमिका के कारण राजनीति म नरमपथिता आयी। जन समर्थन के अभाव म नताओ न महसूस किया कि विदेशी सरकार को चुनाती देने का अभी उपयुक्त समय नहीं ह। ऐसा करन का मतलब वक्त के पहल ही दमन को न्याता दना ह। गाखले ने कहा भी आप यह महसूस नहीं करते कि सरकार के पीछे कितनी अपार शक्ति है। यदि आपक सुझाव क अनुसार काग्रस कुछ करेगा ता सरकार का पाच मिनट म ही उसका गला घाट देने म कोई कठिनाई नहीं हागी। वस्तुत बाद क राष्ट्रवादियो आर उन नरमपथिया म इसी मामले म असहमति थी। उन्हे भारतीय जनता की सघर्ष करन की क्षमता म पूरा विश्वास था। इसलिए उन्हान साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक जुझारू सघर्ष चलान की योजना की परवी की। उन्ह यकीन था कि सरकार के दमन स आदोलन का गला नहीं घुटेगा बल्कि जनता शिक्षित हागी आर साम्राज्यवाद का उखाड फकन का उसका इरादा पहल स ज्यादा मजबूत हागा।

जा भी हा आरभिक दार क राष्ट्रीय आदोलन के सामाजिक आधार की सकीर्णता स यह नतीजा नहा निकलना चाहिए कि सघर्ष कवल उन सामाजिक वर्गो या गुटा क हित क लिए हुआ जो उनम शामिल थ। उन्हाने अपने कायक्रम आर नीतिया द्वारा भारतीय जनता क हर वर्ग क मसला का उठाया आर आपनिवशिक शोषण क विरुद्ध सारे दश में हिता की अगुवाइ का। लकिन साम्राज्य विराधी सघर्ष के विरुद्ध सारी जनता को तयार

कर पाने म सफलता नहा मिली। परिणाम यह हुआ कि उस साम्राज्यवाद स असमर समझाता करने का विवश हाना पडा। यहा तक कि राज' क प्रति वफादारी की भा बात करनी पड़ी।

सरकारी रवैया

सरकार शुरू स ही राष्ट्रीय शक्तिया क विकास का विराधी रही। सन् 1878 म जब भारतीय प्रस न आपनिवेशिक नीतिया की निंदा करत हुए राष्ट्रीय चतना क प्रसार का काशिश का ता सरकार ने उसे बुरी तरह दडित किया। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना का डफरिन न संदेह का दृष्टि स दखा था। उन्हे लगा एसी सस्था अनिवार्य रूप स शासकीय नीति आर कार्यो की आलाचना करगा तथा उसका असवद्ध मागो का पूरा करना असभव होगा। उन्हाने ह्यूम को यह सुझाव दकर कि काग्रेस का राजनातिक मसला क वजाय सामाजिक मसला पर काम करना चाहिए आदालन की दिशा बदलन की काशिश की था।[1] लकिन काग्रेसी नेताआ न एसा करने इकार कर दिया था। उस वक्त तक सरकारी अधिकारिया ने खुल ढग स विराधी रवया नहीं अपनाया था। उन्हान उम्मीद की थी कि काग्रस खुद राजनातिक दृष्टि स प्रवुद्ध कुछ गिनेचुन भारतीया के बीच सद्धातिक वहस मुवाहिसा चलान तक अपने का सीमित रखगी। व राष्ट्रवादी नेतावर्ग के कुछ अधिक प्रतिभाशाली लोगा को विधान परिषद म जगह या न्यायपालिका आर दूसरी सवाआ म अच्छे वतन वाले पद देने क लिए भी तयार थ।

लकिन यह तथ्य जल्दी ही स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय काग्रेस या दूसरे राष्ट्रवादी सगठन आर व्यक्ति या समाचारपत्र सामाजिक मसला जेसे काम तक अपने को सीमित नहीं रखग। समाचारपत्र जनता तक पहुचने लग आर काग्रस न भारताय भाषाआ म जनप्रिय प्रचार पुस्तिकाए प्रकाशित करना शुरू किया। राष्ट्रवादिया क सदश जन सभाआ म सुनाये जान लग। अग्रज आम जनता में विकसित हाती हुई राजनीतिक चेतना को वदाश्त नहीं कर सके। यह आर कुछ नहीं देशद्रोह था। राष्ट्रवादिया के आर्थिक आदोलन ने साम्राज्यवाद के शापक मुखाटे को खोल कर असलियत का पर्दाफाश कर दिया। सन् 1900 म भारत सवधी मामला के ब्रितानी मत्री जार्ज हमिल्टन न दादाभाइ नाराजी स शिकायत का अपने आपका आप ब्रितानी सरकार का विश्वसनीय समथक घापित करत ह आप उन परिस्थितिया ओर परिणामा की तीव्र भर्त्सना करते ह, जा प्रशासन चलाते रखन की प्रक्रिया म पदा हात

1 आम धारणा यह है कि डफरिन के सुझाव पर ही काग्रेस ने सामाजिक मसलों स हटकर राजनीतिक क्षेत्र म प्रवेश किया था। यह धारणा गलत है और इस सुधारना चाहिए। यह गलत दृष्टिकाण सबस पहले डब्ल्यू सी वैनर्जी (उमेशचद्र) द्वारा सन् 1898 म एक लेख में प्रस्तुत किया गया था। उसके बाद अन्य लखक इसी की पुष्टि करते रहे। डफरिन क निजी कागज पत्रा स पता चलता है कि श्री वैनर्जी ने अपनी क्षीण स्मृति से जो कुछ लिखा वास्तविकता उससे उल्टी थी।

है और जिह उसमे अलग नहीं किया जा सकता। इसस पहले सन् 1880 में राष्ट्रवादी समाचारपत्रों की भूमिका के बारे में उन्होंने लिखा था 'इस तरह बिना किसी संदेह के कहा जा सकता है कि जो लोग ये समाचारपत्र पढ़ते हैं उनके मन में पक्के तौर पर यह विश्वास पैदा कर दिया जाता है कि हम सभी लोग आम तौर पर मनुष्य मात्र के और खासतौर पर भारतवर्ष के दुश्मन है।

अब अंग्रेज अधिकारियों ने खुले रूप में भारतीय कांग्रेस तथा अन्य राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं की आलोचना और निन्दा करनी शुरू कर दी। राष्ट्रवादियों को 'नमकहराम बाबू' 'देशद्रोही ब्राह्मण' और 'हिंसक खलनायक' जैसे विशेषण दिए गए। कांग्रेस को 'राजद्रोह का कारखाना' और कांग्रेसियों को 'पद न पाने वाले निराश उम्मीदवार' और एक 'असंतुष्ट वकील' कहा गया जो किसी और के बारे खुद अपना प्रतिनिधित्व करते हैं। सन् 1887 में डफरिन ने अपने एक सार्वजनिक भाषण में कांग्रेस की खिल्ली उड़ाते हुए कहा था 'यह जनता के उस अल्पसंख्यक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिसकी संख्या कम से कम है। जार्ज हैमिल्टन ने कांग्रेसी नेताओं पर यह आरोप लगाया कि 'वे देशद्रोही दिमागी चरित्र के हैं। दादाभाई नौरोजी ने ब्रिटिश सरकार का जो पर्दाफाश किया था उससे वे इतने बौखला गये कि उस महान नेता को लेकर आम गाली के स्तर पर उतर आये। उन्होंने घोषित किया कि 'इंग्लैंड में रहने तथा उग्रवादी और समाजवादी अंग्रेज नेताओं की सोहबत के कारण उनका (दादाभाई नौरोजी का) दिमाग (जो पहले जितना भी अच्छा क्यों न रहा हो) खराब हो गया है। वायसराय कर्जन ने सन् 1900 में घोषणा की 'कांग्रेस अपनी मौत की घड़ियां गिन रही है। भारत में रहते हुए मेरी एक सबसे बड़ी इच्छा यह है कि मैं उसे शांतिपूर्वक मरने में मदद दे सकूं। उन्होंने कांग्रेस को एक 'गंदी चीज' कहा। कुछ अंग्रेज प्रचारकों ने तो कांग्रेस पर यह अभियोग तक लगाया कि उसे रूस से पैसा मिलता है।

बढ़ते हुए राष्ट्रीय आंदोलन का मुकाबला करने के लिए ब्रिटानी सरकार ने फूट डालो और राज्य करो की नीति पर और अधिक जोर दिया। उन्होंने महसूस किया कि भारतीय जनता की बढ़ती हुई एकता उनके शासन के लिए मुख्य खतरा है। जार्ज हैमिल्टन ने सन् 1897 में वायसराय एल्गिन को लिखा 'भारतीय जनमानस में वहां की जातियों और धर्मों में हमारे शासन के विरुद्ध जो एकता बढ़ रही है उसकी वजह से मैं भविष्य की कल्पना करते हुए डर जाता हूं। अतः अंग्रेज अधिकारियों ने सैयद अहमद खां राजा शिवप्रसाद तथा अन्य ब्रिटेन समर्थक व्यक्तियों को एक कांग्रेस विरोधी आंदोलन शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच एक दरार पैदा करने की भी कोशिश की। उन्होंने सरकारी नौकरियों को लेकर शिक्षित भारतीयों में साम्प्रदायिक प्रतिद्वंद्विता की भावना को उभारा। सन् 1857 के विद्रोह के तत्काल बाद उन्होंने उच्च वर्ग के मुसलमानों को दबाकर मध्य और उच्च वर्ग के हिंदुओं की पक्षधरता की थी। लेकिन सन् 1870 के बाद उन्होंने मध्य और उच्च वर्ग के मुसलमानों से राष्ट्रीय आंदोलन का

विरोध कराने की कोशिश की। साप्रदायिक भावनाओ को उभारने के लिए उन्होंने बडी चालाकी के साथ हिंदी और उर्दू के विवाद का फायदा उठाया। कट्टरपथी हिंदुओ द्वारा शुरू किये गये 'गोवध वद' आदोलन का भी इस्तमाल इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया। भारतीय मामलों के मत्री किवरले ने 25 अगस्त, 1893 को वायसराय लसडाउन का लिखा 'यह आदोलन हिंदुओ और मुसलमानों के सारे मेलजाल को असभव बना देता है। इस तरह वह भारतीय जनता को एकबद्ध करने के कांग्रेस के आदोलन की जड काट देता है। फूट डालो और राज करो की नीति केवल हिंदुओं और मुसलमानो के मतभेद तक सीमित नहीं थी। परपरागत सामती वर्ग को नये शिक्षित वर्ग से एक प्रात को दूसरे प्रात से एक जाति को दूसरी जाति से, और एक गुट का दूसरे गुट से लडाने का भी प्रयत्न किया गया। इसके लिए भी प्रयत्न किये गये कि राष्ट्रवादियो म से, रूढ़िवादी या नरमपथी वर्ग के लोगों के प्रति अधिक मित्रता का रुख अपना कर उनमें आपस म फूट पदा कर दी जाये। सन् 1870 और 1890 के बीच ब्रिटिश इडिया एसोसिएशन जसे पुराने सगठनो के नताओं को सतुष्ट करने की कोशिश इस उद्देश्य से की गयी कि वे उग्रवादी कांग्रेसी नताओ के विरुद्ध हो जायें। सन् 1890 और 1900 के बीच कोशिश हुई कि उमेशचद्र बनर्जी न्यायाधीश रानाडे और गोखले जैसे कुछ पुराने कट्टरपथी नेताओ को उग्रवादी समझे जाने वाले दादाभाई नाराजी और सुरद्रनाथ बैनर्जी जैसे नेताओं से अलग अलग कर दिया जाय। सन् 1905 के बाद जब कांग्रेस के नरमपथी और उग्रपथी नेताओं में मतभेद पैदा हो गये तो ब्रितानी शासकों ने उनमें फूट डाल देने का कृतसकल्प प्रयत्न किया।

ब्रितानी अधिकारियों ने 'डाट पुचकार' की नीति का भी अनुसरण किया। एक तरफ दिखावे के लिए रियायतें और दूसरी तरफ राष्ट्रवादिता के विकास को खत्म करने के लिए निर्ममतापूर्ण दमन। नागरिक सेवाओ म भरती के लिए अधिकतम आयु सीमा मे रियायत सरकारी नौकरियो में भारतीयों के लिए सभावनाओ को बढाकर, जिला बोर्डो और नगरपालिकाओं के अधिकारो को व्यापक करके और भारतीय परिषद विधेयक, 1892 को पारित करके राष्ट्रवादियों के अपेक्षाकृत अधिक नरमपथी वर्ग के लोगों को सतुष्ट किया गया। लेकिन उसी के साथ कमजोर दिलवालो को दहलाने के लिए दमन की नीति भी अपनायी गयी। सन् 1898 म वायसराय एल्गिन ने भारतीयों को खुली धमकी देते हुए घोषणा की भारतवर्ष तलवार के बल पर जीता गया था और तलवार के ही बल पर उसे ब्रितानी कब्जे मे रखा जायगा। जैसा कि हम देख ही चुके ह बालगगाधर और दूसरे पत्रकारो की गिरफ्तारी के साथ पश्चिमी भारत के राष्ट्रवादियो पर एक सशक्त आक्रमण किया गया था। सन् 1898 म एक कानून लागू करके समाचारपत्रों की स्वतत्रता सीमित कर दी गयी और पुलिस तथा दडनायकों के अधिकार बढा दिये गये।

ब्रिटिश अधिकारियों का विश्वास था कि शिक्षा का प्रसार राष्ट्रीयता के विकास का एक प्रमुख कारण रहा है। अत उस पर सरकार के अधिक नियत्रण और उसके आधुनिक

उदार चरित्र को वदल दने की योजनाए आगे वढाई गयी। इन योजनाआ का खाका खींचते हुए जार्ज हमिल्टन ने सन् 1899 म वायसराय से कहा सवस पहल शिक्षा, उसके सगठन आर पाठ्य पुस्तको पर अधिक नियत्रण रखे। सन् 1903 म शिक्षा विधयक लागू करके आर स्कूल-कालेजा क निरीक्षण की पद्धति द्वारा शिक्षको पर सख्त नियत्रण करके उस उद्देश्य को पूरा करने की कोशिश की गयी। दूसरे सरकार ने धार्मिक न्यासा द्वारा सचालित कालेजों को प्रोत्साहन देने का फैसला किया। जिस आधुनिक धर्मनिरपक्ष शिक्षा के कारण विवेकयुक्त जनतान्त्रिक और राष्ट्रवादी विचारा का प्रसार हुआ था उसे धार्मिक ओर नैतिक प्रणाली को आधार बनाकर चलने वाली शिक्षा म वदलने के प्रयत्न हुए।

यद्यपि शिक्षा की यह नयी प्रणाली भारतीय धर्मो और भारतीय सस्कृति के महिमामडन पर आधारित थी लेकिन वह प्रतिक्रियावादी थी क्योकि वह युवको को प्रगतिशील नही बना सकी। उनमे आधुनिकता का वोध नही पैदा कर सकी। इस नीति न उन्नीसवी शताब्दी का अत आते आते यह स्पष्ट कर दिया कि किस तरह ब्रितानी साम्राज्यवाद के सारे प्रगतिशील तत्व नष्ट हो गये ओर यह भी कि वह सामाजिक और वोद्धिक दृष्टि से प्रतिक्रियावादी और निष्प्राण शक्तियो से गठजाड़ करने को तयार था। अब उसे रूढिवाद आर धार्मिक पुनर्जागरणवाद से कोई गंभीर आपत्ति नहीं थी। ब्रितानी शासन के ढाचे मे सामाजिक और सास्कृतिक रुढिवाद को जगह दी जा सकती थी। सबसे बडी वात यह थी कि वह आधुनिक विचारों के प्रसार से भयभीत था।

आलोचनात्मक मूल्याकन

वाद मे आलोचकों ने कहा था कि प्रारंभिक दार के राष्ट्रवादियो को व्यावहारिक धरातल पर अधिक सफलता नही मिली थी। जिन सुधारा के लिए उन्हाने आदोलन किया था उनम वहुत कम पर अमल हुआ। विदेशी शासको ने उनके साथ उपेक्षापूर्ण वर्ताव किया ओर उनकी राजनीति की खिल्ली उडायी जसा कि लाजपतराय ने वाद मे लिखा अपनी शिकायतो का निवारण कराने तथा रियायतें पाने के लिए उन्हाने 20 साल से अधिक समय तक कमोवश जा निरर्थक आदोलन चलाया उसमें उन्हे रोटियो के वजाय पत्थर मिले। वास्तविकता यह है कि सरकार अधिक उदार होने के वदले अधिक प्रतिक्रियावादी ओर दमनकारी हा गयी। इतना ही नही प्रारंभिक दौर का आदोलन आम जनता म अपनी जडें जमाने मे असफल रहा आर जिन लोगा ने वड़ी उम्मीदा के साथ उसमे हिस्सा लिया था व भी अधिक से अधिक तीव्रता के साथ महसूस करने लग कि वे भ्रम म थे। उसके आलोचका न उसकी राजनीति की खिल्ली उडाते हुए कहा कि वह 'लगडी' और आधे मन' की थी तथा उसके याचिकाओं आर निवदन के तरीके भीख मागने जसे थे। उन्हाने इशारा किया कि कुछ थोडे से अपवादा को छाड़कर उस दार के अधिसख्य नेताआ ने न कोई व्यक्तिगत

त्याग किया, न मामूली किस्म की निजी तकलीफ उठाया। इतना ही नही उनका कायक्रम पूजीवाद के सकीर्ण दायरे म सीमित था। वे सोच ही नहीं सके कि भारत का विकास पूजीवादी चोखट से बाहर हो सकता है। इसका एक निश्चित परिणाम यह हुआ कि आम जनता पर उनकी अपील का उतना असर नही पडा जितना पड सकता था आर इसी की वजह से उसे किसी राजनेतिक कायक्रम म आगे ले जाने की उनकी क्षमता भी सीमित हो गयी।

बहरहाल आलोचको की यह घोषणा कि प्रारंभिक दार का राष्ट्रीय आदोलन असफल रहा बहुत सही नही हे। इसमे कोइ शक नहीं कि उनकी व्यावहारिक उपलब्धि मामूली थी और बीसवी शताब्दी के प्रारभ म ब्रितानी शासन के चरित्र म परिवर्तन आ जाने के कारण उनकी पूर्व धारणाए आर दृष्टिकोण पुराने पड गये थे। यहा तक कि वे देशव्यापी स्तर पर सवेधानिक आदोलन चलाने म भी असफल हो गये। युवा वर्ग अब उनकी ओर आकर्षित नहीं होता था आर आम जनता उनके सगठन ओर प्रचार से अप्रभावित रही। सन् 1905 तक वे अपने राजनीतिक विकास की सीमा पर पहुच गये थे।

लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो प्रारंभिक दोर के राष्ट्रवादियो का राजनीतिक आमालनामा सचमुच उतना धुधला नहीं है बल्कि उसके विपरीत–यदि हम उन अपरिमित कठिनाइयों को ध्यान में रखे जिनका उन्हे अपने काम के सिलसिले म मुकाबला करना पडा–तो स्पष्ट हो जायेगा कि उनका आमालनामा काफी रोशन है। व्यापक अर्थ मे यह उनकी उपलब्धि ही थी जिसने बाद के राष्ट्रीय आदोलन को अधिक उन्नत अवस्था तक पहुचाया और उनके दृष्टिकोण को ऐतिहासिक दृष्टि से अव्यवहार्य बना दिया। अत प्रारभिक दोर के राष्ट्रवादियो ने अपने समय की सर्वाधिक प्रगतिशील शक्तियों का प्रतिनिधित्व किया। उन्होने भारतीय राजनीति मे एक निर्णायक मोड की स्थिति को सभव बनाया।

उन्हे व्यापक स्तर पर राजनीतिक चेतना पेदा करने म सफलता मिली। उन्होने ही मध्य निम्न मध्य और शिक्षित वर्ग के भारतीयो में यह भावना पेदा की कि उनका सबध एक राष्ट्र से हे–भारत नाम के राष्ट्र से। उन्होंने भारतीय जनो को इस दृष्टि से जागरूक किया कि उनके राजनीतिक आर्थिक ओर सास्कृतिक हित एक हे आर उन सभी का एक ही शत्रु है जो साम्राज्यवाद के रूप में वर्तमान है। इस प्रकार उन्होने उन भारतीय जनो को एक समान राष्ट्रीयता से जोड दिया। उन्होंने जनता मे जनतत्र आर नागरिक स्वतत्रता के विचारो को प्रचारित किया। भारतीय काग्रेस तथा अन्य लोकप्रिय ओर राष्ट्रवादी सगठनो के निर्माण के ही दोर में भारतीयो को जनतत्र का व्यावहारिक ज्ञान मिला। यह वह समय था जब शासक उन्हें लगातार यह बता रहे थे कि वे केवल परोपकारिता' या प्राच्य तानाशाही वाले शासन के उपयुक्त है। इतना ही नहीं एक बहुत बडी सख्या मे राष्ट्रवादी राजनैतिक कार्यकर्ता आधुनिक राजनीति की कला में प्रशिक्षित किये गये थे आर (उनके माध्यम से) जनता आधुनिक राजनीति के विचार आर अवधारणा से परिचित हुई।

सबसे बडी बात यह हे कि ब्रितानी साम्राज्यवाद के वास्तविक चरित्र का पर्दाफाश

करने में उन्होंने दिशा निर्देशक का काम किया। उन्होंने लगभग सार महत्वपूर्ण आर्थिक प्रश्नो को भारत की राजनीतिक स्वाधीनता से जोडा ओर इस प्रकार यद्यपि वे राजनीति और उसके तरीकों म नरमपथी थे, उन्होने इस भारतीय वास्तविकता के (कि आर्थिक शापण के उद्देश्य से ही विदेशी उस पर शासन कर रहे हे) सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनेतिक आर आर्थिक पहलुआ को सफलतापूर्वक उजागर किया। काई भी शासन राजनैतिक ढग स केवल तभी तक सुरक्षित रह सकता है जब तक जनता मे या तो उसके परोपकारी चरित्र में मूलभूत विश्वास हे या उसने चुपचाप यह स्वीकार कर लिया है कि उस शासन को वन ही रहना है। यह स्थिति शासन को वैधता प्रदान करती हे और यही उसकी नतिक आधारशिला है। प्रारभिक दोर के राष्ट्रवादियों के आर्थिक आदोलन ने ब्रितानी शासन की इस नेतिक आधारशिला में पूरी तरह सुरग लगा दी। उसने ब्रितानी शासन के चरित्र के उसके अच्छे आशय ओर अच्छे परिणाम के बारे में जनमन में बैठे विश्वास को धीरे धीरे खत्म कर दिया। बाद्धिक बेचैनी के इस दार मे जहा एक बार यह काम हो गया निश्चय था कि ब्रितानी साम्राज्यवाद की नगी असलियत को उघाडने का काम राजनैतिक क्षेत्र म भी होता। उसके बाद ही सघर्ष का उसके सामाजिक आधार को व्यापक करने का आर्थिक राजनेतिक और सामाजिक लक्ष्या को आमूल सुधारवादी बनाने का आम जनता को सघर्ष म लगाने आर उससे दिमागी तोर पर जुडने का आर जन-आदोलन चलाने का काम किया जा सकता था आर वह हुआ भी। एक बार मुख्य मुद्दो के साफ हो जाने पर राजनैतिक सघर्ष की व्यूह रचना आर उसकी शक्तिया का समझने म हुई भूल को ठीक उन मुद्दो के सदर्भ मे कभी भी सुधारा जा सकता था। अपने राजनतिक कार्य के इस नाजुक आर प्राथमिक चरित्र को प्रारंभिक दोर के राष्ट्रवादियों ने अच्छी तरह पहचाना था। उदाहरण के लिए 12 जनवरी 1905 को डी ई वाचा ने दादाभाई नौरोजी को एक पत्र म लिखा

> अपने धीमे और प्रगतिशील न होने का जो अधर्य आर असतोष काग्रेस ने उभरती हुई पीढी के मन म अपने हा विरुद्ध जगाया वही उसका सबसे अच्छा परिणाम व फल है। यह उसकी ही प्रगति है उसका ही विकास ह। अब काम हे अपेक्षित क्रांति लाने का। भले ही वह हिसक हो या शांतिपूण। क्रानि के चरित्र का स्वरूप ब्रितानी सरकार की बुद्धिमत्ता या अज्ञानता आर अग्रज जनता के काम के आधार पर बनेगा।

सन् 1858 आर 1905 के बीच का समय भारतीय राष्ट्रवादिता के बीजारोपण का समय था आर उस दार के राष्ट्रवादिया ने उस बीज को अच्छी तरह आर गहराई मे बोया। उन्होने अपनी राष्ट्रवादिता को सतही सवगो आर अस्थाई भावनाओ को जागृत करन के आग्रह या स्वाधीनता आर स्वतत्रता के अमूर्त अधिकार या धुधले अतीत को याद दिलाने की अपील पर आधारित नहीं किया वरन् उसकी जगह पर उस आधुनिक साम्राज्यवाद

के पचीदा ढाचे के भावुक्ता से मुक्त और गहरे विश्लेषण तथा भारतीय जनता ओर ब्रितानी शासन के हित्ता के मुख्य अतर्विरोध को जमीन में गाडा। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने एक ऐसा समान राजनीतिक और धार्मिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसने भारत के विभिन्न वर्गो के लोगों को विभाजित करने की जगह एकवद्ध कर दिया। वाद में भारतीय जनता उस कार्यक्रम से सवद्ध हुई और उसने एक सशक्त सघर्ष शुरू किया।

अत यह कहा जा सकता है कि अपनी कतिपय असफलताओ के बावजूद प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियो ने राष्ट्रीय आदोलन की एक ऐसी ठोस नींच रखी जिस पर उसका अगला विकास हुआ। आधुनिक भारत के निर्माताआ में वे ऊचा स्थान पाने के अधिकारी हे। भारतीय राष्ट्रवादिता के जनक नेताआ की भूमिका का मूल्याकन करत हुए महान नरमपंथिया की अंतिम कडी गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा

> हम यह न भूले कि हम देश की प्रगनि के उस विदु पर खडे हैं जहा हमारी उपलब्धिया अनिवार्यतया नगण्य आर असफलताए बार बार की तथा पीडक ओर परीक्षा लेने वाली हागी। यही वह प्राप्ति है जो नियति की अनुकपा से हमें इस सघर्ष में मिली हे यह काम हम ज्यों ही पूरा कर लेगे हमारा दायित्व खत्म हो जायगा। इसम कोई संदेह नहीं कि आने वाली पीढियों को देश सेवा के कार्य में सफलताए मिलती रहेंगी। हमें यानी वर्तमान पीढी के लोगा को अपनी असफलताओ के बावजूद उसकी सेवा करके सतुष्ट होना ही चाहिए क्योकि वे असफलताए कठोर भले ही हो, शक्नि उन्हीं से फूटेगी जिससे अतत महान कार्य पूरे होगे।

3

युद्धोन्मुखी राष्ट्रवादिता का दौर

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध म जनता की राजनैतिक चेतना तेजी क साथ विकसित हुई था। लकिन नेताओं को ब्रितानी शासकों से रियायतें लेने म सफलता नहीं मिली। इसके साथ ही साथ देश का औपनिवेशिक शोषण चलता रहा।

वाणिज्य-व्यापार में पर्याप्त अवसरो के अभाव के कारण मध्य वर्ग के शिक्षित लोग सरकारी नौकरियो और वकालत जसे पेशों की ओर अधिक से अधिक झुकने लगे। उनमें कुछ अधिक साहसी लोगों ने पत्रकारिता अपनाइ। सरकारी नौकरिया के अवसर अत्यत सीमित थे। उदाहरण के लिए सन् 1903 में 75 रुपये मासिक से ऊपर वेतन पाने वाले भारतीयो की सख्या केवल 16 हजार था। वकालत का पेशा प्राय असफल था। पत्रकारिता का पेशा भी उन दिनो अत्यत खतरनाक था। समस्या का मूल बेरोजगार स्नातको की सख्या नहीं बल्कि वे लोग थ जो बहुत बडी तादाद मे परीक्षा म असफल हा जाने के कारण अयोग्य हो गय थे। नौकरी न पा सकने वाले इस युवा वर्ग के लागा म ही निराशा की भावना सबसे अधिक थी।

शताब्दी की समाप्ति के समय तक किसानो मजदूरा और गावा क सम्रात लोगो की मनस्थिति असतोष ओर निराशा की थी। अत आश्चर्य नहीं कि उन नरमपथी नताओं की लोकप्रियता निरतर घटने लगा थी जो सरकार स सुधार की पेरवी करते आ रहे थे। जो अवश्यभावी था वह घटा। परिस्थितियों ने वडी सख्या म उन नेताओं को मदान में उतार दिया जो अपनी मागा म आमूल परिवर्तनवादी थे ओर जो राष्ट्रवादिता के एक युद्धोन्मुखी रूप म विश्वास करते थे। उन्ह उग्रपथी कह कर पुकारा जाने लगा। यदि नरमपथी नेताआ को शिक्षिता और शहर के मध्य वर्ग से मुख्य समर्थन मिला तो इन नये नताआ ने निम्न-मध्य वग छात्रा और यहा तक कि किसानो-मजदूरा के एक वग को व्यापक धरातल पर अपनी ओर आकर्षित किया।

वाद्धिक नेतृत्व शुरू में बगाल के राजनारायण वास और वंकिमचद्र चटर्जी तथा महाराष्ट्र के विष्णु शास्त्री चिपलुणकर सरीखे व्यक्तियों ने किया। वंकिम क गीत वंदे मातरम् से शुरू हुए जो वाद में देशभक्ति और आत्म बलिदान की झकार देने वाली पुकार बन गये।

इस तथ्य का निश्चय हा ध्यान म रखना चाहिए कि राष्ट्रीय आदोलन के प्रारंभिक दौर म जो अनुभव प्राप्त हुए उनस नेताआ का एक प्रौढता मिली एक हेसियत मिली। उनम आत्मसम्मान और आत्मविश्वास का विकास हुआ। उन्होन महसूस किया कि वे अपना शासन

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का पहला अधिवेशन 1885

दादाभाई नौरोजी

एम जी रानाडे

सुरेन्द्र नाथ बेनर्जी

बदरुद्दीन तयबजी

श्री अरविन्द

गोपालकृष्ण गोखले

लाला लाजपत राय बालगंगाधर तिलक और विपिनचन्द्र पाल

Proclamation.

Whereas the Government has thought fit to effectuate the Partition of Bengal in spite of the universal protest of the Bengali nation, we hereby pledge and proclaim that we as a people shall do everything in our power to counteract the evil effects of the dismemberment of our Province and to maintain the integrity of our race. So help us God.

बग भग के खिलाफ घोषणा

पूना में होम रूल लीग का जलूस

कलकत्ता में एन भा ओ के स्वयसेवकों की परेड 1921

वम्बई में होली

माहम्मद अली

सी विजयाराघव चरियर

एम ए असारी

सरोजनी नायडू

चितरजन दास

मातीलाल नेहरू

मदन माहन मालवीय

मोहम्मद अली जिन्ना

किया कि वह आत्मविश्वासी स्वाभिमानी निर्भय और निस्वार्थी बने। उन्होने परपरागत गणेशपूजा का सगठन किया और आम जनता म राष्ट्रवादी विचारो का प्रचार करने के लिए शिवाजी पर्व की शुरुआत की।

तिलक पहले व्यक्ति थ जिन्होने महाराष्ट्र क किसानो को सलाह दी कि जब भी सूखा अकाल या किसी दैवी विपत्ति से फसल नष्ट भ्रष्ट हो जाय तो वे लगान देना बद कर दे। जैसा कि उम्मीद थी ब्रितानी अधिकारियो म घबराहट शुरू हुई। उन्होने सन् 1897 म तिलक को गिरफ्तार कर लिया। उन पर सरकार के विरुद्ध घृणा और द्वेष फैलाने का अभियोग लगाया गया। उनके बचाव में निर्भीकता और अडिगता था। उन्होने माफी मागने स इकार करके गव के साथ 18 महीने की कठोर कारावास की सजा स्वीकार की। उनके इस त्याग न बिजली जैसा असर पदा किया। वह नयी राष्ट्रवादिता के जीवन्त प्रतीक बन गये। जब वायसराय एलगिन ने भारत मे बने कपडा पर आबकारी कर लगाया तो उन्होने ब्रितानी चीजो का बहिष्कार करने और स्वदेशी को अपनाने का आह्वान किया।

लोकमान्य तिलक के अलावा विपिनचद्र पाल अरविन्द घोष और लाला लाजपतराय सरीखे नेता युद्धोन्मुखी राष्ट्रवादिता की विचारधारा के मुख्य व्याख्याताओ म से थे। सबस पहले उन्होने चाहा कि भारत के लोग खुद स्वतन्त्रता पाने के लिए कार्य कर। दृढता के साथ कोशिश करे कि विदेशी शासन के अतर्गत उन्ह हीनता की जिस स्थिति म रहने को विवश कर दिया गया ह उससे व ऊपर उठ सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति क लिए कोई त्याग बहुत बडा नही था कोई तकलीफ बहुत बडी नही थी। अत उन्होने साहस आत्मविश्वास और त्याग की भावना के लिए पैरवी की। दूसर इस झूठे सुझाव को भी उन्होने पूरी तरह निर्मूल कर दिया कि भारत को एक 'उदार निर्देशक या विदेशी सहायता की आवश्यकता है। उन्होने विदेशी शासन से घृणा की और दृढ़ता के साथ यह दावा किया कि मात्र स्वराज्य या पूर्ण स्वतन्त्रता ही उनका लक्ष्य ह जिसके लिए वे सघर्ष कर रहे ह। तीसरा या अतिम तथ्य है कि उन्ह जन शक्ति म अटूट विश्वास था और उन्होने जन कार्यो क जरिये ही स्वतत्रता पाने की तैयारी की।

बग भग और बगाली प्रतिक्रिया

जब कर्जन आये उस वक्त तक उग्रपथ के बगूलो ने उबलना शुरू कर दिया था। उनकी नीति न उस उबाल को जल्द ही उफान म बदल दिया। भारतीय लोग स्वशासी सरकार शिक्षा की स्वायत्तता और समाचारपत्रो की स्वतन्त्रता के जिन आदर्शो मे जी रहे थे उन्ही पर कर्जन ने आक्रमण किया। उन्होने कलकत्ता नगर निगम के भारतीय सदस्यो की सख्या कम कर दी। शैक्षिक सुधार के नाम पर भारतीय विश्वविद्यालयो पर सरकारी नियत्रण और बढा दिया। उन्होने एक विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया जिसने सिफारिश की कि द्वितीय श्रेणी के कालजो और कानून की कक्षाओ को बद कर दिया जाय शिक्षा शुल्क मे वृद्धि की जाय व्यवस्थापिका

सभा (सीनेट) के सदस्या का कार्यकाल आर उनकी सख्या घटा दी जाये आर शिक्षण सस्थाना का मान्यता दने क अधिकारा का व्यापक वनाया जाये। कानून की कक्षाओं आर द्वितीय श्रेणी के कालेजों को ताड देने का परिणाम केवल उनमे पढने आर उन्हें सचालित करने वाले भारतीया को अपक्षाकृत कम नाकरिया मिलना हा नहीं था। उसकी वजह से उच्चतर शिक्षा आर कानूनी पशे म जाने के अवसर भी कम हो जाते। शिक्षा शुल्क म वृद्धि के कारण क्लर्की या मास्टरी की नाकरी करने के इच्छुक गरीब लागा के रास्ते वद हा जाते। नरमपथिया न विधेयक का विराध किया लेकिन कर्जन ने वहुत थोडी रियायतें दी। राष्ट्राय शिक्षा की माग अधिक तीव्र हा गयी।

उनक भारतीय सरकारा गोपनायता (सशोधन) विधेयक का लक्ष्य दमनकारी अधिकारिया को सार्वजनिक आलाचना स वचाना था। ऐसा लगा कि वह लिटन की नीति की ही एक अगली कडी था जिसने भारतीय समाचारपत्रा का पहल स भी अधिक राष्ट्रवादी वना दिया। उन्हाने विदेशी विनियागा दिल्ली दरवार और तिब्वती आक्रमण में वुरी तरह भारतीय कोष खर्च किया। भूमि कर म कमी करन स इकार कर दिया। अतत आया वगाल का विभाजन। प्रगट रूप म कहा गया कि एक अलाभकारी प्रात का वेहतर प्रशासन देने के लिए एसा किया जा रहा हैं लकिन वास्तविक उद्देश्य था आमूल परिवर्तन चाहन वाले वगाली राष्ट्रवादियो पर नियत्रण करना। प्रशासनिक सुविधा आर आसाम का विकास योजना के स्वीकृत उद्देश्य थे लेकिन उसम राजनीति घुस गया थी। अधिकारियो न पूर्वी जिलो को 'कलकत्ता क अनिष्टकारा प्रभावा से मुक्त करन आर 'मुसलमाना क साथ अधिक न्यायपूर्ण व्यवहार करने की वात कही। उनकी इच्छा थी कि उग्रपथ का उत्तेजक गढ वन जाने याले वखारगज आर फरादपुर का पूर्व वगाल म हस्तानान्तरित कर दिया जाये।

विराध व्यापक था। काग्रेस ने योजना को असगत कहा। दो विकल्प सुझाये गये। या ता वगाल को एक गवर्नर क आधीन रखा जाय या हिदी ओर उडिया भाषी लोगो को विना वगभाषियो को वाटे हुए अलग कर दिया जाय। कर्जन न विरोध को वगाली वावुओ का खाखली गजना कह कर ठुकरा दिया। इसस केवल यह सावित हुआ कि विभाजन राजनतिक दृष्टि से वाछनीय था आर यदि सरकार मान जाता तो भारत के पूर्वाचल पर वढती हुई अशांति के स्रोत खत्म हा जाते।

फरवरी 1904 म पूर्वी वगाल म पहुचने के अवसर पर उन्हाने पहली योजना को विस्तार दिया। उसके अनुसार वगाल का 1० जिला से हाथ धाना पडता आर उसकी आवादी कम होकर 5 कराड 40 लाख रह जाता। रिजल न लिखा 'सयुक्त वगाल एक शक्ति ह। विभाजित वगाल विभिन्न रास्ता पर जायगा। हमारा एक उद्देश्य उसे विघटित कर देना ह ताकि हमारे शासन का विरोध करन वाला एक ठोस आधार कमजार हा जाय। वाद म लाड हार्डिंग्ज न स्वाकार किया कि वगाली वावुआ पर प्रहार करन की इच्छा दूसरे विचारो पर हावी हा गयी। लेकिन वगालिया क सभी वर्ग यथा जमादारा वकीला व्यापारिया शहर के गरीवा मजदूरा

और सबसे अधिक छात्रो के सयुक्त विरोध के नीचे सरकारी इरादे दब गये। जनता के एक स्वाभिमानी आर सवेदनशील वर्ग की भावनाआ को निदर्यतापूरक कुचल दिया गया था।

विभाजन विरोधी आदोलन

कर्जन ने भारतीय मामला के मत्री की अनिच्छित सहमति प्राप्त की आर सन् 1905 में योजना को प्रकाशित कर दिया। उन्हे लगा कि जिस एकता को नप्ट करने की उन्होने कोशिश की थी उसी की उन्हान रक्षा कर दी है। विभाजन विरोधी आदोलन वगालियो के हर वर्ग तथा देश के समग्र राष्ट्रवादी नेतृत्व का काम था। शुरू शुरू मे सुरद्रनाथ बेनर्जी जेसे नरमपथिया ने आदोलन का सूत्र अपने हाथ लिया लेकिन आदोलन की वागडोर शीघ्र ही विपिनचद्र पाल अश्विनीकुमार दत्त ओर अरविद घोष जेसे तेज उग्रपंथिया के हाथ म आ गयी। मुख्यत वह एक शहरी आन्दोलन था लेकिन उसने ग्रामीण जनता को भी छुआ।

इसकी शुरुआत 7 अगस्त 1905 को कलकत्ता के टाउन हाल में आयाजित एक विशाल सभा मे हुई जब ब्रितानी माल के वहिष्कार का प्रस्ताव पास हुआ। 16 अक्तूबर को (जिस दिन विभाजन प्रभावी हुआ) राष्ट्रीय शोक का दिन घोषित किया गया। आम हडताल हुई। लोगो ने उपवास किया। वे वदे मातरम् के नारे लगाते तथा देशभक्ति के गीत गाते हुए नगे पाव गगास्नान के लिए गये। सारे वगालियो के वधुत्व के प्रतीक रूप हिदुआ आर मुसलमानो ने एक दूसरे की कलाइयो पर राखी वाधी।

रवीद्रनाथ टैगोर के स्वदेशी गीतो ने जनता के क्रोध आर पीडा को अभिव्यक्ति दी। उनके हर स्वर मे धरती ओर विभाजित हो जाने वाले लोगो के प्रति प्रगाढ प्रेम था। वगाली प्रतिरोध करने दुख झलने और त्याग करने के लिए सगठित होकर एक व्यक्ति के रूप मे खडे हो गये। वारिसाल आर मैमनसिह जेस दूर दराज के जिले शीघ्र ही देशभक्ति की आग म धधकने लगे। वनारस काग्रेस (अधिवशन) की अध्यक्षता करते हुए गोखले ने विभाजन के सदर्भ म कहा था 'वह एक निर्मम भूल थी। वह नौकरशाही की वर्तमान प्रणाली के निकृष्टतम रूपो, जनमत के प्रति उसकी आत्यतिक उपेक्षा अपनी बुद्धि को वेहतर मानने के उसके अहकारी वहाना जनता की सर्वाधिक प्रिय भावनाओं की वेहूदी अवमानना और शासित लोगो के हितो की रक्षा के प्रति उनकी वास्तविक उदासीनता की एक सर्वोपाग मिसाल हे।

सन् 1905 की व्यापक जनभावना से स्वदेशी आर वहिष्कार के जिस विचार का जन्म हुआ वह नया नहीं था। अमरीका आयरलड आर चीन की जनता ने उसे पहले ही अपना लिया था। भारतीय उद्योग के विकास के शुद्ध आर्थिक साधन के रूप में स्वदेशी का उपदेश महाराष्ट्र के गोपाल राव देशमुख जी वी जोशी ओर महादेव गोविद रानाडे तथा वगाल के राजनारायण वोस नवगोपाल मित्र आर टगोर परिवार ने दिया था। उसी तरह 19वीं शताब्दी के सातवें दशक म भोलानाथ चद्र ने ब्रितानी जनता पर आर्थिक दवाव डालने के लिए वहिष्कार की सिफारिश

की थी। तिलक ने सन् 1896 म सपूर्ण वहिष्कार आदोलन का नेतृत्व किया था। ऐसा महसूस किया गया कि स्वदेशी आर वहिष्कार एक दूसर के पूरक हैं। एक दूसरे के विना कोई भी सफल नही हा सकता था।

विभाजन विरोधी आदोलन स इन पुराना अवधारणाआ को एक नयी शक्ति मिली। लेकिन इसी की वजह स नरमपथियो ओर उग्रपंथियो के मतभेद भी खुले रूप म सामने आ गये। वबई के नरमपथी एक आम राजनेतिक हथियार के रूप म वहिष्कार के विचार के विरोधी थ। यद्यपि उन्हाने स्वदेशी का स्वागत किया था। गोखले उस वहिष्कार शब्द को ताक पर रख देने को तयार थे जिसका अर्थ 'दूसरे को आहत करने की प्रतिशोधात्मक इच्छा' था, आर जिसन 'एक दूसर के प्रति अनावश्यक दुर्भावना पेदा कर दी थी। सुरेद्रनाथ वनर्जी के ख्याल स वहिष्कार एक तात्कालिक अन्याय से लडने का एक विशेष अस्त्र था। उन्हें उम्मीद थी कि विभाजन रद्द हो जान के वाद उसका प्रयाग वद हो जायेगा। लाजपतराय अधिक परिवर्तनवादी थे। उन्होंने कहा भारतीयो की शिकायतों पर अग्रज तभी ध्यान देने को विवश होगे जव उनकी जेव पर सीधा खतरा आयेगा। तिलक पाल और अरविंद की दृष्टि में वहिष्कार के कई उद्देश्य थे। वह मेनचेस्टर पर एक आथिक दवाव साम्राज्य विरोधी आदोलन का एक राजनीतिक हथियार और स्वराज की उपलब्धि के लिए आत्मनिर्भरता का एक प्रशिक्षण था।

मतभेद कुछ समय के लिए समाप्त हो गये। विभाजन विरोधी आदोलन स्वदेशी आदोलन मे विकसित हुआ जिसन विखंडित ओर त्रस्त शक्तियों को वल आर सलग्नता दी। वहुत से काग्रेसी नेताओं का अग्रेजों के न्याय आर स्मरणपत्रों सभाओं लेखों ओर समाचारपत्रों के माध्यम से नरमपथी ढग से सवेधानिक आदोलन को वारगर रूप म चलाने में विश्वास था। वगाल की घटनाओं ने उनके इस विश्वास की जड हिला दी। स्वदशी ने विना जाति और धर्म के भेदभाव के राजनीति म नये वर्ग को ला दिया। इस नये वर्ग ने समाचारपत्रो को स्पष्टवादी आर छात्रो को विद्रोही होना सिखाया। इसने हिंदुआ आर मुसलमानों को सहयोग करन जनता को अपनी राजनतिक और आर्थिक स्थिति पर विचार करने निर्भीक होने सरकार की अवज्ञा करने लाठी चलाने जेल जाने आर फासी के तख्ते को देश की सवा मे अर्जित सम्मान समझकर स्वीकार कर लेने की सीख दी।

वनारस काग्रस ने वगाल के विभाजन ओर सरकार द्वारा अपनाये गये दमनकारी कदमो का प्रभावशाली विरोध किया। उसने वगाल के लिए स्वदेशी और वहिष्कार का अनुमोदन किया। *यद्यपि उसने सारे भारत के लिए वहिष्कार की अनुमति नहीं दी लेकिन लाजपतराय ने सभी* प्रांतों को वगाल का अनुसरण करन के लिए कहा। तिलक ने वलपूर्वक कहा कि स्वदेशी वहिष्कार ओर राष्ट्रीय शिक्षा का लक्ष्य स्वराज की प्राप्ति है। सारे वगाल ओर दश के मुख्य नगरों आर कस्वा में हजारा सभाआ में स्वदेशी आर वहिष्कार का आह्वान किया गया। इसके दा पहलू थे। एक तरफ सार्वजनिक जगहा पर ब्रितानी वस्तुआ की होली जलायी गयी उन्हे बेचने वाली दूकानों पर धरना दिया गया आर स्वदशी वस्तुओ के उत्पादन आर विक्री के लिए जोरदार प्रयत्न

किए गए। मिठाई बनाने वाला ने विदेशी चीनी का इस्तेमाल न करने, धोबियों ने विदेशी कपडे न धोने पुजारियों ने विदेशी चीजों से पूजा न कराने की कसम खाई। दक्षिण भारत और बगाल की स्त्रियों ने विदेशी चूडियों और शीशे के बर्तन का इस्तेमाल छोड दिया। छात्रों ने विदेशी कागज इस्तेमाल करने से इकार कर दिया। यहा तक कि डाक्टरों और वकीलों ने उन व्यापारियों की सहायता करने से इकार कर दिया जो विदेशी उत्पादों का क्रय विक्रय करते थे। धरने को सामाजिक बहिष्कार के परपरागत तरीके के साथ जोड दिया गया। बारिसाल जैसी कुछ जगहों मे दूकानदारों ने स्वेच्छा से नमक और कपडे नष्ट कर देने के लिए दे दिये और इस प्रकार दड कर लगाने वाली पुलिस के क्रोध को स्वय आमत्रण दिया।

दूसरी तरफ व्यावहारिक पहलू यह कि आदोलन ने कुटीर उद्योगों को ही नहीं विभिन्न किस्म के बडे पैमाने के जोखिम भरे व्यापारिक प्रयत्नों को प्रोत्साहन दिया। स्वदेशी कपडा मिल दियासलाई साबुन चर्मशोधक और मिट्टी के बर्तन बनाने के कारखाने सहसा जगह जगह खुल गये। आचार्य पी सी राय ने 'बगाल केमिकल फैक्टरी भडार' खोला जो शीघ्र ही बहुत लोकप्रिय हो गया। गुरुदेव टैगोर ने स्वय एक स्वदेशी भडार खोलने मे सहायता की। टाटा आयरन एड स्टील कपनी ने सारी सरकारी और विदेशी सहायता लेने से इकार कर दिया और उसकी सारी पूजी की अभिदान के रूप मे 'भारतीयों' ने तीन महीने के भीतर व्यवस्था कर दी। बैंक और बीमा कपनिया खोलने मे अनेक जमींदारों और व्यापारियों ने राजनीतिक नेताओं का साथ दिया। यहा तक कि जहाजरानी संस्थान भी शुरू किये गये।

स्वदेशी आदोलन ने संस्कृति के क्षेत्र में नये आदोलनों को गतिशीलता दी। एक नये प्रकार की राष्ट्रवादी कविता गद्य और पत्रकारिता का जन्म हुआ जो आवेश और आदर्शवाद से युक्त थी। रवींद्रनाथ टैगोर रजनीकात सेन और मुकुन्दास द्वारा रचित राष्ट्रवादी गीतों में न केवल सामयिक ढग से प्रभाव डालने की शक्ति थी वरन् साहित्यिक स्तर पर भी वे स्थाई मूल्य के थे। आज भी बगाल मे ये गीत गाये जाते है। स्वदेशी और राष्ट्रीय आदोलन के फलस्वरूप जिस राजनैतिक पत्रकारिता का जन्म हुआ उसने स्वाधीनता स्वतत्रता और आत्मनिर्भरता पर अत्यत उच्च कोटि के भाष्य दिये।

पश्चिमी भारत मे स्वदेशी और बहिष्कार का आदोलन तिलक के साथ पहुचा। उनके नेतृत्व मे पूना मे बडे पैमाने पर विदेशी कपडों की होली जलाई गयी। उन्होने **स्वदेशी वस्तु प्रचारिणी सभा** के मुख्यालय के रूप मे सहकारी भडार खोले। बबई के मिल मालिकों से सस्ते दाम पर धोतियां देने का आग्रह किया। पूना में एक स्वदेशी बुनाई कपनी भी खोली गयी। आयात के कारण चीनी का देशी उत्पादन और गन्ने की पैदावार काफी कम हो गयी थी। विदेशी चीनी के इस्तेमाल के विरुद्ध पजाब मे आदोलन की एक लहर दौड गयी। रावलपिडी के दूकानदारों ने व्रत लिया कि वे उसका क्रय विक्रय नहीं करेंगे। मुल्तान के ब्राह्मणों ने विदेशी चीनी से बने प्रसाद को मदिरों मे चढाने पर रोक लगा दी। आदोलन हरिद्वार दिल्ली कागडा और जम्मू तक फैला। सैयद हैदर रजा दिल्ली मे स्वदेशी आदोलन के चलते-फिरते प्रेरणास्रोत थे। चिदबरम् पिल्लै ने मद्रास के पूर्वी तट (मद्रास राज्य) पर तूतीकोरन में स्वदेशी स्टीम नेवीगेशन कपनी खोली।

इसके पहले कि उग्रपथी एक सपूर्ण सघर्ष के लिए काग्रेस पर अपना अधिकार जमा सके उन्हे किसानो और मजदूरो को आन्दोलन मे शामिल करना था। स्वदेशी के सन्देश का जनता तक पहुचना शुरू हुआ और क्योंकि जनता के कल्याण और सपन्नता से उसकी सीधी प्रासंगिकता थी वह उन्हें सार्थक लगा। राजनीति की सद्धांतिक और अमूर्त अवधारणाए इस तरह का अहसास नहीं करा सकती थीं। यदि उग्रपथियो ने किसानो से लगान न देने का आदोलन करने और मजदूरो से पूजीपतियो के विरुद्ध खडे होने को कहा होता तो वे अधिक जोश के साथ आदोलन मे शरीक हुए होते। यद्यपि यह काम नहीं किया गया लेकिन तब भी किसानो और मजदूरो की भूमिका विशिष्ट रही। नील पैदा करने वाली चपारण की रैयत बिहार मे विद्रोह मे उठ खडी हुई। आसाम और ममनसिंह में अशाति फैली। बारिसाल मे अश्विनीकुमार दत्त ने मुसलमान किसानो के आन्दोलन का नेतृत्व किया। बगाल मे हडताल की एक लहर उठी और उसने ईस्ट इंडियन रेलवे, क्लाइव जूट मिल्स और बहुत से आयरन वर्क और प्रेसज को अपनी चपेट मे ले लिया। कलकत्ता बदरगाह पर कुछ समय के लिए काम बिलकुल ठप्प पड गया। तिलक ने बबई के मजदूरो से अपील की जिसके फलस्वरूप उनकी गिरफ्तारी के बाद आम हडताल हुई। चिदबरम् पिल्लै ने तूतीकोरन कोरल मिल मे हडताल कराई।

लेकिन सघर्ष में आहुति बनने की जिम्मेदारी देश के युवा वर्ग पर पडी। सध्या जुगातर केसरी और पजाबी जैसे क्रांतिकारी समाचारपत्रो से प्रेरणा पाकर वे मैदान मे कूद पडे। छात्रों क्लर्कों और शिक्षको के लगाव में निराशा का एक तत्व था। उन्होने बगाल के हर नगर में राष्ट्रीय स्वयसेवक गिरोह बनाया। पीली पगडी और लाल कमीज पहने वंदे मातरम् के नारे लगाते और राष्ट्रीय गीत गाते हुए वे हजारों की सख्या मे सरकारी स्कूलो कालेजो और दफ्तरो से बाहर निकल आये। दूकानों पर धरने देते रहे स्वदशी वस्तुए बेचते रहे। जिन स्कूल-कालेजो के छात्रों ने आदोलन मे सक्रिय हिस्सा लिया उनको मिलने वाला अनुदान बद हुआ और विश्वविद्यालय की मान्यता खत्म कर दी गयी। उन सस्थानो के छात्रो को वजीफे और सरकार में नौकरी पाने के लिए अयोग्य करार दिया गया। आसाम और बगाल मे आतक का राज्य था। लडको को जुर्माने किये गये। उन्हे निष्कासित किया गया उन्हें बुरी तरह पीटा गया। कलकत्ता के प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड ने चौदह साल के एक मासूम बच्चे को कोडे लगाने का आदेश दिया। दूर दराज की अमरावती और कोल्हापुर जेसी जगहो में भी लडको के साथ ऐसा बर्ताव किया गया। दमन ने क्रोध को जन्म दिया और क्रोध के कारण लोगो ने आतकवादी गतिविधियो मे सक्रिय ढग से हिस्सा लिया।

शुरू मे मुसलमानों ने बडी सख्या मे हिस्सा लिया। पहली बार परदे से बाहर निकलकर औरते जुलूसों और धरनो मे शामिल हुई। प्रारभ में जिन लोगो ने बहिष्कार का सुझाव दिया था उनमें पटना के लियाकत हुसैन भी थे। उन्होंने ईस्ट इंडियन रेलवे में हडताल कराई थी। उनकी उर्दू की उत्तेजक प्रचार पुस्तिकाओ ने मुसलमानो की भावना को उभारा था। अब्दुल रसूल ने बारिसाल सम्मेलन की अध्यक्षता की थी जिसे पुलिस ने लाठी चलाकर भग कर दिया

था। जमींदार आर वकील अब्दुल हलाम गजनवा न स्वदेशी उद्योग खाला आर ब्रितानी चमड की वस्तुओं के वहिष्कार आन्दालन का नेतृत्व किया। अबुल कलाम आजाद अरविंद स मिले आर क्रांतिकारी गतिविधिया को बगाल के बाहर चलान म मदद की। कुछ उग्रपंथिया ने उत्साह के अतिरेक म और हिंदू धर्म प्रताका पर बल देकर बगकूर्ण में मुसलमाना का अलग कर दिया लेकिन सुरद्रनाथ बनर्जी, अश्विनीकुमार दत्त आर रवींद्रनाथ टैगोर जैसे नताआ ने हिंदू-मुसलमान एकता पर बार बार बल दिया।

सरकार के दमन क तरीक ने विशेष कर बारिसाल सम्मेलन म प्रतिनिधियों पर निर्दयतापूर्वक किये गय आक्रमण ने उग्रपंथिया के सघर्ष चलाने क सकल्प का ओर दृढ कर दिया। कलकत्ता काग्रेस (1906) के अवसर पर दादाभाई नारोजी ने उग्रपंथिया की भावनाआ की प्रशसा करते हुए घाषणा की कि काग्रेस का उद्देश्य ' ब्रितानी राज्य या उपनिवेशा की तरह स्वराज प्राप्त करना है। उग्रपंथियों न स्वराज का अर्थ अपने ढग से लगाया था। पजाब क लाजपतराय आर अजितसिह के देश निकाला आर सध्या ओर वंदे मातरम् को देशद्रोही (?) रचनाए छापन क आराप में दंडित करने क साथ आन्दालन की रफ्तार तेज हो गयी। आग उगलने वाली सध्या के सपादक ब्रह्मबधु उपाध्याय का मुकदम की सुनवाई के दारान देहान्त हो गया। विपिनचद्र पाल जल म थे। लाजपतराय को छोड देने आर सुधारा की बात करने के बावजूद लोगा की उत्तेजनापूर्ण मनस्थिति शात नहीं हुई। काग्रेस अधिवेशन पूना क बदले सूरत मे करन आर अध्यक्ष पद के तिलक के दाव को अस्वीकृत करके रासबिहारी घाष का चुनाव करने के प्रश्न पर तिलक आर अरविंद के क्रांति प्रिय गुट ने शक्ति आजमाइश का फसला किया। वहिष्कार के प्रस्ताव का खत्म करने की नरमपंथियों की कोशिश ने आग म घी का काम किया। सूरत काग्रेस का अधिवेशन अस्तव्यस्तता आर अव्यवस्था में भग हो गया। राष्ट्रवादी युद्ध के लिए तत्पर दा गुटा म बट गये थे। इसने आदोलन को कमजोर किया।

तिलक अभी भी जवाबी सहयोग क पक्ष मे थे। लेकिन अरविंद ने रूस के आतकवादी ढग के आक्रामक प्रतिराध का निश्चय किया। उनके निश्चय का अर्थ स्पष्ट हुआ मुजफ्फरपुर में बम आक्रमण आर मानिकतल्ला में आतकवादियो के गुप्त अड्डों का पता लगने के बाद। तिलक न केसरी म उसके नैतिक समर्थन में लिखा ' यदि प्रशामन का रूसीकरण हुआ तो जनता निश्चय ही रूसी तरीके अपनायगी। उन्हे 6 वर्ष की 'देश निकाला' की सजा देकर माडले भज दिया गया। काल के सपादक पराजप को 19 महीने की जेल हुई। बगाल के 9 नेताआ को 'देश निकाला' की सजा मिली। मद्रास के चिदबरम् पिल्ले और आध्र के हरि सर्वोत्तम राव को जेल में बद कर दिया गया। सरकार ने सभी समाचारपत्रा पर नियत्रात्मक जाच लागू कर दी सभाओं पर प्रतिबध लग गये आर क्रातिकारी सगठना के विरुद्ध उत्पीडक कार्रवाइया शुरू कीं। अरविंद के पांडिचेरी म पलायन आर धर्म के लिए राजनीति ओर राष्ट्रीय आदोलन का परित्याग करने के निर्णय के साथ इस खुले आदोलन का अत हो गया।

राष्ट्रीय आदालन के इतिहास में युद्धान्मुखी राष्ट्रवादियो ने एक शानदार अध्याय जोडा।

उन्होंने उसके उद्देश्यों को स्पष्ट किया। जनता को आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की सीख दी। आंदोलन में निम्न मध्यमवर्गीय लोगों, छात्रों, युवकों और स्त्रियों को शामिल करके उसके लिए एक सामाजिक आधार तैयार किया। राजनैतिक संगठन के नए तरीकों और राजनैतिक संघर्ष की नयी विधियों का सूत्रपात हुआ। इसी के साथ साथ कुछ पुरानी दुर्बलताएं भी चलती रहीं। आम जनता के बहुसंख्यक मजदूर और किसान राष्ट्रवादी राजनीति की मुख्य धारा से अभी भी बाहर थे। जन संघर्ष संगठित करने के प्रयत्न की वीरतापूर्ण बात करने के बावजूद उस तरह के संघर्ष कुल मिलाकर गायब थे। अवज्ञा आंदोलन और असहयोग मात्र विचार थे। राजनीतिक संघर्ष के तरीकों को ढूंढने का काम अभी पूरा नहीं हुआ था। अभी भी देश एक प्रभावशाली राष्ट्रीय संगठन से वंचित था। पूंजीवाद की चौहद्दियों के पार भी नहीं पहुंचा जा सका था। तिलक तथा अन्य नेता अभी भी मानते थे कि सामाजिक और आर्थिक विकास पूंजीवादी रास्तों में सीमाबद्ध था। अंतिम बात यह कि जुझारू राष्ट्रवादियों ने प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों की तरह भारत को अनेक धर्मों जातियों और क्षेत्रों का देश होने की संपूर्ण विशेषता का अनुभव नहीं किया। उनके युद्धोन्मुखी साम्राज्यवाद विरोध ने राष्ट्र को ठोस बनाने की दिशा में बड़ी छलांग लगाई लेकिन उसे जाति और हिंदू चरित्र से जोड़कर उन्होंने राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया को दुर्बल किया। इसी के कारण बाद के वर्षों में भयंकर सांप्रदायिकता पैदा हुई।

क्रांतिकारी आतंकवाद का उद्भव और विकास

राष्ट्रवादी आंदोलन की शक्ति और व्यापकता के बावजूद बंगाल के विभाजन को रद्द नहीं किया गया बल्कि उल्टे सरकार पहले से भी अधिक दमनकारी हो गयी। इन दोनों तथ्यों ने विद्रोही मनस्थिति वाले बेचैन युवकों के दिमाग पर तात्कालिक प्रभाव डाला। उग्रपंथी गुट के नेता तिलक ने बहुत पहले (लगभग आंदोलन से भी पहले) अपने युवक अनुयायियों के मन को इतना उत्तेजित कर दिया था जो उनसे निजी तौर पर आतंकवादी कार्य कराने के लिए काफी था। बहुत पहले यानी सन् 1897 में पूना के दामोदर और बालकृष्ण चिपलुणकर बंधुओं ने दो बदनाम अंग्रेज अफसरों की हत्या कर दी थी। बाद में अरविंद घोष ने कुछ क्रांतिकारी गतिविधियों की सचमुच योजना बनायी थी। बंगाल के विभाजन के बाद की घटनाओं ने बहुत से युवक भारतीयों की क्रांतिकारी भावना को उभार दिया। उन्होंने बम पिस्तौल और आतंक के निजी कामों का रास्ता अपनाया। सविनय अवज्ञा और संवैधानिक आंदोलन पर से उनका विश्वास उठ गया। उन्होंने सोचा कि अंग्रेजों को निश्चय ही ताकत से पछाड़ना होगा। बारिसाल अधिवेशन को पुलिस द्वारा भंग कर दिये जाने के बाद क्रांतिकारियों के विश्वास को अभिव्यक्ति देते हुए 22 अप्रैल 1906 को युगांतर ने एक संपादकीय में लिखा : निदान स्वयं जनता के पास है। दमन के अभिशाप को रोकने के लिए भारत में बसने वाले 30 करोड़ लोगों को अपने 60 करोड़ हाथ उठाने ही चाहिए। निश्चय ही ताकत को ताकत से ही रोकना होगा।

बहरहाल इन युवक आतंकवादियों ने ऐसी क्रांति का संगठित या आयोजित नहीं किया जो हिंसा पर आधारित हो और उसमें सारा देश और उसकी जनता शामिल हो। उन्होंने आयरी आतंकवादियों और रूसी निषेधवादियों के चरण चिन्हों पर चलना और उन अधिकारियों का हत्या करना बेहतर समझा जो अपने भारत विरोधी रवैये या अपने दमनकारी कामों की वजह से बदनाम हो गये थे। विचार यह था कि शासकों के दिल में आतंक पैदा कर दिया जाये जनता को राजनैतिक दृष्टि से उभारा जाये और अंततः अंग्रेजों को भारत से खदेड़ दिया जाये। इसकी प्रकृति ही ऐसी थी कि योजना संगठन भरती और प्रशिक्षण गुप्त ढंग से करना था। कारवाइयां भूमिगत होनी थीं। बंगाल और महाराष्ट्र में खासतौर पर गुप्त समितियां बनायी गयीं। उनमें से कुछ ने भौतिक संस्कृति क्लबों या संघों के भेष में काम किया। इनमें से ढाका की अनुशीलन समिति कलकत्ता के जुगांतर और सावरकर बंधुओं द्वारा महाराष्ट्र में गठित मित्रमेला काफी विख्यात हुए। वी डी सावरकर के विदेश चले जाने के बाद उनके बड़े भाई गणेश ने **अभिनव भारत समाज** की स्थापना की। शीघ्र ही इसकी शाखाएं सारे पश्चिमी भारत में फैल गयीं।

क्रांतिकारी आतंकवाद की तरफ जनता का ध्यान गंभीरतापूर्वक तब गया जब खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नाम के दो युवकों ने मुजफ्फरपुर के जिला जज की हत्या का प्रयत्न किया। बहरहाल बम से दो निर्दोष महिलाओं की जान गयी। खुदीराम गिरफ्तार कर लिये गये। प्रफुल्ल ने समर्पण करने के बदले आत्महत्या कर ली। अलीपुर में अरविंद घोष उनके भाई बारीन तथा अन्य लोगों पर षड्यंत्र के आरोप में मुकदमा चला। लेकिन जेल के अहाते में ही क्रांतिकारी आतंकवादियों द्वारा मुखबिर की हत्या कर दिये जाने से मुकदमे की सुनवाई में बाधा पैदा हो गयी थी। जांच करने वाले अधिकारियों और इस्तगासे की पैरवी करने वालों की भी एक एक करके हत्या कर दी गयी। अरविंद छूट गये थे लेकिन अगली पंक्ति के उनके चार साथियों को 'देश निकाला' देकर अंडमान भेज दिया गया। कई अन्य लोगों को जेल की लंबी सजाएं दी गयीं। खुदीराम को फांसी दी गयी। मुखबिर की हत्या करने वाले सत्येन बसु और कन्हाई दत्त को फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया।

महाराष्ट्र में नासिक बंबई और पूना बम उत्पादन के केंद्र बन गये। वायसराय की हत्या की कोशिश हुई। नासिक के जिलाधीश जैकसन को एक विदा समारोह में गोली मारी गयी। इस घटना के पहले एल धींगरा ने इंडिया आफिस लंदन के एक अधिकारी कर्जन विली की हत्या अमानुषिक देश निकाला और भारतीय युवकों की फांसी के विरोध में की थी। उसे मृत्युदंड मिला। मृत्यु से पहले उसने लिखा भारत को केवल यह सबक सीखने की जरूरत है कि कैसे मरा जाता है और इसको सिखाने का केवल एक ही तरीका है स्वयं मरना।'

मद्रास राज्य में विपिनचंद्र पाल के प्रभावपूर्ण भाषणों से लोग उत्तेजित हो गये। चिदंबरम् पिल्लै ने स्पष्ट रूप से पूर्ण स्वतंत्रता की बात कही। उनकी गिरफ्तारी के कारण तूतीकोरन और तिनेवल्ली में भयंकर दंगे हुए जिसमें पुलिस ने आज्ञा न मानने वाली भीड़ पर गोली चलायी। आशे (जिसने तिनेवल्ली में गोली चलाने का आदेश दिया था) की भारतमाता संघ के वांची अय्यर ने हत्या कर दी। भागने में विफल होकर अय्यर ने खुद को गोली मार ली।

वहां पर राष्ट्रवादी कांग्रेस में बदरुद्दीन तैयबजी और एम. सयानी ए. भीमजी और युवा बैरिस्टर मुहम्मद अली जिन्ना जैसे तेज लोग थे। इसके अतिरिक्त बंगाल, उत्तर प्रदेश और पंजाब में भी आधुनिक शिक्षा के प्रसार ने मुसलमानों में एक राष्ट्रवादी तबका पैदा किया जिसने बहुत हद तक मुसलमानों के नेतृत्व के एकाधिकार को तोड़ा। समस्या के इस पहलू को हम जवाहरलाल नेहरू की 'द डिस्कवरी ऑफ इंडिया' के इस उद्धरण द्वारा संक्षेप में रख सकते हैं।

> हिंदुओं और मुसलमानों के मध्यवर्ग के विकास में एक पीढ़ी का बल्कि उससे भी अधिक का अंतर रहा है। यह अंतर राजनैतिक, आर्थिक तथा बहुत सी दिशाओं में अभी भी दिखाई दे रहा है। यह कमी ही वह कारण है जो मुसलमानों में भय के मनोविज्ञान को पैदा करती है।

इस दौर में सांप्रदायिक ढंग के चिंतन के विकसित होने का एक और महत्वपूर्ण कारण था। भारतीय इतिहास को अंग्रेज इतिहासकारों ने एक विशेष व्याख्यात्मक मोड़ देकर प्रस्तुत किया। बाद में दुर्भाग्यवश उनके भारतीय प्रतिरूपों ने लेखन और शिक्षण में उन्हीं के चरण-चिह्नों का अनुसरण किया। इन लेखक इतिहासकारों ने इतिहास की शिक्षा ही इस ढंग से दी जिसने सांप्रदायिक भावनाओं को उभारा और सहारा दिया। प्रमाण के लिए प्राचीन काल को हिंदू काल और मध्यकाल को मुस्लिम काल के नाम से पुकारा गया। मध्यकाल में तुर्क, अफगान और मुगल वंश ने राज्य किया था। उनके शासन के गुण और चरित्र की व्याख्या करने के बजाय सभी को एक साथ मुसलमान मान लिया गया और उस काल को मुस्लिम काल कहा गया। मुस्लिम काल की बात करने का अर्थ था कि शासक सभी मुसलमान थे और प्रजा सारी हिंदू। वस्तुतः तथ्य यह था कि शासक, अमीर, सरकार और जमींदार चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान, हिंदू-मुसलमान दोनों ही वर्गों की जनता के साथ एक ही तरह का ऐसा घृणित और अपमानजनक बर्ताव करते थे, मानो वे एक हीनतर जीव हों और उनका इस्तेमान उनके (शासकों) लाभ के लिए किया जाना हो। मुसलमान जनता भी करों के कारण उतनी ही दमित और गरीब थी जितनी हिंदू जनता। इन इतिहासकारों ने यह महसूस नहीं किया कि प्राचीन और मध्ययुग में भारत में राजनीति का वही स्वरूप था जैसा अन्य जगहों में। उसने शासकों के राजनैतिक और आर्थिक हितों के लिए अपेक्षित आदर्शों का अनुसरण किया। उसमें मुश्किल से किसी धार्मिक विचारणा को जगह दी। निस्संदेह शासकों और उनके विद्रोहियों दोनों ने जनता को गुमराह करने के लिए धर्म के बाहरी रूप का प्रायः इस्तेमाल किया और अपने वास्तविक भौतिक हितों और आकांक्षाओं पर मुखौटा लगा दिया। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे उद्देश्य अपने आप में धार्मिक या सांप्रदायिक थे। यह भी कि ब्रिटेन और भारत के सांप्रदायिक इतिहासकारों ने भारत की मिली-जुली संस्कृति पर बल नहीं दिया। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत का सांस्कृतिक स्वरूप बहुविध था लेकिन उसमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक एकरूपता का एक धागा था। इसमें भी महत्वपूर्ण यह है कि विविधता वर्गों और क्षेत्रों के अनुसार थी, न कि धर्म के अनुसार।

हिंदू सस्कृति आर मुस्लिम सस्कृति की विशिष्टता आर अलगाव की भामक अवधारणा को सामन लाकर इतिहास क शिभण ने विभाजक प्रवृत्तिया पदा की । धार्मिक सुधार के आदोलन का भा वैसा ही प्रभाव पडा । इन आदोलना की एक महत्वपूर्ण देन यह थी कि उन्हाने युक्तिहीन आर अस्पष्ट चिन्तन का विरोध किया विवेकसम्मत आर मानवाय विचारा का प्रसार किया, उन्नीसवा शताब्दी के धार्मिक विश्वास आर आचार मे समाय हुए भ्रष्ट तत्वा को निकाल फेंका आर भारतीय जनता में तीव्रतर आत्मविश्वास की भावना जगाई । लेकिन उसी क साथ उनम से बहुना ने हिंदुआ मुसलमानां सिखा पारसियों मे फूट डालन का प्रयत्न किया । उन्हान उच्च वर्ग क हिंदुआ का नीची जाति के हिंदुआ स अलग करा की भी काशिश की । किसी भी बहुधर्मी देश का धर्म पर अत्यधिक बल देन का अनिवार्य परिणाम विभाजन ही हाता है उसके अलावा सुधारा ने एकपक्षीय ढग से सास्कृतिक उत्तराधिकार के धार्मिक आर दार्शनिक पहलुआ पर बल दिया । य पहलू देश क सभी लोगा क समान उत्तराधिकार नही थे । दूसरी तरफ कला वास्तुकला साहित्य सगात विज्ञान आर तकनीक जसे विषया पर बल नही दिया गया जबकि उनम ही वर्ग के लागा न समान भूमिका निभाई थी । इसके साथ हिंदू सुधारवादिया ने अपने को निश्चित रूप से अतीत क गारव गान तक सीमित कर लिया । यहा तक स्वामी विवेकानन्द जसे उदारमना व्यक्ति ने भी इस अर्थ म भारतीय आत्मा या भारत के अतीत की उपलब्धिया की बात की । पूरी तरह बहुत म मुस्लिम सुधारवादिया ने अपनी परपरा आर गारव क क्षणो की तलाश मे निगाह पश्चिम एशिया पर डाली । इस प्रकार सुधारवादिया के कार्यकलापा न दा भिन्न तरह के लोगो का विचार पदा किया । अलावा इसके धार्मिक सुधार के आन्दालना ने अपने को महज सुधार क पहलुआ तक सीमित नही रखा । उन्हाने दूसरे धर्मो के विरुद्ध युद्ध की भी शुरुआत की आर इस रूप म उन्हाने दश का 20वी शताब्दी मे साम्प्रदायिकता के विकास में योग दिया ।

राजनीति का साम्प्रदायिक दृष्टिकाण अवज्ञानिक आर युक्तिहीन था लकिन उसन उस भयवृत्ति का छलपूर्ण इस्तमाल किया जिसस एक अल्पसख्यक पाडित रहता ह । एसा परिस्थिति में बहुसख्यक धम वाला की यह जिम्मदारी होती ह कि व अपन रवये आर व्यवहार द्वारा अल्पसख्यक वर्ग का यह विश्वास दिलावें कि उनकी सख्या का इस्तेमाल उस आहत करने के लिए नही हागा । उन्ह अल्पसख्यक वग के सदस्यो को केवल यहा विश्वास नहीं दिलाना चाहिए कि उनका धर्म आर उनका सामाजिक सास्कृतिक विशेषताए सुरक्षित रहेंगी बल्कि उन्ह यह भी महसूस कराय कि आर्थिक और राजनतिक मसलो पर जो भी निर्णय किय जायगे उनका शुद्ध आधार धर्मनिरपेक्ष दृष्टि हागी आर उन निर्णया तक पहुचन म धर्म का कोई लिहाज नही हागा । वास्तव मे प्रारभिक दार क राष्ट्रवादियो न ठीक यही किया था । उन्हाने राष्ट्र अर्थस्थिति आर राजनीति के समान हिता क आधार पर जनता का सगठित करन आर उस एक राष्ट्र म एकबद्ध करने की कोशिश का । उन्होंने आश्वासन दिया कि जनता के धार्मिक आर सामाजिक जीवन म हस्तक्षेप नहीं हागा । भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने सन् 1889 मे यहा तक स्वीकार किया कि ऐसा कोइ प्रस्ताव अनुमादित नहीं किया जायगा जिस मुस्लिम प्रतिनिधियों क बहुसख्यक हानिकारक मानेंग ।

दूसरे शब्दों में प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों ने जनता को यह साफ दिखा कि राजनीति धर्म और सम्प्रदाय पर आधारित नहीं होनी चाहिए, उसने राजनीतिक दृष्टिकोण को आधुनिक बनाने का प्रयत्न किया।

दुर्भाग्यवश बाद के कुछ नेताओं ने धर्मनिरपेक्ष राजनीति के इस बुद्धिमत्तापूर्ण सिद्धांत का सख्ती से पालन नहीं किया। जुझारू राष्ट्रवादियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक बड़ी गति दी। वे जनता की शक्ति और उत्साह के साथ आगे लाये। लेकिन उनके कुछ कार्यों से साम्प्रदायिकता का पुन उभार हुआ। राष्ट्रीय एकता के विकास की दृष्टि से यह एक कदम पीछे लौटना जैसा था। उनके प्रचार और विज्ञापन जनता को उभारने में प्रभावकारी थे लेकिन उनमें पवित्र धार्मिक गंध थी। उन्होंने भारत की प्राचीन परंपरा पर बल दिया लेकिन उसमें मध्यकालीन भारतीय संस्कृति को शामिल नहीं किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति को (जिसे वे आर्यों का उत्तराधिकार मानते थे) हिंदू धर्म और भारतीय राष्ट्र को हिंदुओं से पहचाने जाने की प्रवृत्ति दिखायी। प्रमाण के लिए शिवाजी और गणपति पर्व का तिलक द्वारा आयोजन भारत को मा और राष्ट्रवादिता को धर्म मानने का अरविंद का अर्द्ध रहस्यवादी अर्द्ध आध्यात्मिक दृष्टिकोण आतंकवादियों का देवी काली के सामने शपथ ग्रहण विभाजन विरोधी आन्दोलन के मांगलिक उद्घाटन के लिए गंगा में शुद्धिस्नान आदि चीजें हर जगह सभी भारतीयों को पसंद नहीं आ सकती थीं। उनमें एक सशक्त धार्मिक और एक ऊंची जाति के हिंदू का पूर्वाग्रह था। धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण वाले साधारण भारतीय तक एक शुद्ध राजनैतिक आन्दोलन के ईर्द गिर्द जुटने वाले धार्मिक पूर्वग्रहों को नापसंद नहीं भी कर सकते थे तब निश्चय ही मुसलमानों और कुछ अन्य धर्मानुरागियों ने उस प्रतिमा और संस्कार को अपने विश्वास और सवेदनशीलता के विरुद्ध पाया। इसी तरह धर्म और अतीत काल का अंधी प्रशंसा नीची जाति के भारतीयों को स्वीकार्य नहीं था क्योंकि वे शताब्दियों से उस विध्वंसक जातीय दमन से पीड़ित थे जिसका प्राचीन काल में विकास हुआ था। इसके अतिरिक्त यदि एक ने शिवाजी और प्रताप को राष्ट्रीय नायक बनाने की कोशिश की तो कोई भी स्वत यह अर्थ निकाल सकता था कि मुगल सम्राट राष्ट्रविरोधी थे। लेकिन तथ्य यह है कि औरंगजेब और अकबर भी उतने ही भारतीय थे जितने शिवाजी और प्रताप। इसके अलावा वे सभी शासक वर्ग से संबद्ध थे। उनके पारस्परिक संघर्ष को उनके विशेष ऐतिहासिक ढांचे में राजनैतिक संघर्ष की दृष्टि से देखा जाना चाहिए था। प्रताप और शिवाजी को राष्ट्रीय नायक और अकबर तथा औरंगजेब को 'विदेशियों' के रूप में देखने का अर्थ था बीते हुए इतिहास में साम्प्रदायिक चिंतन ने उस वक्त के प्रचलित तरीकों को प्रक्षेपित करना। यह एक गंदा इतिहास और राष्ट्रीय एकता पर एक प्रहार दोनों ही था।

सचमुच इसका यह अर्थ नहीं है कि जुझारू राष्ट्रवादी मुस्लिम विरोधी या कि मुख्यतया साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के थे। बल्कि इसके विपरीत उनमें से बहुत से लोग खासकर तिलक आदि हिंदू मुस्लिम एकता के पक्षधर थे। उनमें से अधिकतर अपने विचारों में आधुनिक और प्रगतिशील थे। यहां तक कि व्यवहार में आतंकवादियों को अपनी तरह के यूरोपीय देशों के

उन आतंकवादियों से प्रेरणा मिली थी जो यह विश्वास करते थे कि आर्थिक परित्राण और राजनीतिक स्वतंत्रता केवल एक हिंसक क्रांति के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। लेकिन यह तथ्य तो अपनी जगह पर है ही कि युद्धोन्मुख राष्ट्रवादियों के राजनीतिक कार्यों और विचारों में एक निश्चित हिंदू रंगत थी। संभव है कि उनके अंतिम लक्ष्य धर्मनिरपेक्ष रहे हों लेकिन उनका बाहरी व्यवहार ऐसा नहीं था। अंग्रेजों और कांग्रेस समर्थक प्रचारकों ने इस तथ्य का चतुराई से लाभ उठाया। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत बड़ी संख्या में शिक्षित मुसलमान या तो राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति द्वेषी हो गये या उन्होंने अपने को उससे एकदम अलग रखा। इस प्रकार वे एक पृथक्तावादी दृष्टिकोण के शिकार हो गये। लेकिन इसके बावजूद बैरिस्टर अब्दुल रसूल और हसरत मोहानी जैसे प्रगतिशील मुसलमान बुद्धिजीवियों ने बड़ी संख्या में स्वदेशी आंदोलन में हिस्सा लिया। मुहम्मद अली जिन्ना राष्ट्रीय कांग्रेस के युवक नेताओं में से एक थे।

एक गरीब और पिछड़े हुए देश में (जिसे औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत तेजी के साथ पिछड़ेपन की ओर ले जाया जा रहा हो) शिक्षित वर्ग के लिए विशेष रूप से नौकरी के अवसर सीमित होते हैं। इसीलिए उस दौर में सीमित संख्या वाली नौकरियों के लिए कड़ा मुकाबला था। दूरदर्शी भारतीयों ने देश की राजनैतिक और आर्थिक उन्नति के लिए काम किया। लेकिन परिस्थिति का निहित स्वार्थ वाले अंग्रेजों और भारतीयों दोनों ने साम्प्रदायिक, धार्मिक, जातीय और क्षेत्रीय भावना को उभारने में नाजायज इस्तेमाल किया। हर वर्ग और गुट ने नौकरियों और अन्य जगहों (प्रतिनिधित्व की) में आरक्षण की जोरदार आवाज उठायी। तंग दिमाग और अदूरदर्शी किस्म के हिंदुओं और मुसलमानों ने अपनी अपनी राष्ट्रीयता की बात इस तरह करनी शुरू की गोया राष्ट्रीयता का विभाजन किया जा सकता था, या उसके बहुत से जातीय रूप थे, और बिना साम्राज्यवाद और निहित स्वार्थ वालों से संघर्ष किये ही आर्थिक कल्याण के कामों में अभिवृद्धि की जा सकती थी।

साम्प्रदायिकता के सिद्धांत को एक चौखटे में ठोस स्वरूप सन् 1906 में तब दिया गया जब आगा खां और ढाका के नवाब सलीमुल्लाह मोहसिनुल मुल्क के नेतृत्व में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। इस तरह का प्रतिगामी कदम उठाने की जिम्मेदारी शिक्षित मुसलमानों के एक स्वार्थी वर्ग, निहित स्वार्थों वाले प्रतिक्रियावादियों, मुसलमान जमींदारों और उसके उच्च वर्ग की थी। लीग ने बंगाल के विभाजन का समर्थन किया और विशेष सुरक्षाओं और अलग से निर्वाचन मंडल की मांग की। अंग्रेज ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने इसका पूरा फायदा उठाया और घोषणा की कि मुसलमानों के 'विशेष हितों' को सुरक्षित किया जायेगा। लीग ने वफादारी के साथ कांग्रेस की हर राष्ट्रीय जनतांत्रिक मांग का विरोध शुरू किया। बंगाल में वफादार लीगी नेता बड़े जमींदार थे और वे क्योंकि बंगाली नहीं थे, अतः वहां के लिए बाहरी थे। इसका परिणाम यह था कि बंगाली मुसलमानों की भावनाओं के लिए उनके मन में बहुत कम सहानुभूति थी।

लीग का शुरू से ही दावा था कि मुसलमानो के हित शेष राष्ट्र के हितो से भिन्न आर विरुद्ध थे। लेकिन उसके इस गवे की मूलभूत असत्यता आधुनिक विचार वाले शिक्षित, युवा मुसलमानो के एक बड वर्ग पर स्पष्ट थी। वे क्रातिप्रिय राष्ट्रवादी विचारधारा से आकर्षित थ। उन्होन लाग म इस कथन को अस्वीकृत कर दिया कि वह सारे मुसलमानो के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती ह। अहरार आन्दोलन इसी वक्त क आसपास मोलाना मुहम्मद अली हकीम अजमलखा आर मजहरुल हक जैसे नेताओ द्वारा शुरू किया गया था। वह जुझारू भी था आर राष्ट्रवादी भी। इसी तरह परपरागत मुसलमान विद्वानो के एक वग ने देशभक्ति की भावना जगाई ओर साप्रदायिक चितन के तरीको का तिलाजलि दकर राष्ट्रवादी राजनीति म हिस्सा लिया। उनम सबस महत्वपूर्ण थे मोलाना अबुल कलाम आजाद।

इस शताब्दी के दूसरे दशक क शुरू के कुछ वर्षो म तुर्की को पहले इटली स ओर बाद म बालकन शक्तियो से युद्ध करना पडा। उस समय तुर्की सबसे अधिक ताकतवर मुस्लिम शक्ति था। मुसलमानो के अधिसख्य तीर्थस्थल उसके साम्राज्य म थ। सन् 1857 तक भारतीय मुसलमानो ने राजनीनिक आर धार्मिक दोनों ही दृष्टियो से मुगल सम्राट का अपने इमाम या गुरु क रूप म स्वाकार किया था। मुगल सम्राट के सत्ताहीन हान और तुर्की साम्राज्य पर रूस के बढते हुए प्रभाव क बाद ब्रिटेन ने तुर्की की सुरक्षा का फैसला किया आर इस रूप में मुसलमानो के परवीकार रूप को उभारना चाहा। अत उसने इस्लामी बधुत्व क आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। इसका अर्थ यह था कि उसने तुर्की क सुलतान का सारे मुसलमानो का खलीफा होने की स्वीकृति दी। तुर्की शासक या खलीफा को सभी मुसलमानों का धर्मगुरु माना जाता था। जब तुर्की की सुरक्षा आर कल्याण क सामने खतरा पैदा हुआ तो भारतीय मुसलमानो न उस पर तीखी प्रतिक्रिया की। मुसलमानो म अग्रेज विरोधी आर साम्राज्यवाद विरोधी भावना तेजी से उभरी। इसका सीधा परिणाम यह हुआ कि भारत के क्रातिप्रिय युवा मुसलमान राष्ट्रवादी धारा म शामिल हो गये जो खुद भी साम्राज्यवाद विरोधी था। सन् 1912 ओर 1924 के बीच के कई वर्षो में राष्ट्रवादी युवा मुसलमानो ने वफादार मुस्लिम लीगियों का प्रभाव एकदम खत्म कर दिया था।

लेकिन इस तरह के विकासों का एक नकारात्मक पक्ष था। खिलाफत के प्रश्न को लेकर चलने वाले वाल आन्दोलन ने शिक्षित जुझारू युवा मुसलमानो के चितन को गलत मोड द दिया। बजाय इसके कि वे साम्राज्यवाद का विरोध इस आधार पर करते कि उसने जनता के आर्थिक आर राजनीतिक हितों को कमजोर बनाया उन्होने विरोध इसलिए किया क्योकि खिलाफत आर तुर्की साम्राज्य क अन्तर्गत स्थित तीर्थस्थलो क सामने खतरा पैदा हो गया था। इसके अतिरिक्त उन्होने जिन मिथकों सास्कृतिक परपराओं ओर नायको के नाम पर आग्रह किये उनका सबध भारत क प्राचीन या मध्यकालीन इतिहास से न होकर पश्चिमी एशिया के इतिहास मे था। इस प्रकार उनक राजनैतिक आग्रह का आधार भी धार्मिक भावनाए थीं। आगे चलकर यह दृष्टिकोण भी राष्ट्रवादिता के विकास म क्षतिकारक सिद्ध हुआ क्योकि इसके

आर्थिक और राजनैतिक प्रश्नों पर मुसलमान जनता में वैज्ञानिक और धर्मनिरपेक्ष दृष्टि का विकास नहीं किया।

हालांकि इस दौर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विरोध करने के लिए किसी साम्प्रदायिक हिंदू संगठन या आंदोलन का जन्म नहीं हुआ लेकिन व्यापक पैमाने पर हिंदू सांप्रदायिकता का फैलना शुरू हो गया। किसी साम्प्रदायिक हिंदू संगठन के स्वतंत्र रूप से स्थापित न होने का एक कारण यह था कि व्यापक राष्ट्रवादी प्रवृत्ति के भीतर ही हिंदू साम्प्रदायिक प्रवृत्ति को जगह मिल गयी, जबकि मुस्लिम साम्प्रदायिक प्रवृत्ति को राष्ट्रवादी धारा के बाहर काम करना पड़ा। कुछ नेताओं ने हिंदू राष्ट्रीयता का, मुसलमानों को 'विदेशी' कहने की और यहां तक कि हिंदुओं के हितों की रक्षा करने के लिए नौकरियों और विधायिका की जगहों पर हिंदुओं की हिस्सेदारी के बारे में बात करना शुरू कर दिया था। इस प्रकार हिंदू और मुसलमान साम्प्रदायिकता को विकसित करने की एक दूसरे ने सामग्री उपस्थित की।

प्रथम विश्वयुद्ध के वर्ष

ब्रितानी महाशक्ति द्वारा सन् 1914 में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा से भारत स्वतः उसकी परिधि में आ गया। युद्ध की घोषणा या मूलतः ब्रितानी साम्राज्य के हितों की रक्षा के लिए युद्ध में भारतीय जनशक्ति और साधनों के इस्तेमाल करने के सरकारी निर्णय के पूर्व भारतीयों से सलाह नहीं ली गयी थी। यद्यपि (युद्ध में) भारत का अवदान स्वैच्छिक नहीं था, पर काफी बड़ा था। फ्रांस से लेकर चीन तक के विभिन्न युद्ध मोर्चों पर 10 लाख से अधिक भारतीय भेजे गये। उनमें से 10 प्रतिशत मौत के शिकार हुए। युद्ध पर कुल 12 करोड़ 10 लाख पौंड से अधिक खर्च हुआ। भारत के राष्ट्रीय ऋण में 30 प्रतिशत की वृद्धि हो गयी और उसके एक बड़े भाग के भुगतान के लिए जनता को मजबूर किया गया।

प्रारंभिक राष्ट्रीय प्रतिक्रिया

प्रारंभ में भारतीय नेताओं ने ब्रिटेन के लिए सहानुभूति और समर्थन की घोषणा की। लेकिन बावजूद इसके यह सोचना गलत होगा कि जनता में सचमुच ब्रिटेन का पक्ष लेने की भावना थी। नरमपंथी और उग्रपंथी दोनों ही वर्गों के नेताओं ने जर्मनी की जीत के समाचार सुनकर संताप का अनुभव किया। कांग्रेस ने इस तथ्य को गुप्त नहीं रखा कि भारतीय वफादारी के पुरस्कार के रूप में राजनैतिक सुधार की मांगों की पूर्ति होनी चाहिए। गांधीजी ने भर्ती में सक्रिय सहायता इस दृष्टि से की ताकि साम्राज्य के कूटनीतिज्ञों की सहायता से स्वराज पाने की योग्यता प्राप्त हो जाय। सन् 1918 में उन्हें कहना पड़ा, भारतीयों का स्वप्न है स्वराज। उसे साकार

करने से कम किसी चीज से उन्हें सतोष नही होगा आर वह भी जितना सभव हो कम स कम समय में।

लेकिन युद्ध के ऊचे लगने वाले उद्देश्यों के मित्र राष्ट्रों के दाव से बहुत से लाग भ्रम के शिकार हुए। लायड जार्ज ने कहा ' मित्र देश अन्य किसी चीज के लिए नही सिर्फ स्वतन्त्रता के लिए लड रहे हे। लगा कि राष्ट्रपति विलसन के 11 सूत्र इन्हीं आदर्श विचारा का सशक्त कर रह है। अत आश्चर्य नहीं कि अधिसख्य भारतीय युद्ध का वास्तविक चरित्र देख पाने मं असफल रहे। उस युद्ध का चरित्र था एक सघर्ष जो साम्राज्यवादी शक्तिया द्वारा उपनिवेशो ओर बाजारो क लिए चलाया गया। प्रारंभिक उत्साह इस सकेत के अभाव म मद्धिम पड गया कि भारतीय सहयाग को सुधारो के जरिये मान्यता दी जायेगी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी न भविष्यवाणी की कि सुधारो की घोषणा में सरकारी विलब नरमपंथियों के प्रभाव को समाप्तप्राय कर देगा।

उग्रपथियों ओर नरमपथियो को साथ लाने मे दा चीजो ने काम किया। फीरोजशाह मेहता ओर गोपाल कृष्ण गोखले का देहावसान तथा तिलक की माडले से वापसी। श्रीमती एनी बेसट के सुझाव पर बबई काग्रेस (1915) ने उग्रपंथियों के लिए दरवाजा सही मायनो म खोल दिया। भारतीय सस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा सामाजिक ओर शेक्षिक योजनाओं के प्रति निष्ठा ओर राष्ट्रकुल के अन्तर्गत पूर्ण स्वराज की अपनी प्रतिबद्धता के कारण वह उस समय तक एक महत्वपूर्ण राजनेतिक नेता बन गयी थी। आयरलड के विद्रोह से प्रेरणा लेकर उन्होने सितबर 1916 में 'होम रूल लीग की स्थापना की। थियोसोफिकल सोसायटी के साधनों ओर आयरी राष्ट्रवादिया के तरीकों का इस्तेमाल करके उन्होने थोडे ही दिनो में पूरे देश में लीग की शाखाए स्थापित कर दीं। तिलक अपनी होम रूल लीग के साथ उसमें शामिल हो गये। उनके सहज भाषणा आर तेज चोट करने वाले लेखों ने एक बार फिर देशभक्ति निर्भयता ओर त्याग पर बल दिया। उन्होने अपनी गतिविधियो को महाराष्ट्र ओर मध्यप्रात तक सीमित रखा लेकिन अपने योग्य अनुयायिया की सहायता से श्रीमती बेसट न देश के शेष भाग म आदालन को सगठित किया। युद्ध के परिणामस्वरूप कर बढ गये कीमते बढ गयीं। ओर गरीब वर्ग की तकलीफे भी। ये होम रूल की अपील से प्रभावित हुए। ऐसा ही बडी सख्या में स्त्रियो ने भी किया।

क्रांतिकारी आदोलन देश मे और देश के बाहर

एक ओर युद्ध से पदा हुई उत्तजना इस रूप में काग्रस की शक्ति का पुनर्वर्द्धन कर रही थी आर दूसरी ओर क्रातिकारिया ने जर्मनी की सहायता से परिस्थिति का लाभ उठाने का फेसला किया। सरकार क दमनकारी कदमा के कारण व अस्तव्यस्त हा गये थे लेकिन सन् 1912 स उन्होने दूसरी बार की शक्ति आजमाइश के लिए अपन को पुनर्सगठित करना शुरू किया। देश के बाहर के भारतीय क्रांतिकारिया ने स्वतत्रता के हमारे सघर्ष में एक नया आयाम जोडा।

वे सिर्फ व्यक्ति नही थे जि होंने जेल या मृत्यु से डरकर विदेशों मे पलायन कर लिया था। उनमे से अधिकतर को केंद्र सगठित करने की योजना के साथ भेजा गया था। आशय था भारतीय मसले का सभावित प्रचार आर अस्त्र तथा धन का एकत्रण ताकि यहा पर क्रांति को विस्तृत किया जा सके। उ हाने भारतीय छात्रों, व्यापारियों आर प्रवासी मजदूरा मे से नये लोगा की भर्ती की। वे जहा भी गये, वहा के प्रगतिशील ओर समाजवादी आदालनों का समर्थन प्राप्त किया। युद्ध छिड जाने के वाद वे विदेशा मे नियुक्त भारतीय सेना की टुकडियो, युद्धवदियों ब्रितानी शासन के वेरियो से सपर्क स्थापित कर सकते थे। उन्हाने जर्मनी की सहायता से भारत के क्रांतिकारी सगठनों के लिए जवान कोप आर अस्त्र की आपूर्ति करने की योजना वनायी। उनका मतलव कभी भी जर्मनी के हाथा का औजार बनना नहीं था।

सावरकर की गिरफ्तारी ओर पलायन के उनके घातक प्रयत्न के वाद लदन के क्रांतिकारी इधर उधर छितरा गये। वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय पेरिस चले गये और फिर वहा से जर्मनी। जर्मनी के विदेश कार्यालय की सहायता से बर्लिन मे वहा के रहने वाले भारतीया की एक समिति वनी जो वाद मे भारतीय स्वतत्रता समिति के नाम से जानी गयी। वीरेंद्रनाथ उसके सचिव हुए। उसन वगदाद इस्तावूल परशिया ओर कावुल में अपने प्रचारक मडल भेजे जिसने भारतीय सेना की टुकडियों और भारतीय युद्धवंदियो के वीच काम किया। राजा महेंद्रप्रताप को मोलाना वरकतुल्लाह ओर मालाना उवेदुल्लाह के साथ कावुल भेजा गया, जहा उन्हाने भारत की एक अस्थायी सरकार बनायी।

इसी वीच हरदयाल अमेरिका पहुच गये जहा तारकनाथ दास और मोहन सिह ने पश्चिमी तट पर वसे भारतीया प्रवासियों के वीच (जो अमेरिका के प्रवास सवधी सख्त कानून से तग थे) क्रांतिकारी संदेशों का प्रचार शुरू कर दिया था। उन्होने एक पार्टी की स्थापना की ओर 1 नववर 1913 से एक साप्ताहिक **गदर** प्रकाशित हुआ। पार्टी ने वही नाम अपना लिया। इसके कार्यक्रमा म सैनिको के वीच कार्य अधिकारियो की हत्या क्रांतिकारी साम्राज्यवाद विरोधी साहित्य का प्रकाशन ओर अस्त्र प्राप्ति शामिल थे। इसका मुख्य कार्यालय सैनफ्रासिस्को में रहा। शाखाए पूरे अमेरिकी तट आर सुदूर पूर्व के देशों मे स्थापित हुई। विचार यह था कि एक साथ सारे ब्रितानी उपनिवेशों मे क्रांति की जाये। ब्रिटेन और जर्मनी के बीच युद्ध की स्थिति नजदीक थी ओर उसकी उत्सुकता से प्रतीक्षा की जा रही थी। गदर ने एक विज्ञापन प्रकाशित किया आवश्यकता है वीर सिपाहियों की। वेतन मृत्यु। पुरस्कार शहादत। पेंशन स्वतत्रता। युद्ध स्थल भारत।

कोमागाटामरू की घटना ने गदर पार्टी की गतिविधियों में सहायता पहुचाई। वह एक जलयान था जिसे प्रवासियो को कनाडा पहुचाने के लिए भाडे पर लिया गया था लेकिन उसके पहुचने पर यात्रिया के दो महीने तक तगी-तक्लीफ ओर अनिश्चय म रहने के वाद लाटने को विवश होना पडा। अतत कोमागाटामारु ने कलकत्ता वदरगाह पर लगर डाला तो यात्रियों ने उस रेलगाडी पर चढने से इकार कर दिया जस सरकार ने उनके लिए आरक्षित किया था। परिणाम था एक

दगा जिसम 20 से लेकर 40 आदमी तक मारे गये आर बहुत से घायल हुए। तोशामारु की भी यही हालत हुई। उस पर बैठ पजाबी इस समाचार से उत्तेजित हुए। वे उजलतबाजी मे भारत वापस आये आर ब्रितानी शासन के खिलाफ एक प्रभावशाली सशस्त्र आदोलन चलाने के लिए घटनाग्रस्त व्यक्तिया के साथ हो लिये। जर्मन हथियार पाने मे असफल होकर उन्होने बगाली क्रांतिकारिया स सपर्क किया।

उनमे यतीद्रनाथ मुकर्जी रासबिहारी बोस आर नरद्रनाथ भट्टाचार्य जसे नये नता सामने आ चुके थे। भारतीय सनिको को समझा बहकाकर सेना स निकालने एक क्रम म पेशावर से लेकर चटगाव तक की पुलिस लाइनों और सरकारी खजाना पर आक्रमण करने आर अतत जर्मनी हथियारो से युद्ध की घोषणा योजना के मुख्य अग थ। 21 फरवरी 1915 का दिन विद्रोह के लिए निश्चित किया गया लकिन दुर्भाग्य कि विश्वासघात के कारण प्रयत्न असफल हो गया। षड्यत्र के एक प्रमुख सदस्य वी जी पिंगले को मरठ की केवलरी लाइन म बम के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। सना की विद्रोही रेजिमेंटा को विघटित कर दिया गया। बहुत से षड्यत्रकारियों को या तो फासी पर लटका दिया गया या कालापानी की सजा दकर अडमान भेज दिया गया। रासबिहारी बोस जापान भाग गये।

यतीन मुकर्जी न अधिक महत्वाकाक्षी योजनाओं के मोह में छिटपुट हत्या क कार्यक्रमो पर अमल नहीं किया। 'राडा एड कपनी' को भेजे गय माउजर पिस्तोलों की ऐन मौके पर बहुत बड़ी सख्या में बरामदी हुई। जर्मन हथियारा की प्रतीक्षा करन वाले पाच बगाली आतकवादियो और सशस्त्र पुलिस की एक बटालियन के बीच सबसे अधिक याद की जाने वाली एक लडाई बडी बालान नदी के तट पर बालासार मे हुई। जिसमें एक खाई में से बहादुरी स लडते यतीन्द्रनाथ मारे गये।

युद्ध के दौरान क्रांतिकारी आदोलन इसलिए असफल हो गया क्योंकि भारतीय नेताओ में पारस्परिक समन्वय का ओर भारतीय क्रांतिकारिया तथा बर्लिन समिति आर गदर पार्टी म सपर्क का अभाव था। सरकार चूकि शुरू से ही सशकित थी उसने अमरिकी सरकार को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह जहाज से हथियार भेजे जाने के प्रयत्न को सफल न होने दे। जिस वक्त से अमरीका जर्मनी के युद्ध म मित्र देशों के साथ हो गया वहा पर कोई भी गतिविधि असभव हो गयी। सेनफ्रासिस्को म गदर पार्टी के नेताओ पर मुकदमे चले जिसकी वजह से अमेरिका मे रहकर आर कोई भी क्रांतिकारी गतिविधि चलाने की सभावनाए खत्म हो गयीं।

लखनऊ समझौता

परिस्थितिया जिस वक्त सरकार को चीजा को एक नये दृष्टिकोण से देखने को विवश कर रही थीं सन् 1916 म कांग्रेस और लीग के बीच के समझोते ने एक रास्ता दिखाया। लखनऊ

काग्रस का अधिवेशन सन् 1908 के बाद का सयुक्त काग्रेस का पहला अधिवेशन था। होम रूल आदोलन ने उसमें युद्ध की चेतना भर दी थी। मोलाना आजाद असारी और अजमलखा से एक सहमति हुई। अब तक सामती तत्वा के नेतृत्व में रहने के कारण लीग अलीगढ वर्ग के राजनीतिक दृष्टिकोण की सीमाओ से बाहर आ गयी थी ओर उसका रुख भी अधिक सख्त हो गया था। आजाद के अलहिलाल ओर मुहम्मद अली के कामरेड का दमन आर उसके तत्काल बाद दोनों नेताआ की नजरबदी के कारण मुसलमान वर्ग के राष्ट्रवादी नेता काग्रेस से सहयोग करने को तेयार हो गये। परिणाम था लखनऊ समझोता।

तिलक ने काग्रेस आर मुस्लिम लीग को साथ लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई क्योंकि वह महसूस करते थे कि बिना हिंदू-मुस्लिम एकता के सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती थी। एक सयुक्त राष्ट्रीय सगठन के मुकाबले में उग्रपंथियो की एक सस्था कम प्रभावकारी होगी। एकता प्राप्त करने की अपनी उत्सुकता में उन्होंने पृथक निर्वाचन मडल और मुस्लिम अल्पसख्यकों को अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व देने के सिद्धात तक को स्वीकार कर लिया। विधानसभाओ मे विभिन्न प्रातो के लिए मुसलमान सदस्या की सख्या स्पष्टतया ब्यारेवार निश्चित थी। शाही विधान परिषद मे इसकी सख्या एक तिहाई होनी थी। यदि एक धर्म के तीन चोथाई सदस्य किसी कानून का विरोध करते हो तो उसे अमल में लाने के कदम नही उठाये जा सकते थे। प्रत्युत्तर में काग्रस और लीग ने सयुक्त रूप से भारतीय परिपद की समाप्ति केद्रीय आर प्रातीय विधान परिषद के 80 प्रतिशत सदस्या के चुनाव प्रातीय मामलों म हस्तक्षेप न करने के वायदे तथा प्रतिरक्षा ओर विदेश नीति के अलावा केंद्रीय सरकार के अन्य सभी विभागों पर पूर्ण नियत्रण की माग की। लखनऊ समझाता हिंदू-मुस्लिम एकता की दिशा मे एक महत्वपूर्ण अगला कदम था। लेकिन, जसा कि गाधीजी ने कहा 'वह शिक्षित ओर धनी हिंदुआ तथा शिक्षित ओर धनी मुसलमानों के बीच का एक समझोता था। इसने हिंदू ओर मुसलमान जनता म लगाव की भावना नहीं पदा की। वह अब भी हिंदुओं आर मुसलमानो के हितो के भिन्न होने की धारणा पर बल देता रहा और इसलिए दोनो के ही अलग अलग राजनैतिक अस्तित्व की बात होती रही। इसका आधार ही वह खतरनाक ओर गलत धारणा थी कि हिंदू ओर मुसलमान दोना के विभिन्न समुदाय है। यह धर्मनिरपेक्षता को विकसित करने में सहायक नहीं था। इसने भविष्य की साप्रदायिकता के लिए दरवाजे खुले रखे। भारतीय एकता को मूलाधार मानकर किय गये समझाते का निश्चित परिणाम ही था अधिक स अधिक रियायत तव तक देते जाना जब तक कि पूरा ढाचा ही टूट न जाये।

बहरहाल, देश के दो बडे राजनीतिक दलो की निश्चित सयुक्त माग के कारण कुछ समय तक सरकार को विरोध की स्थिति से गुजरना पडा। अलावा इसके उसे होम रूल लीग के आदोलन का भी सामना करना पडा जिसने नयी पीढी के नेताआ को आकर्षित किया था। देश में आर देश के बाहर क्रांतिकारी आदालन चला रहे थे। उन्ह भी नजरअदाज नहीं किया जा सकता था। सरकार ने एक बार फिर सुधारो की नीति आर दमन का अपना दो चेहरो वाला

वजह से आम जनता घोर विपत्ति म पड गयी। किसान लगान आर कर क भारी याझ स दय कराहत रह। भविष्य का लकर आम चिता थी। पूजीपति सरकारी सहायता आर सुरक्षा चाहत थ। क्या एक विजेता ब्रिटेन भारतीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकता पूरी करगा?

युद्ध खत्म हान के तत्काल बाद ही आर्थिक स्थिति पहल स भी खराब हो गया। पहल चीजों के दाम तेजी स बढ। फिर विदेशी वस्तुआ का आयात शुरू हुआ और बड़े पैमाने पर बाहरी पूजी लगायी जान लगी। आर्थिक गतिविधिया धीरे धीरे मद होने लगीं। भारतीय उद्योग को न केवल भारी क्षति उठानी पडी बल्कि कमी का भी सामना करना पडा।

राजनीतिक क्षेत्र म भी बडा मोहभग हुआ। युद्ध के दिना में एशिया आर अफ्रीका के सभी देशा म राष्ट्रीयता का बडा उद्दीपन मिला था। जनसमर्थन पाने के लिए ब्रिटेन अमेरिका फ्रास इटली आर जापान सभी ने यह कहा था कि युद्ध जनतत्र की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा था। सभी न वायदा किया था कि वे सभी देशा आर जनता के आत्मनिर्णय क अधिकार का समर्थन करेगे लेकिन युद्ध के बाद लगा कि वे उपनिवेशवाद की समाप्ति क लिए तयार नहीं है।

सन् 1919 की शांति संधि ने राष्ट्रपति विल्सन क 'चादह सूत्रा' और मित्र राष्ट्रों क युद्ध क उद्देश्यों को उजागर कर दिया। जर्मनीवासिया न भारत के क्रांतिकारी आन्दोलन का मदद देने की कोशिश की थी आर उनके प्रति कुछ दूर तक भारत म सहानुभूति थी। लगा कि वरासिलीज की संधि म प्रतिशोध क शासन की घोषणा ह। पराजित शक्तियों के उपनिवेशा का विभाजन मित्रों म वितरण मध्य यूरोपीय जनता के आत्मनिर्णय के अधिकार की अस्वीकृति क्षतिपूर्ति के लिए जर्मनी पर जबरन डाला गया बोझ आर अतत तुर्की साम्राज्य के साथ किये गये व्यवहार से भारतीय स्तंभित रह गये। युद्ध क दारान लॉयड जॉर्ज द्वारा किये गय वायदों के नाम पर मित्र राष्ट्रा ने ओटोमान (तुर्की) सामाज्य का खंडित कर देने का फेसला किया। मित्र राष्ट्रा क समर्थन से यूनानिया आर इटलीवाला न तुर्की म प्रवेश किया तो लगा कि व खिलाफत ओर तुर्की साम्राज्य के विनाश के उद्घोषक ह। खलीफा का मुसलमाना का एक बडा वर्ग अपना गुरु मानता था। उन्होंन महसूस किया कि खलीफा की हैसियत का किसी भी रूप में दुर्बल होना साम्राज्यवादी आधिपत्य में रहने वाले देशों क मुसलमानों की स्थिति पर बुरा असर डालेगा। परिणाम था खिलाफत आदोलन का जन्म।

जिस बीच होम रूल प्रदर्शन और खिलाफत आदोलन के शुरू हाने की वजह स भारत म सनसनी फैल रही थी उसी बीच नवबर 1917 में जारशाही रूस में क्राति हो गयी और बोलशेविकों ने दुनिया म पहले समाजवादी राज्य की स्थापना की। एक तरफ ता मित्र राष्ट्रा न जो कुछ उपदेश दिया था उसका उल्टा किया आर दूसरी तरफ रूस ने एकतरफा ढग स एशिया से अपन साम्राज्यवादी अधिकारा को छाड दने की घोषणा की। इसका बहुत अच्छा असर पडा। जारा के उपनिवेशा को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया। एशियाई राष्ट्रीयता वाला को सोवियत सघ मे समानता का दर्जा दिया गया। क्राति ने इस तथ्य का रखांकित कर दिया कि आम जनता म अपार बल आर शक्ति ह। उसने सफलतापूर्वक साम्राज्यवादी देशो

के हस्तक्षेप और गृहयुद्ध के तनावों का मुकाबला किया। इसने उपनिवेशों मे रहने वाली हर जगह की जनता म जान डाली। दूर दराज के गावों म रहने वाले लोगो ने युद्ध स लौट सैनिको से इसके बारे म सुना। भूमि को भूमिहीनो में बाटने के लेनिन के फैसले ने शिक्षित वर्ग को आदोलित किया। दिल्ली काग्रेस न न कवल भारत के लिए आत्मनिर्णय के अधिकार की बल्कि भारतीय जनता के अधिकारो की घोषणा किये जाने की माग की।

सिनफेन दल द्वारा आयरी सघ की घोषणा से अतिरिक्त उद्दीपन मिला। ब्रिटेन के विरुद्ध माइकेल कालिस के आयरी गुरिल्लो का दुस्साहसिक सघर्ष जारी था। उनके खिलाफ ब्रिटेन ने जो दमनकारी कदम उठाये थ उसने भारतीयों को रोलट विधयक की याद दिला दी। युद्ध के दौरान मिस्र में जागलुल पाशा के राष्ट्रवादी दल का व्यापक विकास हुआ था। सन् 1919 में जागलुल के देश निकाले के बाद भीषण विद्रोह हुआ जिसे ब्रितानी सेना ने अत्यत बर्बरता से दबा दिया। मार्च 1920 म मिस्र को स्वतत्र करने की घोषणा हुई। लगभग इसी समय तुर्की के मुस्तफा कमाल पाशा मित्र राष्ट्रो के कब्जे के विरुद्ध युद्ध करने और एक अस्थायी सरकार बनाने की कोशिश कर रहे थ। जब मित्र राष्ट्रो ने जापान को शातुग को कब्जे म रखने की अनुमति दे दी तो चीन में हिंसक आक्रोश पैदा हुआ। शातुग उस वक्त तक जर्मनी का अनुमादित भूखड था। 4 मई के आदोलन म (जिसमें बुद्धिजीवियो और छात्रो ने एक प्रमुख भूमिका निभाई थी) जापानी वस्तुओं के बहिष्कार का आयोजन हुआ। चीनियो ने वेरासिलीज की सधि पर हस्ताक्षर करने से इकार कर दिया।

एक ओर इन नयी शक्तियो ने नयी चुनौतियो के प्रादुर्भाव और जनता पर आधारित सघर्ष की शुरुआत को रेखांकित किया और दूसरी ओर सरकारी नीतियाँ लगडी सिद्ध हुई। माटेगु की 20 अगस्त, 1917 की घोषणा के बाद होम रूल के बदियो को रिहा किया गया। सेना म राजपत्रित पदो की भर्ती पर लगा रगभेद सबधी प्रतिबध समाप्त हुआ और भारतीय मामलो के मत्री स्वय भारत आये। माटेगु को नरमपथियो को शात करने म सफलता मिली लेकिन वह उग्रपथियो को वश म करने मे असफल रहे।

सुधार की वास्तविक योजना राष्ट्रवादियो की मागों की तुलना म अत्यत नगण्य थी। इसका मुख्य पक्ष द्वितंत्री सरकार—यानी राज्यो म एक तरह का दुहरा शासन था। शिक्षा और सफाई जैसे कम महत्व वाले विभागो की जिम्मेदारी प्रातीय विधानसभाओ द्वारा निर्वाचित सदस्यो में से चुने गये मंत्रियो को सौपी जाने वाली थी जबकि वित्त पुलिस और सामान्य प्रशासन जैसे महत्वपूर्ण विभाग कार्यकारी परिषद के सदस्यों के लिए आरक्षित कर दिये गये। तात्पर्य यह कि इन विभागो का नियत्रण नौकरशाहो के हाथ म था जो सिर्फ भारत की ब्रितानी सरकार और उसकी ससद के प्रति जिम्मेदार थे। गवर्नर का कार्यपालिका के दोनो विभागों का अध्यक्षता करनी थी लेकिन हमेशा एक साथ नहीं। मंत्रियो को अपने अपने विषयो म विधान परिषद के प्रति जिम्मेदार होना था लेकिन यह आवश्यक नही था कि गवर्नर उनकी सलाह माने ही। केंद्रीय सरकार का चरित्र सिवाय इसके कि गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद म एक भारतीय

को शामिल कर लिया गया पहले जैसा बना रहा। वह पहले की तरह संसद के प्रति जिम्मेदार रही। केंद्र में दो सदनों की विधायिका होनी थी। निचले सदन में निर्वाचित सदस्यों का और अवर सदन में सरकारी बहुमत होना था। प्रांतीय विधानमंडलों का विस्तार किया गया और व्यापक मतदान के आधार पर निर्वाचित बहुमत की माग स्वीकार कर ली गयी। प्रांतों के कुछ वित्तीय और वैधानिक अधिकारों का हस्तान्तरण होने वाला था। बहरहाल रहे सहे अधिकार भारत सरकार ने अपने पास रखे। पंजाब में सिखों के लिए अलग निर्वाचन मंडल की व्यवस्था हुई।

सुधारों का सबसे निराशाजनक पहलू यह था कि उनकी व्यवस्था के अंतर्गत विधानमंडल का गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारी परिषद पर न कोई नियंत्रण था न ही उनके बारे में बोलने का अधिकार। इसके साथ साथ केंद्रीय सरकार को प्रांतों पर नियंत्रण रखने के सभी अधिकार प्राप्त थे। इन सबके अतिरिक्त मतदान भी इतना प्रतिबंधित था कि उसे मुश्किल से जनतांत्रिक कहा जा सकता था। प्रमाण के लिए सन् 1920 में निचले सदन के मतदाताओं की संख्या केवल 9 09 874 थी और अवर सदन की 17 364।

रपट का प्रकाशन (8 जुलाई 1918) नरमपंथियों और उग्रपंथियों के बीच में संघर्ष का संकेत था नरमपंथियों ने उसका स्वागत किया लेकिन तिलक ने उसे बिल्कुल अस्वीकारणीय घोषित किया। अगस्त 1918 में बंबई कांग्रेस की एक विशेष बैठक में उसे निराशापूर्ण और असंतोषजनक कह कर प्रांतों के लिए लगभग पूर्ण स्वायत्तता केंद्रीय सरकार को कुछ जिम्मेदारियां देने और भारतवर्ष की वित्तीय स्वतन्त्रता की माग की गयी। नरमपंथियों की संख्या इस वक्त तक काफी कम हो गयी थी और नवंबर 1918 तक आते आते उन्होंने अधिवेशन में शामिल होने से इन्कार करके अलग बैठक करने का निश्चय किया। दूसरे वर्ष उन्होंने अपना एक अलग संगठन बनाया। नाम था नेशनल लिबरल फेडरेशन—राष्ट्रीय नरमपंथी संघ। अध्यक्ष हुए सुरेंद्रनाथ बेनर्जी। लेकिन अब वे देश की एक राजनतिक शक्ति नहीं रह गये थे।

सुधारों को लेकर गांधीजी की आरंभिक प्रतिक्रिया अनुकूल थी। लेकिन रियायत और दमन की नीति का अनुसरण करने वाली सरकार ने इसी वक्त राष्ट्रवादियों के सामने दमनकारी कानून का एक कड़वा घूंट पेश करके घातक भूल कर दी। सन् 1905 और 1918 के बीच की क्रांतिकारी गतिविधियों की जांच के लिए रोलट समिति ने कुछ ऐसे निश्चित अधिकारों के लिए सिफारिश की थी जिनकी मदद से बिना मुकदमे की सुनवाई के स्वेच्छिक गिरफ्तारी नजरबंदी और सरकार विरोधी गतिविधियों के सन्देह में किसी के आने जाने पर प्रतिबंध लगाया जा सके। न्यायाधीशों को अधिकार दिया गया कि वे राजनैतिक मुकदमों की सुनवाई बिना जूरी के करें। उनके फैसले पर अपील संभव नहीं थी। ऐसे कागजातों का रखना भी दंडनीय अपराध हो गया जिनमें सरकार के विरुद्ध आरोप लगाये गये हों। प्रस्तावों ने गांधीजी की आंख खोल दीं। उन्होंने कहा 'वे नागरिक सेवा के आघात करने वाले साधन हैं हमारे गले पर अपनी गिरफ्त को मजबूत बनाये रखने के लिए। मेरे विचार से विधेयक हमारे लिए एक खुली

गांधीजी का उदय

महात्मा गांधी का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निर्विवाद नेता के रूप में प्रादुर्भाव अपने आप में एक दिलचस्प कहानी है। भारतीयों के लिए दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जो संघर्ष किया वह सर्वविदित है। सत्याग्रह के उनके अनूठे तरीके के अच्छे परिणाम निकले थे। कांग्रेस के दिग्गजों ने उनके चरित्र और संगठन क्षमता के बारे में ऊंची धारणा बनायी थी। सन् 1915 तक, यानी जब तक वह भारत नहीं आये थे, उन्होंने कांग्रेसी क्षेत्र में आगे बढ़ कर कोई काम नहीं किया था और जनता के लिए अजनबी थे। जवाहरलाल नेहरू जैसे युवकों की दृष्टि में वह अपरिचित भिन्न और अराजनतिक लगते थे।'

लेकिन यह अपरिचय एक वरदान था। उन्हें लेकर लोग भ्रम के शिकार इसलिए नहीं हुए कि वह नरमपंथी थे और कुछ दूर तक उग्रपंथी भी। उनकी संयमित आदतें साधुवत सम्मोहन अंग्रेजी की अपेक्षा भारतीय भाषाओं का प्रयोग और धार्मिक प्रवचन—इन सबका जनता पर असर पड़ा और उसने उन्हें अपने हृदय में बठा लिया। गांधीजी ने अपनी जड़ें भारतीय जमीन में मजबूती के साथ गहराई और उसी से उन्होंने अपार शक्ति का संचय किया।

दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष के दौरान उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन के दर्शन का विकास किया था। इसके दो प्रमुख तत्व थे—सत्य और अहिंसा की परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा कि वह आत्मा की शक्ति या प्यार की शक्ति है जो सत्य और अहिंसा से जन्मी है। एक सत्याग्रही हर उस चीज के सामने झुकने से इंकार करेगा जो उसकी दृष्टि में गलत होगी। वह सारी उत्तेजनाओं के बीच शांत रहेगा। वह पाप का विरोध करेगा लेकिन पापी से घृणा नहीं करेगा। वह सत्य का प्रतिपादन करेगा लेकिन विरोधी को आघात पहुंचाकर नहीं वरन् स्वयं को पीड़ित करके। उन्हें उम्मीद थी कि ऐसा करके वह पापी की अंतरात्मा को जगायेगा। सफलता के लिए आवश्यक है कि सत्याग्रही भय, घृणा और असत्य से पूरे तौर पर मुक्त रहे। सविनय अवज्ञाकारियों से वह सहमत नहीं थे क्योंकि उन्होंने हिंसा का परित्याग किसी आवश्यकता के कारण नहीं बल्कि एक सिद्धांत के लिए किया था। उन्होंने कहा सविनय अवज्ञा कमजोरों का हथियार है जबकि सत्याग्रह बलवानों का।

स्वदेशी उनका संकेत शब्द था। उन्होंने उसकी परिभाषा करते हुए कहा था कि 'स्वदेशी वह भावना है जो हम दूर की चीजों को छोड़कर अपने आसपास की चीजों के इस्तेमाल और सेवा तक सीमित करता है' अतः उन्होंने शारीरिक श्रम पर बल दिया जिसे उन्होंने रोटी के लिए मेहनत और चरखा कहा।

सत्याग्रह यदि अफ्रीका में सफल था तो क्यों नहीं उसकी आजमाइश भारत में की जाये? उन्होंने कहा मुझे कोई संदेह नहीं कि ब्रितानी सरकार एक शक्तिशाली सरकार है। लेकिन मुझे इसमें भी संदेह नहीं है कि सत्याग्रह सर्वोच्च दवा है। उन्होंने उसका प्रयोग बिहार के चंपारण और गुजरात के अहमदाबाद और काहिरा में किया।

जबकि दूसरे राजनीतिज्ञ सुधारों पर बहस कर रहे थे, गांधीजी ने चंपारण (बिहार) के किसानों की पुकार सुनी और उनकी सहायता के लिए उठ खड़े हुए। तिनकठिया प्रणाली के अंतर्गत किसानों को अपनी जमीन के पंद्रह प्रतिशत क्षेत्र पर नील उगाने और उसे अंग्रेज बागवानों को उन्हीं द्वारा निश्चित कीमत पर बेचने की कानूनी विवशता थी। बागवान उनसे गैरकानूनी वसूली कर सकते थे और उनका दमन कर सकते थे। गांधीजी ने जेल की धमकियों के बावजूद किसानों की शिकायतों की विधिपूर्वक जांच की। उन्होंने वर्षों से पीड़ित किसानों की ऐसी अकाट्य गवाहियां पेश कीं कि सरकार को विवश होकर एक जांच आयोग की नियुक्ति करनी पड़ी। वह उसके एक सदस्य थे। नतीजा उस प्रणाली की समाप्ति से भी अधिक बड़ा निकला। शताब्दियों से निष्क्रियता में सोते हुए गांवों को जगा दिया गया था। राजेन्द्र प्रसाद, मजहरुलहक, महादेव देसाई और जे. बी. कृपलानी सरीखे युवक राष्ट्रवादियों ने चंपारण में उनके साथ काम किया था और न केवल उनके आदर्शवाद से वरन् उनके राजनैतिक गतिविधियां चलाने के गतिशील, निर्भय, वास्तविक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रभावित हुए थे।

ऐसा ही एक अवसर गुजरात जिले में काहिरा नामक स्थान पर मिला। सन् 1918 में उस जिले में फसलें नष्ट हो गयी थीं लेकिन अधिकारियों ने लगान की पूरी वसूली करने की जिद पकड़ी। गांधीजी ने किसानों को सत्याग्रह करने के लिए संगठित किया। उन्होंने लगान देने से इंकार कर दिया। वे कोई भी परिणाम भुगतने को तैयार थे। यहां तक कि जो लोग लगान अदा कर सकते थे उन्होंने भी सिद्धांत के नाम पर सख्ती और कुर्की की सारी धमकियों के बावजूद उसका भुगतान करने से इंकार कर दिया। सरकार अंततः झुकने और किसानों से समझौता करने को विवश हुई। इस आंदोलन के दौर में इंदुलाल याज्ञिक गांधीजी के मुख्य नायब थे। अहमदाबाद के एक सफल और मनस्वी बैरिस्टर सरदार वल्लभभाई पटेल काहिरा के सत्याग्रह की सफलता से इतने प्रभावित हुए कि वह गांधीजी के एक अत्यंत प्रमुख और प्रभावशाली अनुयायी बन गये।

सन् 1918 में अहमदाबाद के मिल मजदूरों की ओर उनका ध्यान गया। उन्होंने उन मिल मालिकों के खिलाफ मजदूरों की हड़ताल का नेतृत्व किया जिन्होंने अधिक मजदूरी देने से इंकार कर दिया। मजदूरों का मनोबल पुनः जाग उठा। उपवास ने सारे देश का ध्यान इस तरह आकर्षित किया कि अहमदाबाद के मजदूर दृढ़ता के साथ संगठित हो गये। परिणाम के डर से घबराकर मिल मालिकों ने उपवास के चौथे ही दिन मांगें स्वीकार कर लीं और मजदूरी में 35 प्रतिशत की वृद्धि करने को राजी हो गये।

सत्याग्रह के इन आरंभिक प्रयोगों ने गांधीजी को आम जनता के अत्यंत निकट ला दिया। उसमें ग्रामीण क्षेत्रों के किसान भी थे और शहरी क्षेत्र के मजदूर भी। राष्ट्रीय आंदोलन को यह गांधीजी की एक महान देन थी। नेताओं में आर्थिक अंतर्दृष्टि थी। उन्होंने बड़ी मेहनत के साथ जनता की गरीबी और दुर्दशा के आंकड़े एकत्रित किये थे। उन्हें विश्वसनीय बनाया था। उसके लिए उन्होंने जो तर्क प्रस्तुत किये उनका कोई उत्तर नहीं था। लेकिन इस सबके बावजूद कुल

मिलाकर राष्ट्रीय आंदोलन शहरों के निम्न और मध्य वर्ग तथा शिक्षित लोगों का विषय था। सक्रिय नेतृत्व उन्हीं से निर्मित हुआ था यद्यपि उन्होंने जनता के मसलों की वकालत की। गांधीजी के आने के साथ साथ जनता सहसा आंदोलन की सक्रिय भागीदार बन गयी। यह भी कि संभवतया गांधीजी ही एकमात्र नेता थे जिनका व्यक्तित्व ग्रामीण जनता के साथ पूरे तौर पर एकाकार हो गया था। उन्होंने अपने निजी जीवन को जिस ढर्रे पर चलाया उससे ग्रामीण परिचित थे। उन्होंने उस भाषा का प्रयोग किया जिसे वे आसानी से समझ सकते थे। समय के साथ साथ वह ग्रामीण भारत में बहुत बड़ी संख्या में रहने वाले भारतीयों के गरीब और पददलित वर्ग के प्रतीक बन गये। इस अर्थ में वह भारत के ऐसे सच्चे प्रतिनिधि थे।

हिंदू-मुस्लिम एकता, छुआछूत का निवारण और स्त्रियों की मर्यादा का उत्थान तीन ऐसे मसले थे जिनमें गांधीजी की बहुत गहरी रुचि थी। उन्होंने तथाकथित अस्पृश्यों को हरिजन रूप में संबोधित किया। अपने 'सपनों के भारत' के बारे में उन्होंने एक बार लिखा

> मैं एक ऐसे भारत के लिए काम करूंगा जिसमें गरीब से गरीब लोग यह महसूस करेंगे कि यह देश उनका है कि उसके निर्माण में उनकी आवाज भी प्रभावकारी है। ऐसा भारत जिसमें ऊंची और नीची जाति के लोग नहीं होंगे। उसमें सभी संप्रदायों के लोग पूर्ण सामंजस्य के साथ रहेंगे। ऐसे भारत में छुआछूत के अभिशाप की गुंजाइश नहीं होगी स्त्रियां भी पुरुषों के समान अधिकार का उपयोग करेंगी। यही है मेरे सपनों का भारत।

जब रोलट विधेयक पारित हो गया तो एकमत से हुए भारतीय विरोध के बावजूद गांधीजी के धैर्य का बांध टूट गया। उन्होंने फैसला किया कि वह सत्याग्रह के जरिये उसका विरोध करने की कोशिश करेंगे। इस बार के आंदोलन का स्वरूप स्थानीय नहीं होने वाला था। लक्ष्य सीमित नहीं थे। उन्होंने उन दमनकारी कानूनों की अवज्ञा करने के लिए संकल्प के साथ सत्याग्रह सभा शुरू की। सारे देश में 6 अप्रैल 1919 का आम हड़ताल का आह्वान किया गया। इसके बाद नागरिक अवज्ञा शुरू होने वाली थी। हड़ताल को अभूतपूर्व सफलता मिली लेकिन दिल्ली की एक भीड़ पर पुलिस द्वारा गोली चलाने के कारण बहुत से लोगों की जानें गयीं। उनमें हिंदू और मुसलमान दोनों थे। जब दिल्ली आते हुए गांधीजी को रास्ते में ही रोक दिया गया और फिर उन्हें जबरदस्ती बंबई वापस भेज दिया गया तो पुलिस ने एक बार फिर एकत्रित भीड़ के साथ वैसा ही बर्ताव किया। बहुत सी जगहों पर दंगे भड़क उठे।

और फिर 13 अप्रैल को जलियांवाला बाग की दुखद दुर्घटना घटी। पंजाब के लोग युद्ध के कर्ज और गवर्नर ओ' डायर के सिपाही भरती करने के बर्बर तरीके से उत्तेजित थे। मुसलमानों पर खिलाफत के प्रचार का गहरा असर पड़ा था। अनावश्यक घबराहट में सरकार ने डाक्टर सत्यपाल और डाक्टर सफुद्दीन किचलू जैसे मुख्य नेताओं को गिरफ्तार करने का आदेश दिया। परिणाम था अमृतसर का जन आक्रोश, जहां पुलिस के गोली चलाने के बाद कुछ अधिकारियों

की हत्या कर दी गयी और दो अंग्रेज औरतें बुरी तरह घायल हो गयीं। जब दूसरे दिन जलियांवाला बाग में जनता अभूतपूर्व एकत्रित हुई तो जनरल डायर ने सारे पंजाब में आतंक फैलाने की इच्छा से बिना किसी चेतावनी के अपने सैनिकों को पार्क में एकत्रित निहत्था भीड़ पर गोली चलाने का आदेश दे दिया जहां से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था। सारा गोला-बारूद खत्म होने के बाद जब डायर वापस हुआ तो घटनास्थल पर 1 000 मृत पड़े थे और कई हजार घायल। अमृतसर के जनसंहार को मांटेगु तक ने निवारक हत्या कहा था। उसके बाद एक क्रम में मानमर्दन करने वाले आदेश जारी किये गये। हफ्तों कर्फ्यू लागू रहा। लोगों को सार्वजनिक ढंग से कोड़े लगाये गये। उन्हें उस जगह तक रेंग कर पहुंचने को मजबूर किया गया जहां पर दो अंग्रेज स्त्रियों पर आक्रमण हुआ था। हाजिरी देने के लिए छात्रों को प्रतिदिन 16 मील पैदल चलकर पहुंचना होता था। गिरफ्तार व्यक्तियों को कोठरी में नजरबंद कर दिया गया। बंधक के रूप में व्यक्तियों को पकड़ लिया गया संपत्ति जब्त या नष्ट कर दी गयी और हिंदू-मुसलमान की एक एक कलाई जोड़ कर इकट्ठा हथकड़ी लगायी गयी ताकि उनको एकता का मजा चखाया जा सके। सैनिक कानून की घोषणा की गयी। रवींद्रनाथ टैगोर ने ब्रिटिश सरकार से प्राप्त विशेष सम्मान (नाइटहुड) का परित्याग करते हुए घोषणा की

> ऐसा समय आ गया है जब सम्मान के मिले बिल्ले ने मानमर्दन के भाड़े संदर्भ में हमारी शर्म को उघाड़कर रख दिया है। जहां तक मेरा सवाल है मैं उन सभी विशिष्टताओं का परित्याग करके अपने उन देशवासियों के साथ खड़ा हूं जिन्हें तुच्छ समझ कर ऐसे अपमानों द्वारा पीड़ित किया गया है जो मनुष्य के लिए नहीं है।

पंजाब की दुर्घटना ने गांधीजी को भारतीय राजनीति के दरवाजे पर खड़ा कर दिया। सरकार द्वारा हंटर की अध्यक्षता में नियुक्त सरकारी समिति का कांग्रेस ने बहिष्कार किया। अब तक के बहुत से नरमपंथी राष्ट्रवादियों ने भी गांधीवादी शक्तियों के साथ कंधे से कंधा मिला लिया।

सन् 1919 में अमृतसर में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में देश की मनस्थिति की झलक मिली। चित्तरंजन दास मांटफोर्ड सुधारों को स्वीकार करने के विरुद्ध थे लेकिन तिलक चाहते थे कि अनुक्रियात्मक सहयोग दिया जाये। अंततः एक समझौता हुआ और कांग्रेस इस बात के लिए तैयार हो गयी कि सुधारों को इस तरह लागू किया जाये ताकि एक पूर्णतया जिम्मेदार यानी लोकप्रिय सरकार की शीघ्र स्थापना हो सके लेकिन चित्तरंजन दास ने अपना रुख स्पष्ट कर दिया। वह ऐसे किसी अड़ंग सीधे साधे अड़ंगे के विरोधी नहीं थे जो राजनैतिक उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक हो।

इस सारे वक्त में गांधीजी धीरे धीरे उस खिलाफत आंदोलन में खींचे जा रहे थे जिसने मंच से उन्हें शीघ्र ही सरकार से असहयोग करने की घोषणा करनी थी। जब वह दक्षिण अफ्रीका में थे तभी से उनके मन में हिंदू-मुस्लिम एकता को लेकर दिलचस्पी पैदा हो गयी थी। उनके अनुसार लखनऊ समझौते ने एकता का कोई पर्याप्त आधार नहीं बनाया था। उन्होंने अलीबंधुओं

से सपर्क स्थापित किया था और मानते थे कि खिलाफत की माग न्यायोचित थी। उन्होंने उनकी गिरफ्तारी का विरोध किया। तुर्की साम्राज्य को खडित कर देन से वरसिलीज की सधि ने आन्दोलन की धार को अब तेज कर दिया। अपने बचे हुए राज्य में सुलतान को वास्तविक अधिकार से वंचित कर दिया गया। भारत के मुसलमानो ने ब्रिटेन को तुर्की सबधी नीति मे परिवर्तन के लिए विवश करने का फैसला किया। मौलाना आजाद, हकीम अजमल खा और हसरत मोहानी के नेतृत्व मे एक खिलाफत समिति गठित की गयी। गाधीजी उसकी सहायता करने को इच्छुक थे। उनके लिए 'खिलाफत आदोलन हिंदुओ और मुसलमानो को एकता मे बाधने का एक ऐसा सुअवसर था जो सैकडो वर्षो में नहा आयेगा।' गाधीजी ने मन के इस मिलन को बहुत आसान समझा था। उन्होंने यग इडिया मे लिखा, 'यदि उनका मसला मुझे न्यायोचित लगता है तो मेरा यह फर्ज है कि मै उनकी मुसीबत की घडिया मे भरसक मदद करू।' नवबर 1919 मे गाधीजी खिलाफत सम्मेलन के अध्यक्ष चुन गये। सम्मेलन मे मुसलमानो से कहा कि वे मित्र राष्ट्रो की विजय के उपलक्ष्य मे आयोजित सार्वजनिक उत्सवो मे भाग न लें। धमकी दी कि यदि ब्रिटेन ने तुर्की के साथ न्याय नही किया तो बहिष्कार और असहयोग शुरू होगा। आजाद, अकरम खा और फजलुलहक ने खिलाफत और हिंदू-मुस्लिम एकता के समर्थन में बगाल का दौरा किया। देवबद स्कूल के मौलाना और लखनऊ के उलेमाओ ने उत्तर भारत में यही काम किया। अमृतसर काग्रेस और मुस्लिम लीग ने आदोलन का समर्थन किया। सन् 1920 के प्रारभ मे हिंदुओ और मुसलमानो का एक सयुक्त प्रतिनिधिमडल वायसराय से मिला जिन्होंने स्पष्ट रूप में कह दिया कि ऐसी उम्मीद छोड देनी चाहिए। एक प्रतिनिधिमडल उसके बाद इग्लैड गया। लेकिन प्रधानमत्री लॉयड जॉर्ज ने संक्षिप्त और रूखा उत्तर दिया कि पराजित ईसाई शक्तियों के साथ किये जाने वाले बर्ताव से भिन्न बर्ताव तुर्की के साथ नही किया जायेगा। सेवरस की सधि की शर्तो का पता मई के मध्य तक चल गया। कास्टेंटिनपोल तुर्की के पास रह गया लेकिन उसके क्षेत्रफल और जनसख्या मे भारी कटौती हो गयी। गाधीजी ने सत्याग्रह आदोलन करने का फैसला किया। असहयोग का यह कार्यक्रम पहली अगस्त को शुरू किया गया।

इसकी सफलता के लिए काग्रेस का सहयोग अनिवार्य था। लेकिन गाधीजी को अतत आदोलन मे कूदने के लिए राजी करने मे काग्रेस को एडी चोटी का पसीना एक करना पडा। गाधीजी की अपील ने नरमपथी और उग्रपथी दोनो ही वर्गों के नेताओं-कार्यकर्ताओ को आकर्षित किया था क्योंकि उन्होने बडी चतुराई के साथ नरमपथियो के साम्राज्य के अतर्गत स्वराज को उग्रपथियो के असहयोग के माध्यम से प्राप्त करने के लक्ष्य से मिला दिया था। यहा तक कि क्रातिकारी आतकवादियो ने भी उन्हे एक अवसर देना चाहा। गुजरात और बिहार की काग्रेस समितिया इसे स्वीकृति दे ही चुकी थी।

अगस्त 1920 में तिलक के स्वर्गवास के बाद एक सर्वाधिक शकालु आलोचक क्षेत्र से हट गया। चितरजन दास के मन मे कुछ आपत्तिया थी लेकिन गाधीजी की त्याग और बलिदान की बात ने उनकी भावना को तेजी से प्रभावित किया। जब गाधीजी ने विधान परिषदों का

बहिष्कार करने का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने चुनौती देते हुए कहा "ये सुधार ब्रिटानी सरकार के उपहार नहीं है। सुधार ब्रिटानी सरकार के हाथों को एठ कर निकाल लिये गये हैं। मैं परिषद को स्वराज की प्राप्ति का एक अस्त्र बनाना चाहता हूँ। आपके हाथों के कोटर में जो हथियार है उसका इस्तेमाल करके पूर्ण स्वराज लाना चाहता हूँ।" वह परिषद में दाखिल होंगे लेकिन मदद करने के लिए नहीं बल्कि तंग करने के लिए। यह भीतर से असहयोग करने का एक रूप था। लाजपतराय स्कूलों का बहिष्कार करने के विरोधी थे। लेकिन मोतीलाल नेहरू ने गांधीजी के पक्ष में पलडे को भारी कर दिया। एक दूसरा समझौता किया गया। स्कूलों और अदालतों का बहिष्कार धीरे धीरे किया जाने वाला था। लेकिन चुनाव के उम्मीदवारों को अपने नाम वापस लेना और मतदाताओं को मत देने से इंकार कर देना था। इस बार के लक्ष्यों में भी स्वराज शामिल था। अंतिम निर्णय नागपुर कांग्रेस को करना था।

इस प्रकार नये सुधारों के अंतर्गत पहले चुनाव में कांग्रेस को आंदोलन करने से रोक दिया गया। नागपुर में श्री दास ने इस मुद्दे को खत्म मान लिया। जलियांवाला बाग की दुर्घटना के वक्त वे पंजाब के गवर्नर ओ' डायर को दी गयी क्षमा और ब्रिटानी सरकार द्वारा पूर्णतया जिम्मेदार सरकार की माग को अस्वीकृत कर दिये जाने से गांधीजी के सुझावों को और बल मिला। श्री दास ने अनुभव किया कि वह अपने साथ बंगाली गुट को भी ले जा पाने में सफल नहीं होंगे। मुहम्मद अली ने समझौते का एक रास्ता दिखाया। श्री दास ने असहयोग का वह प्रस्ताव रखा जिसमें स्वेच्छा से सरकार से सारे संबंध तोड़ लेने और करों की अदायगी न करने की उस समस्त योजना की घोषणा की गयी थी जिसे अमल में लाने के समय का फैसला कांग्रेस को करना था। कार्यालय में परिषदों से त्यागपत्र देने, वकालत के परित्याग, शिक्षा के राष्ट्रीयकरण, आर्थिक बहिष्कार, राष्ट्रीय सेवा के लिए कार्यकर्ताओं के संगठन, एक राष्ट्रीय कोष की स्थापना और हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए कदम उठाने के सुझाव थे। मालवीय जी और जिन्ना ने स्वराज के उद्देश्य का विरोध इस आधार पर किया कि उसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि साम्राज्य से कोई संबंध बनाये रखा जायेगा या नहीं। लेकिन अगले वर्ष में युद्धोन्मुख कार्यक्रम चलाने के गांधीजी के वायदे की जीत हुई। उनके विरुद्ध केवल दो मत पड़े थे।

नागपुर अधिवेशन ने कांग्रेस संगठन को एक नया संविधान देकर उसके ढांचे को इंकलाबी बना दिया। कांग्रेस को एक ठोस और प्रभावकारी राजनतिक संगठन में बदल दिया गया जिसमें 15 सदस्यों की एक कार्यकारिणी समिति, 350 सदस्यों की एक अखिल भारतीय समिति और ऐसी प्रांतीय समितियों की व्यवस्था हुई जिनका संबंध जिलों से लेकर कस्बों, तहसीलों और गांवों तक हो गया। कार्यकारिणी समिति को ऐसा स्थायी आकार दिया जाना था जिसे बारहों महीने सक्रिय रहना था। आमतौर पर उसके फैसले सर्वसम्मत होते थे। बड़े महत्व के विषयों पर अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को विचार विमर्श करना था। इस समिति को कार्यकारिणी के फैसलों की समीक्षा करने और उसके निर्णयों को बदल देने तक के अधिकार थे। प्रांतीय समितियों का पुनर्गठन भाषाई आधार पर हुआ था। ये समितियां हर प्रदेश के लिए अलग अलग

थीं। पाच या उससे अधिक काग्रेस सदस्या वाले गाव में एक इकाई की स्थापना की व्यवस्था हुई। इसी क्रम में गाव के ऊपर क्षेत्र, तहसील और फिर जिले के लिए भी इकाइया बनती थीं। काग्रेस के वार्षिक अधिवेशना म शामिल होने वाले प्रतिनिधियों का चुनाव सदस्यता के आधार पर किया जाना था यानी 50 हजार सदस्या पर एक प्रतिनिधि। इस व्यवस्था से काग्रेस अत्यधिक प्रतिनिधि संस्था बन गयी। क्योंकि सदस्यता का वार्षिक चदा केवल 25 पैसा (पुराना चार आना) था अत इसके सदस्यों की सख्या में दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि हुई। हालाँकि यह सदस्यता भी आवश्यक नहीं थी। सदस्यता के लिए काग्रेस के लक्ष्या और सिद्धाता की स्वीकृति पर्याप्त थी। इसकी वजह से दल भारत के लाखों लाख गरीब लोगा तक पहुच गया। आयु सीमा को घटाकर 18 वर्ष कर देने के बाद इसमे ओर तरुणाई आ गयी। मुसलमानों ओर स्त्रिया द्वारा काग्रेस की सदस्यता ग्रहण करने के बाद उनकी सख्या म स्पष्ट वृद्धि हो गयी। सन् 1923 तक ग्रामीण सदस्यो की सख्या शहरी क्षेत्रो के सदस्यों की सख्या से दुगुनी हो गयी। आधारभूत परिवर्तन न केवल दल की सामाजिक नाव बल्कि उसके दृष्टिकोण और नीतियों में किया गया। सदस्यता अब केवल एक निष्क्रिय काम न होकर एक जीवत प्रतिबद्धता बन गयी थी ओर उसके लिए त्याग की आवश्यकता थी। काग्रेस राजनतिक समाजीकरण का एक अस्त्र बन गयी। इसने खादी छुआछूत निवारण मद्यनिषेध और राष्ट्रीय शिक्षा के काम हाथ म लिये। हिंदी ओर अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग ने शिक्षिता और आम जनता के बीच की दीवार को तोड दिया। एक **तिलक स्वराज कोष** की स्थापना हुई जिसमें 6 महीनों के भीतर एक करोड से अधिक रुपये इकट्ठा हो गय। इसके कारण सगठन वित्तीय मामलों म निश्चित हो गया। इस प्रकार जनसमर्थन की नींव पर खडे एक धर्मनिरपेक्ष दल ने गाधीजी के नेतृत्व मे एक अद्भुत अस्त्र से साम्राज्यवादियों से सघर्ष करने का फसला किया। काग्रेस के सभी उम्मीदवारो द्वारा चुनावो से अपने नाम वापस ले लेने के बाद वकीला से अदालतों का और जनता से शिक्षण संस्थाओं विदेशी कपड़ो और शराब की दूकानों का बहिष्कार करने पर जोर दिया गया। श्री दास ने कहा शिक्षा प्रतीक्षा कर सकती है स्वराज नहीं। बहुत बडी सख्या म छात्रो ने अपने स्कूल-कालेज छोड दिये शिक्षको ने त्यागपत्र दे दिये। जामिया मिलिया इस्लामिया ओर काशी विहार ओर गुजरात विद्यापीठ जैसे राष्ट्रीय शिक्षण सस्थानो की स्थापना हुई। आचार्य नरेंद्रदेव राजेंद्र प्रसाद, डा जाकिर हुसैन और सुभाषचद्र बोस ने इन राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में प्राध्यापन का कार्य किया। 30 सितबर 1921 तक विदेशी कपडा के पूर्ण बहिष्कार का काम पूरा कर दिया जाना था। शताब्दी के पहले दशक म स्वदेशी आन्दोलन के दौरान के घरानो ओर सार्वजनिक स्थाना पर विदेशी वस्तुओं की होली जलाने की घटनाओं की पुनरावृत्ति होनी थी। छात्र समुदाय को राष्ट्रीय स्वयमेवकों के रूप म सगठित किया गया। उन्होंने राष्ट्रीय मसले के प्रचार दान की रकम का एकत्रण, अग्रेजो का साथ देने वालों के विरुद्ध प्रदर्शन पचनिर्णय वाली अदालतों का सचालन और विदेशी वस्तुए बेचने वाली दूकानो के सामने धरना देने के काम किये।

सारे देश मे उत्साह की एक अभूतपूर्व लहर दोड गयी। छोटे और बडे, स्त्री और पुरुष

हिंदू और मुसलमान सहभागी उत्साह से खिलाफत आंदोलन से भी एक तरह से प्रभावित हुए। औरतों ने परदे से बाहर निकलकर बहुत बड़ी संख्या में सभा में हिस्सा लिया। उन्होंने विदेशी काम में अपना योगदान दे दिया। हमारा हुआ जाल फैला गया।

खिलाफत समिति ने मुसलमानों से कहा कि वे फौज में भर्ती न हों। इसके लिए अली बंधुओं को गिरफ्तार कर लिया गया। कांग्रेस ने सारे भारतीयों से अपील किया कि वे किसी भी रूप में सरकार की सेवा न करें। जैसे-जैसे ये बढ़ते गए, बड़े शहरों में मजदूर कारखानों व बागानों और शहरों के गरीब आंदोलन में शामिल होते गए। न केवल असहयोग नीति के कारण बल्कि बागानों में कुछ बड़ी हड़तालें हुईं।

ग्रामीण क्षेत्रों में नया उभार और नयी चेतना भर गयी थी। कानून के रूप या भुगतान न करने के आह्वान ने शोषित किसानों के दिल पर जोरदार असर डाला। मिदनापुर के किसानों ने यूनियन बोर्ड का कर देने से इनकार कर दिया। बंगाल में पहला बड़ा किसान संगठन की स्थापना हुई। गुंटूर के दुग्गिराला गोपाल कृष्णय्या ने जिस आंदोलन का नेतृत्व किया था उसे बड़ा माना था। नगरपालिका को कर चुकाने के आदेश की अवहेलना करते हुए चिराला के सारे लोग एक नयी बस्ती बसाने के लिए (चिराला से) बाहर निकल आए। पेद्दानंदीपाडु में एक लगानबंदी समिति गठित हुई। पेदनंदिपाडु के सभी ग्राम अधिकारियों ने त्यागपत्र दे दिया। 95 प्रतिशत लगानदाताओं ने कर देने से इनकार कर दिया। गुंटूर, कृष्णा और गोदावरी जिला में कर न अदा करने का फैसला किया गया। पालनाड में घास पर कर देने से इनकार किया जाने लगा था। आंध्र प्रदेश कांग्रेस समिति ने इन कदमों का समर्थन किया। अहमदाबाद कांग्रेस ने कहा कि यदि ग्रामीण अहिंसा और हिंदू-मुस्लिम एकता आदि के अन्य उद्देश्यों की पूर्ति हो रही है तो वह आंदोलन को स्वीकृति देती है। गुंटूर ने टैक्स के इस्तीफा लेने की गांधीजी की शर्त भी पूरी कर दी। उत्तर प्रदेश में रायबरेली और प्रतापगढ़ के काश्तकारों ने गैरकानूनी महसूल देने से इनकार कर दिया। स्वाभाविक था कि जमींदारों और पुलिस से उनका संघर्ष होता। अदालतों पर धावा बोलने और गिरफ्तार व्यक्तियों को छुड़ाने के प्रयत्न हुए। जवाहरलाल नेहरू ने इसी समय के आसपास राष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश किया था और वे इन घटनाओं से बहुत प्रभावित हुए। कुछ प्रमुख कारखानों में हड़ताल हुई। बिहार में छोटा नागपुर के आदिवासियों ने तानाभगत आंदोलन द्वारा चौकीदारी कर और लगान की अदायगी न करने की धमकी दी। उड़ीसा में कणिका राज्य के किसानों ने लगान की अदायगी करने से इनकार कर दिया। पंजाब में गुरुद्वारों की व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए अकाली आंदोलन चला। पवित्र मंदिरों पर कब्जा राजनैतिक स्वतंत्रता की दिशा में पहला कदम माना जाता था। मलाबार में मापिलों ने स्थानीय जमींदारों और साहूकारों के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया लेकिन वह दुर्भाग्यवश साम्प्रदायिकता के रंग में रंग गया। वास्तव में उस वक्त अचानक यह अनुभव हुआ कि भारत के गांवों में शक्ति के अपार भंडार पड़े हैं और यदि उनका उचित ढंग से इस्तेमाल किया जाये तो शक्तिशाली राज को उलट दिया जा सकता है। सचमुच सरकार विदेशी वस्तुओं की बिक्री रुक जाने या

शराब की बिक्री कम हो जाने से नहीं घबराई थी। उसे परेशानी सिर्फ इस तथ्य स हुई कि सारे देश में एक जनव्यापी चेतना पैदा हो गयी थी।

आन्दोलन का वल्स के राजकुमार के आगमन के बहिष्कार म असाधारण सफलता मिली। बबई में हडताल हुई आर समुद्र तट पर एक सभा का गयी जिसमें गाधीजी न विदेशी कपडा की होली जलाई। लेकिन भीड अनुशासनहीन हो गयी और उसने यूरोपियो आर उन पारसिया पर आक्रमण किया जिन्होंने राजकुमार के प्रति वफादारी दिखाई थी। पुलिस ने गोली चलायी। दगे हुए आर 53 व्यक्ति मारे गये। कलकत्ता में खिलाफत वाला आर पुलिस के बीच के एक सघर्ष के अलावा हडताल पूरी तरह सफल रही।

सरकार बहुत परेशान हो गयी थी और उसने दमनकारी कदम उठाने का फसला किया। कांग्रेस और खिलाफती स्वयसेवकों क सगठन को गरकानूनी घोषित कर दिया गया। जनसभाओ और जुलूसों पर प्रतिबध लग गया। यह सगठन ओर भाषण की स्वतत्रता को एक चुनाती थी क्याकि इसके बिना काई भी राजनतिक आदालन चल ही नहीं सकता था। श्री दास ने चुनाती को स्वीकार करके आदेश की अवज्ञा करत हुए कहा

> मैं महसूस करता हू कि मेरी कलाइया म हथकडिया पडी ह आर मर शरीर पर लाह की जजीर का वजन ह। पूरा देश ही एक लबा चाडा कारागार है। इससे क्या फर्क पडता है कि मैं पकडा जाता हू या छोड दिया जाता हू। इससे क्या फर्क पडता ह कि म जीवित हू या मर गया हू।

उनकी पत्नी और पुत्र की गिरफ्तारी के बाद हजारा स्वयसेवको ने अपना नाम लिखवाना शुरू किया। कलकत्ता की जेल म जितने आदमी अट सकते थे उससे कई गुना ठूस दिये गये। जेल तीर्थयात्रा का एक पवित्र स्थल बन गया। गुस्से म खीझी हुई पुलिस ने बिना भेदभाव क स्वयसेवका को मारा पीटा। बहुत बडी सख्या म गिरफ्तारियो के आदेश हुए। कुछ ही महीना क दौर म 30 हजार राष्ट्रवादियों का जेल म ठूस दिया गया। श्री दास न स्वेच्छिक ढग से अपनी गिरफ्तारी कराई। बाद म मोतीलाल नहरू, लाजपतराय और गोपबधुदास भी उनके पीछे पीछे जेल मे पहुच गये।

सन् 1921 के अत तक गाधीजी को छोडकर शेष सभी प्रमुख नेता जल के सीखचा के भीतर थे। कार्यकारिणी ने हर प्रात का कुछ खास शर्तो पर नागरिक अवज्ञा आदालन शुरू करने की अनुमति दी थी। लेकिन मोपला क विद्राह आर बबई के दगा की वजह स गाधीजी बेचन हा उठ। वह धीरे धीरे बढना चाहत थे। उन्हान आदालन को शहरा से जहा अहिसा असफल हो गयी थी, हटाकर गावा म तेज करने का फसला किया। अहमदाबाद कांग्रेस न निजी आर सामूहिक दाना तरह की नागरिक अवज्ञा की स्वीकृति दी। गाधीजी ने 1 फरवरी 1922 का वायसराय को अपनी प्रसिद्ध चुनाती दी

नेताओं में दो गुट हो गये। एक को परिवर्तन समर्थक और दूसरे को यथार्थवादी कहा गया। दिसम्बर 1922 में कांग्रेस के गया अधिवेशन में प्रश्न उभर कर सामने आया। अध्यक्ष की हैसियत से चित्तरंजन दास ने सशक्त ढंग से परिषद में प्रवेश करने की वकालत की। लेकिन जीत राजाजी के गुट की हुई। चित्तरंजन दास ने त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने मोतीलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल, मालवीय जी और जयकर के साथ मिलकर कांग्रेस के भीतर एक दल बनाया। नाम रखा गया कांग्रेस खिलाफत स्वराज दल। चित्तरंजन दास अध्यक्ष हुए। मोतीलाल नेहरू सचिवों में से एक थे।

नये दल ने अहिंसा और असहयोग के अनिवार्य सिद्धान्तों को दृष्टि में रखा। इसने संविधान बनाने के अधिकार की मांग का प्रस्ताव रखा और इन्कार किये जाने पर विधानसभाओं और परिषदों में सरकार के काम को असंभव कर देने के लिए एक तरह की क्रमबद्ध और अविचल गतिरोध पैदा करने वाली नीति अपनाने का निर्णय किया। चित्तरंजन दास की कल्पना और भावाकुलता ने मोतीलाल की तटस्थ गरिमा और दृढ़ता से मिलकर दोनों के बीच की कमजोरियों को खत्म कर दिया। उन्होंने नवम्बर 1923 में चुनाव लड़ा और तैयारी का बहुत कम समय मिल पाने के बावजूद उदारपंथियों का व्यावहारिक अर्थों में सफाया कर दिया। मध्य प्रांत में उन्हें पूर्ण बहुमत मिला। बंगाल में वह सबसे बड़ा दल था। उत्तर प्रदेश और आसाम में उन्हें दूसरे सबसे बड़े दल का स्थान मिला हालांकि दूसरे राज्यों में उनकी उपलब्धि अच्छी नहीं रही। केन्द्रीय विधान परिषद में उन्होंने 101 में से 42 स्थानों पर कब्जा किया।

लेकिन यथार्थवादी नेता स्वराजियों के दृष्टिकोण की सत्यता में अभी भी विश्वास नहीं करते थे। दोनों गुटों के बीच एक भयंकर राजनैतिक विवाद उठ खड़ा हुआ। लेकिन दोनों ही गुट गांधीजी और कांग्रेस के प्रति निष्ठावान बने रहे। दोनों ही साम्राज्यवाद विरोधी और विश्वास तथा विचार से सच्चे राष्ट्रवादी थे। अतः परिषद प्रवेश के प्रश्न पर मतभेदों के बावजूद उन्होंने एक दूसरे के प्रति आदर भाव बनाये रखा और दल की एकता को कोई खतरा पैदा नहीं हुआ।

केन्द्रीय विधान परिषद में स्वराजियों ने 30 नरमपंथी और मुसलमान सदस्यों को मिलाकर एक राष्ट्रवादी दल बनाया। प्रांतीय परिषदों में भी उन्होंने ऐसी ही व्यवस्था की। उन्होंने सभी राजनैतिक बंदियों की रिहाई, दमनकारी कानूनों की समाप्ति, प्रांतीय स्वायत्तता और परिषद द्वारा सरकार पर पूरा नियंत्रण रखने की योजना बनाने के लिए शीघ्र ही एक गोलमेज सम्मेलन आयोजित करने की मांग की। उन्होंने धमकी दी कि यदि सरकार ने मांगों पर अमल नहीं किया तो वे आपूर्ति पर मत देने से इन्कार करके प्रशासन को ठप्प करने की स्थिति में ला देंगे।

शुरू शुरू में नरमपंथियों और हिंदू तथा मुसलमान साम्प्रदायिकतावादियों ने केन्द्रीय विधान परिषद में नजरबन्द और राजनैतिक कैदियों की रिहाई तथा दमनकारी कानूनों को खत्म करने की सिफारिश वाले प्रस्तावों पर स्वराजियों से सहयोग किया। मार्च 1925 में वे गुजरात के एक प्रमुख राष्ट्रवादी विट्ठलभाई पटेल को केन्द्रीय विधान परिषद के अध्यक्ष पद पर निर्वाचित कराने में सफल हुए।

लेकिन स्वराजी कुछ अधिक पा सकने में सफल नहीं हुए और उन्होंने मार्च 1926 में केन्द्रीय विधान परिषद से बहिर्गमन करने का फैसला किया। मोतीलाल ने कहा "हमने जो सहयोग दिया उसे तिरस्कारपूर्वक अस्वीकृत कर दिया गया। अब अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के दूसरे तरीकों के बारे में सोचने का समय आ गया है।"

सन् 1923 के प्रारंभ में ब्रिटेन में लेबर दल सरकार ने सत्ता संभाल ली लेकिन उसका कार्यकाल बहुत कम दिनों का रहा। हालांकि सत्तारूढ़ होने के दौरान भी उसके पास भारत के लिए कोई निश्चित योजना नहीं थी बाल्डविन के नेतृत्व में कनजरवेटिव दल की सत्ता में वापसी के साथ लार्ड बर्केनहेड इंडिया आफिस के प्रमुख हुए। मंत्रिमंडल के शेष सदस्यों की ही तरह उन्होंने सोचा कि मांटेगु चेम्सफोर्ड सुधार आवश्यकता से भी काफी है और कुछ दिनों के लिए और सुधारों की अनुमति देना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा। वे यह नहीं सोच सके कि किस प्रकार भारत औपनिवेशिक राज्य का दर्जा पाने के योग्य हो सकेगा। उन्होंने सन् 1919 के विधेयक में पारित स्थितियों की पुनर्परीक्षा के दस वर्ष के समय के प्रस्ताव पर सख्ती से अमल करना चाहा।

इस बीच राजनैतिक निष्क्रियता और निराशा से संपन्न होती हुई सांप्रदायिकता ने देश में सिर उठाना शुरू कर दिया था। यहां तक कि स्वराजी भी उसके कीटाणुओं के प्रभाव से मुक्त नहीं रहे। कुछ सदस्यों ने (जिसमें मदनमोहन मालवीय लाजपतराय और एन सी केलकर शामिल थे) अनुक्रियावादियों का अपना गुट बनाया और सरकार को सहयोग देने की बात की। उनका दावा था कि इस रूप में वे हिंदुओं के हितों की रक्षा कर रहे थे। यह बहुत दुखद था कि इसी समय जून, 1925 में अचानक चित्तरंजन दास का देहांत हो गया।

मुस्लिम लीग और सन् 1917 में स्थापित हिंदू महासभा एक बार फिर सक्रिय हो गयीं। दिल्ली लखनऊ इलाहाबाद जबलपुर और नागपुर में सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे। गांधीजी दुर्बल स्वास्थ्य के कारण 5 फरवरी 1924 को जेल से छूट गये थे। उन्होंने उसी साल सितंबर में 21 दिन का उपवास करके दंगों में प्रदर्शित अमानुषिकता पर पश्चाताप करने और सांप्रदायिक कीटाणुओं के प्रसार को रोकने की कोशिश की। लेकिन उसका बहुत कम असर हुआ।

उपवास के फलस्वरूप एकता सम्मेलन हुए लेकिन सद्भाव की परिस्थिति नहीं पैदा हो सकी। अगले दो वर्षों में सांप्रदायिकता का प्रसार और भयंकर ढंग से हुआ। 1925 में कम से कम 16 दंगे हुए। सन् 1926 के कलकत्ता के दंगे सबसे भयंकर रहे। वे दंगे बड़े शहरों से हटकर छोटे कस्बों में फैल रहे थे। साइमन आयोग ने सन् 1922 और 1927 के बीच घटित 112 सांप्रदायिक दंगों का उल्लेख किया जिनमें 450 व्यक्तियों की जान गयी और 5 000 लोग जख्मी हुए। सन् 1927 का वर्ष निराशा का वर्ष था। मोतीलाल और आजाद ने सभी दलों से सांप्रदायिक राजनीति से दूर रहने का आश्वासन लेने का प्रयत्न किया लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली। बढ़ती हुई इस हिंसा के बीच गांधीजी ने अपने को असहाय पाया। उन्होंने पीड़ा के साथ लिखा मेरी एकमात्र आशा प्रार्थना में और उसके उत्तर में निहित है।

कृष्ण मेनन जनरल लिस्टर जवाहरलाल नेहरू—स्पेन 1938

एस ए डांगे

आजाद हिंद फौज की महिला रेजिमेंट

जयप्रकाश नारायण

राम मनोहर लोहिया

गाधीजी और अनुयायियो ने सचमुच ही अस्पृश्यता के संस्थान को ध्वस्त करने की कोशिश की ताकि हिंदू धर्म के भीतर की साप्रदायिक प्रवृत्तियो को काटा जा सके। कम्युनिस्ट आदोलन ने मुख्यतया बबई म मजदूरो को साप्रदायिक भावना से मुक्त करन की कोशिश की ताकि पृथकतावाद की प्रवृत्ति समाप्त हो और वे एक वेग म आ जाय। बहरहाल सन् 1920 और 1930 के बीच साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे के भीतर के राजनैतिक मतभेद बहुत से वर्गो म बढ़ती हुइ साप्रदायिकता की भावना और सरकार द्वारा गैर-काग्रेसी राजनैतिक गुटों का प्रोत्साहन और प्रलोभन दिये जाने के परिणामस्वरूप ऐसी प्रवृत्तिया पैदा हुई जिन्होने समाज को विभिन्न वर्गो और गुटों म छिन्न भिन्न कर देने का खतरा उपस्थित किया। इन प्रवृत्तियों ने राष्ट्रीय आदोलन को कमजोर बनाया।

लेकिन इस सब के बावजूद नवबर, 1927 म एकता का एक नया आधार पैदा हुआ। लदन से ब्रितानी मंत्रिमडल ने घोषणा की कि नियत समय से दो साल पहले ही एक शाही आयोग की नियुक्ति का निर्णय किया गया है जो यह समीक्षा करेगा कि भारत और अधिक सुधारो तथा ससदीय जनतत्र के योग्य हुआ है या नहीं। आयोग के अध्यक्ष हुए एक अग्रेज राजनीतिज्ञ सर जॉन साइमन और इस प्रकार आमतौर पर उसे **साइमन आयोग** की सज्ञा दी गयी। उसके सातो सदस्यों मे से कोई भी भारतीय नहीं था।

साम्राज्यवादियों को उम्मीद थी कि सुधारो के प्रस्तावों पर नियत समय स दो साल पहले कार्य शुरू करके राष्ट्रीय आदोलन को बढने से रोक दिया जायगा। लेकिन घोषणा के बाद आक्रोश की जो लहर उठी उसने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। सन् 1927 के मद्रास अधिवेशन के काग्रेस के अध्यक्ष एम एन असारी ने घोषणा की कि काग्रेस आयोग की जाच के कार्य का बहिष्कार करेगी। कहा गया भारतीय जनता को यह अधिकार है कि वह सभी सबद्ध गुटो का एक गोलमेज सम्मेलन या ससद का सम्मेलन बुला करके अपने सविधान का निर्णय कर सके। साइमन आयोग की नियुक्ति द्वारा निश्चय ही उस दावे को नकार दिया गया है। लोकप्रिय सरकार की स्थापना म उठाये जाने वाले किसी कदम या स्वराज सबधी अपनी योग्यता-अयोग्यता की जाच पडताल म निरपेक्ष हम नहीं हो सकते। निस्संदेह बहिष्कार का तीसरा कारण यह है कि आयोग में जानबूझ कर भारतीयो को शामिल न करके उनके आत्मसम्मान को आहत किया गया है।"

कांग्रेस ने पहले और दूसरे कारण पर बल दिया। लेकिन भारतीयों के आत्मसम्मान को आहत करने वाले तीसरे कारण ने तेजबहादुर सप्रू जसे बहुत से उदारवादियो को आकर्षित किया। श्री सप्रू ने व्यापक ढग से सरकार से सहयोग करके बडे परिश्रम स ससदीय सस्थान और व्यवहार की जानकारी प्राप्त की थी। अत काग्रेस उदारवादी सब और प्रारभ में मुस्लिम लीग तक ने साइमन आयोग का बहिष्कार करने का निर्णय किया। आयोग (जाच क सिलसिले म) जहां भी गया वहा पर काग्रेस ने 'साइमन लौट जाओ' के नारे लगाये। इस विधि ने राष्ट्रीय संघर्ष में एकता का एक बधन पैदा किया हालाकि इसका कारण राजनैतिक कार्यक्रमो म

सामाजिक मिलाप या एकरूपता नहीं बल्कि साम्राज्यवादी नीतियों का समान विरोध था। 3 फरवरी 1928 को जब आयोग बम्बई में उतरा तो उसे एक वृहत् जुलूस का सामना करना पड़ा जो 'साइमन वापस जाओ' की तख्तियां और काले झंडों के साथ चल रहा था। चौपाटी पर शाम की एक सभा में 50 हजार लोगों के बीच विभिन्न दलों ने मंत्रिमंडल के निर्णय की निंदा की। केवल नयी दिल्ली की राज्य की परिषद् ने बहुमत से आयोग का समर्थन देने की हामी भरी। इस परिषद में बहुत दूर तक सदस्यों का मनोनयन सरकार द्वारा हुआ था।

इसी के साथ राष्ट्रीय संघर्ष से मजदूरों का लगाव भी बढ़ा यद्यपि बल मजदूर संघ के आन्दोलन और मजदूरों की हालत में सुधार करने पर था। सन् 1927 में बम्बई में मजदूरों और किसानों ने शासन को न्यूनतम जानकारी (संशोधन) विधेयक को स्थगित करने के लिए विवश कर दिया। विधेयक से संपन्न किसानों को अपनी जोत सामान्य बढ़ाने की अनुमति मिल गयी होती फलस्वरूप स्थानीय खेतिहर पहले से भी ज्यादा गरीब हो जाते। बंगाल नागपुर रेलवे कंपनी (जिसका मुख्य कार्यालय लंदन में था और मालिक पूरी तौर पर एक निजी ब्रितानी व्यापारिक संस्थान था) के खड़गपुर स्थित लोकोमोटिव (मरम्मत तथा रखरखाव) कारखाने में कम मजदूरी और कंपनी अधिकारियों के स्वेच्छिक आदेशों के विरुद्ध मजदूरों ने जो आन्दोलन किया, वह आम हड़ताल में बदल गया। हड़ताल को जवाहरलाल नेहरू और मजदूर संघों के संगठनकर्ता और उभरते हुए मजदूर नेता वी वी गिरि के अलावा बहुत से राष्ट्रीय नेताओं का समर्थन प्राप्त था। जवाहरलाल नेहरू जिन्हें इस वक्त वामपंथी भारतीय युवकों का ठोस समर्थन प्राप्त हो चुका था साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद विरोधी संघर्ष समिति के सदस्य बन गये। इस समिति की स्थापना यूरोप में हुई थी। वह मास्को में रूस द्वारा स्थापित दुनिया के मजदूरों के तीसरे अंतर्राष्ट्रीय (संगठन) के प्रति सहानुभूतिपूर्ण थी।

समाजवादी विचारधारा के प्रति आकर्षित वामोन्मुख नेताओं और कार्यकर्ताओं को साइमन आयोग के बहिष्कार से सहानुभूति थी। सन् 1928 29 के जन आंदोलन में मजदूरों ने हिस्सा लिया और उससे प्रदर्शन शक्तिशाली हुआ। 'साइमन लौट जाओ' के प्रदर्शन के परिणामस्वरूप छात्र संघ का जन्म हुआ। इस संगठन ने पहली बार कालेज के छात्रों के मन में राष्ट्रवादी और समाजवादी चेतना पैदा की।

नेतृत्व के स्तर पर बहिष्कार के फलस्वरूप समानांतर ढंग से भारतीय संविधान की योजनाएं बनाने के प्रयत्न हुए। सन् 1927 में मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत और सुभाषचंद्र बोस के गुट द्वारा समर्थित यह प्रस्ताव पारित हुआ था कि कांग्रेस का अंतिम लक्ष्य भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना है। भारतीय मामलों के मंत्री लार्ड बर्केनहेड ने चुनौती देते हुए स्वराज पार्टी से कहा था "वह एक ऐसा संविधान तैयार करे जिसमें ऐसी व्यवस्थाएं हों कि भारत की (महान) जनता आमतौर पर उससे सहमति व्यक्त करे। इस अधिवेशन में इस मुद्दे को भी लिया गया। इसका अर्थ यह था कि ब्रितानी सरकार ने साम्राज्यवाद के अंतर्गत शासन के एक नये ढांचे की स्वीकृति दे दी थी। अंततः अगस्त 1928 में कांग्रेस

कार्यकारिणी अखिल भारतीय उदारपंथी संघ मुस्लिम लीग तथा दूसरे संगठन के नेता लखनऊ मे मिले। वहा पर एक सर्वदलीय अधिवेशन की ओर स कुशल स्वराजी नेता मोतलाल नेहरू की अध्यक्षता म एक समिति द्वारा संविधान का प्रारूप तयार करने की स्वीकृति दी गयी।

मोतीलाल नेहरू की रिपोर्ट

इस रिपोर्ट म जिम्मेदार या लोकप्रिय सरकार की व्यवस्था थी। यानी कार्यपालिका पर जनता द्वारा निर्वाचित विधायिका की सर्वोच्चता। ब्रितानी भारत म उन दिनों वही सर्वोपरि थी। उसम दो सदनों वाली सर्वोच्च संसद की व्यवस्था थी जिसे स्वायत्तता के वे ही अधिकार प्राप्त थे जो ब्रितानी साम्राज्य क अतर्गत आस्ट्रेलिया आर कनाडा क आपनिवेशिक सदनो के पास थे। व्यवस्थापिका सभा म आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर प्रातीय परिषदो द्वारा निर्वाचित 200 सदस्य होन थे। प्रतिनिधि सभा मे बालिग मताधिकार के आधार पर निर्वाचित 500 सदस्य हाने थे। बगाल म मुसलमाना आर पश्चिमोत्तर सीमा प्रात म गेर मुसलमानो के अलावा संसद म किसी भी तरह का विशेष साप्रदायिक प्रतिनिधित्व नही था। प्रातीय परिषदा म अल्पसख्यको के लिए जनसख्या के आधार पर विशेष आरक्षण होना था। चूंकि पजाब ओर बगाल में मुसलमानों का बहुमत था, अत वहा अपवाद के तार पर व्यवस्था हानी थी। इन दोना क्षेत्रा मे स्थानों का काई आरक्षण नहा होना था। प्रतिनिधित्व सिर्फ बालिग मताधिकार के आधार पर होना था।

मातीलाल की रिपोट से सन् 1928 के पुरानी पीढी के काग्रेसी नेताओ क रूढिवादी दृष्टिकोण का आभास मिलता है। युवतर पीढी की पूर्ण स्वराज की माग को स्वीकार करते हुए उन्हाने अर्थ यह लगाया कि व साम्राज्य के अतर्गत एक औपनिवेशिक दर्जा चाहते है। वे समग्र रूप मे धर्मनिरपेक्ष आर जनतात्रिक सिद्धातो का भी स्वीकार करने का तेयार नही थे। उन्हाने साप्रदायिकता के प्रश्न का बिना किसी समझात के दो टूक ढग से सुलझाने का प्रयत्न नहीं किया। केद्रीय ससद आर प्रातीय परिषद दाना मे सभी नागरिको के लिए समान प्रतिनिधित्व के सिद्धात को अपवाद रूप म स्वीकार किया गया। वास्तव म केवल इसी प्रकार के प्रस्तावा से वे राष्ट्रवादी मुसलमान सतुष्ट हा गय हाते जा काग्रेस म शमिल नहीं हुए थ ओर जिन्हाने विपुल हिदू बहुमत पर विश्वास करने का तयार होन के लिए जमानत के रूप में अपने अल्पसख्यक हिता के सरक्षण का व्यवस्था चाही।

मुस्लिम लाग तो आर कट्टरपथी थी। उससे संघर्ष की स्थिति दिसबर 1928 में आई। जिस समय कलकत्ता म काग्रेस का अधिवेशन चल रहा था उसी वक्त नेहरू रिपार्ट पर स्वीकृति की मुहर लगाने के लिए कलकत्ता म ही सर्वदलीय सम्मेलन हुआ। सन् 1921 तक क काग्रेसी आर अब एक प्रमुख साप्रदायिकतावादी नेता मुहम्मद अली जिन्ना न ससद के दोना सदनो तथा बगाल ओर पजाब की प्रातीय परिषदा म मुसलमाना के प्रभुत्व को इस रूप म निश्चित करना

चाहा ताकि इन प्रांतों में जो पिछड़े सुविधाहीन मुसलमान बहुसंख्या में है वे अपने विधायी अधिकारों का इस्तेमाल करके शिक्षा रोजगार के अवसरों तथा समाज कल्याण के कार्यक्रमों का लाभ उठा सके। उन्हें अधिक वफादार आगा खां और सर मुहम्मद शफी जैसे नेताओं ने समर्थन दिया। श्री शफी मुसलमानों के उस नये शिक्षित पेशेवर वर्ग, बड़े जमींदारों और व्यापारियों के प्रतिनिधि थे जो उसी स्तर के अधिक उन्नत हिंदू वर्ग से स्थानीय अधिकार छीन लेने को उत्सुक थे। वे जनतांत्रिक सिद्धांतों को वह रियायतें देने को तैयार नहीं थे जिनकी सलाह कांग्रेस के डाक्टर असारी उत्तर प्रदेश के एक परंपरावादी भूस्वामी (महमूदाबाद के महाराजा) और बिहार के न्यायाधीश सर अली इमाम और उन जैसे अनेक मुसलमान राजनीतिज्ञों ने दी थी। हिंदू सांप्रदायिकतावादी भी अकड़ गये। सिख सांप्रदायिकतावादियों ने भी पंजाब में धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक की हैसियत से विशेष प्रतिनिधित्व की मांग की। जिन्ना और सिख सांप्रदायिकतावादी दोनों ही अधिवेशन से बाहर निकल आये। इस प्रकार मोतीलाल नेहरू की रिपोर्ट में 'आम सहमति की पर्याप्त व्यवस्था' के दावे की जो धारणा थी वह बुरी तरह दब घुट गयी।

घटनाओं के इस तरह के विकास ने औपनिवेशिक राज्य के उस विचार की आलोचना को तीव्रतर किया जिसका प्रतिपादन वामोन्मुख युवकों के प्रतिनिधि जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस ने शुरू किया था। दोनों ही कांग्रेस के महासचिव थे। उन्होंने कांग्रेस को पूर्ण स्वराज के लिए पारित मद्रास के प्रस्ताव पर अमल करने के लिए आगे बढ़ाया। कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में (जिसकी अध्यक्षता मोतीलाल नेहरू ने की थी) नेहरू की रपट के समर्थन में जो प्रस्ताव रखा गया था उसमें यह अंश जोड़ दिया गया पूर्ण स्वराज के लिए कांग्रेस के नाम पर किये गये प्रचार के काम में इस प्रस्ताव की किसी भी चीज से हस्तक्षेप नहीं होगा। कलकत्ता कांग्रेस में यह भी फैसला किया गया कि यदि सन् 1929 के अंत तक ब्रितानी सरकार ने नेहरू रिपोर्ट स्वीकार नहीं की तो कांग्रेस के अगले वर्ष के लाहौर अधिवेशन में एक नये नागरिक अवज्ञा आंदोलन का आह्वान होगा।

मतभेदों को एक समझौते द्वारा खत्म करके दल की एकता को मजबूत कर दिया गया था। अहमदाबाद में 6 साल का अवकाश लेने के बाद गांधीजी पुनः कांग्रेस के सर्वोच्च नेता के रूप में उभर रहे थे। उन्होंने मतभेदों को सद्भावनापूर्ण बातचीत द्वारा सुलझाना चाहा और कांग्रेसी एकता की स्थापना का मुख्य श्रेय भी उन्हीं को था। उन्होंने व्यवस्था की कि जवाहरलाल नेहरू लाहौर अधिवेशन के अवसर पर अपने पिता की जगह अध्यक्ष हों।

लाहौर अधिवेशन ने निश्चय ही कांग्रेस को पूर्ण स्वराज्य या संपूर्ण स्वाधीनता की मांग के लिए इस तरह प्रतिबद्ध कर दिया कि उस प्रश्न पर वह कोई समझौता न कर सके। अब राष्ट्रकुल के अंतर्गत औपनिवेशिक राज्य स्वीकार योग्य नहीं था। सुधारों को लेकर जो हिचकिचाहट होती थी— हमेशा बहुत देर से हमेशा बहुत कम आदि के अहसास से जो दिमागी परेशानियां होती थीं वे खत्म हो गयीं।

31 दिसबर 1929 को जब घडियाल क घंटे 12 बजा रहे थ आर नये वष का आरभ हो रहा था जनता की एक अपार भीड ने जवाहरलाल नहरू का रावी के तट पर राष्ट्रीय तिरगे झंडे को फहराते हुए देखा। उसने सुना नेहरू जी कह रहे थे ब्रिटिश सत्ता के सामने अब अधिक झुकना मनुष्यता आर इश्वर दोना क विरुद्ध अपराध है।

बाहर एक नयी आशा थी। एक नयी उत्तेजना थी। हवा म स्वतत्र होने के लिए सघर्ष करने वाली जनता का निश्चय भरा हुआ था।

स्वतन्त्रता के सदेश

सन् 1931 और 1940 के बीच स्वतत्रता का सघर्ष कई कदम आगे बढा। दशक का प्रारभ दूसरे असहयोग आदोलन से हुआ और अत दूसरे विश्वयुद्ध के प्रारभ मे और युद्ध में भारत को बिना उसकी अनुमति लिए घसीटे जाने के विरोध में प्राता के काग्रेसी मत्रिमडलों के त्यागपत्र के साथ। लकिन इसके पहले कि हम इन वर्षों के दोर की राष्ट्रीय आदोलन की दिशा की तलाश करे हमारे लिए सन् 1920 और 1930 बीच की क्रातिकारिया की आतकवादी गतिविधियों ओर सन् 1930-40 के शुरू के कुछ वर्षो मे निरतर घटित घटनाआ की आर ध्यान देना जरूरी है। इसी दोर मे मजदूर आदोलन भी सशक्त हुआ आर देश के राजनैतिक चितन म समाजवादी आर साम्यवादी विचारों ने जड़े जमायीं। सन् 1930 आर 1910 के बीच की इन स्थितियो ने राजनैतिक विकास को प्रभावित किया।

सिर्फ सन् 1928 मे एक वर्ष की अवधि में देश में 203 हडतालें हुई जिनमें 5 लाख 5 हजार मजदूरों ने हिस्सा लिया। ववई आर दक्षिण महाराष्ट्र की कपडा मिलों के क्रान्तिकारी गिरनी कामगार सघा की सदस्यता मे पर्याप्त वृद्धि हुई दक्षिण भारतीय मद्रास आर दक्षिणी मराठा रेलवे के मजदूरों ने क्राति का आह्वान करने वाले मजदूर सघा की स्थापना की। शहर में **कीर्ति मजदूर किसान स्पार्क** आर **क्रांति** जसे साम्यवादी समाचारपत्रा का प्रसार हुआ। युवक समितियों की स्थापना हुई जो काग्रेस के उच्च मध्यम वर्ग के स्वराजी नेताओ से कम सहानुभूति रखने वाले निम्न मध्यम वर्ग के क्षेत्रों में लोकप्रिय हुई। यद्यपि उन समितियो ने समाजवादी सघर्ष के लिए अपने को अनुशासित तरीके से सगठित नही किया। उन्होने न तो ऐसे मजदूर दला की स्थापना की जिनमें शहरी मजदूर वर्ग को बडी सख्या मे शामिल किया जाये ओर फिर उन्हें समाजवादी विचारधारा के आधार पर बेहतर जीवन स्तर के लिए आन्दोलन करने का प्रशिक्षण दिया जाये न ही उन्होंने भारतीय मजदूर को अतर्राष्ट्रीय मजदूरा वर्ग के आदोलन से सबद्ध करने का कदम उठाया।

जिस समय कलकत्ता मे काग्रेस का अधिवेशन ओर सर्वदलीय सम्मेलन हुआ उसी समय कम्युनिस्टा ने किसान-मजदूर दलो के पहले अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन म सर्वहारा वर्ग के सघर्ष बिना मुआवजा दिये सिद्धात रूप में भूस्वामित्व की समाप्ति अपेक्षाकृत छोटे कार्य दिवस और न्यूनतम मजदूरी भाषण मजदूर सघों के सगठन और

समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता की आवश्यकता पर बल दिया। उसने इच्छित अंतरिम लक्ष्य के रूप मे सन् 1928 म कांग्रेस द्वारा औपनिवेशिक राज की स्वीकृति की आलोचना की।

ब्रितानी शासक वर्ग ने महसूस किया कि साइमन विरोधी प्रदर्शन में जो स्वत प्रेरित उत्साह देखा गया था वह वामपथी दिशा म बढ रहा है। मजदूर समस्या को लेकर हिट्ले आयोग के नाम से एक दूसरे शासकीय आयाग की नियुक्ति हुई आयोग को भारत में आकर मालिक-मजदूर रिश्तों म सुधार और मजदूर कल्याण के कामो को बेहतर बनाने के उपायों का सुझाव देना था। वामपथी आदोलन को शक्ति देने वाले (सरकार की दृष्टि में) ये ही मुख्य स्रोत थे और विचार था कि मजदूर वर्ग को यह समझकर गुमराह कर दिया जाय कि समाजवाद और क्रांति के बारे में अस्पष्ट ढग से बोलने वाले नेताओं की तुलना म मजदूरों के कल्याण की चिंता सरकार को अधिक है। लेकिन मजदूर उनके धोखे में नहीं आये। सन् 1929 में सुधारवादी हिट्ले आयोग का उसके भारत पहुचने पर बहुत से मजदूर सगठनों द्वारा बहिष्कार किया गया। उन्हे याद आया कि सन् 1928 म सरकार ने केंद्रीय विधान परिषद द्वारा मजदूर विवाद विधेयक पारित करने और सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक म एक सशोधन कराने की कोशिश की थी। वे कदम न केवल मजदूरों के अहित में थे वरन् उनके कारण सचमुच मजदूरो की कार्रवाई करने की स्वतन्त्रता भी सीमित हो जाती थी। प्रस्तावित कानूनी कदमो का उद्देश्य था कि यदि कार्यपालिका समझती है कि प्रांतों मे विधान और व्यवस्था खत्म हो जाने वाली है तो उसे विधायिका के नियत्रण से मुक्त करके हडतालो को खत्म करने और आपातकालीन कार्रवाई करने के अधिकार प्राप्त हो जाय। वे कदम भारत के राजनतिक दलों का उन विश्व सगठनो से कोष और सहायता के लिए सपर्क कर पाना अधिक कठिन बना देगे जो भारत मे वामपथी विचारधारा का समर्थन करते है। केंद्रीय विधान परिषद के सदस्यों ने मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व म उन विधेयकों को अस्वीकृत कर दिया।

मार्च 1929 में बबई म गिरनी कामगार सघ और रेल मजदूरों के सयुक्त आह्वान पर एक आम हडताल हुई। यह हडताल सन् 1928 की हडतालो मे भाग लेने वाले मजदूरो की बर्खास्तगी और उनकी जगहों पर पठान मजदूरों की भर्ती के विरोध में हुई थी। हडताली मजदूरो का तर्क था कि इन कार्रवाइयों का उद्देश्य मजदूर सगठनों की एकता को कमजोर बनाना था और उन्हीं के परिणामस्वरूप मिलों मे हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए। हडताल कानपुर और कलकत्ता में फैली। इसके तत्काल बाद 20 मार्च 1929 को देश के विभिन्न भागों से मजदूर आदोलन के 33 प्रमुख नेताओ को ब्रितानी राज के खिलाफ क्रांति करने के षड्यत्र के आरोप म गिरफ्तार कर लिया गया। इन नेताओ में बाद के वर्षो के मशहूर कम्युनिस्टों मुजफ्फर अहमद डांगे, मीरजाफर और पी सी जोशी के अलावा बबई के कम्युनिस्टो की सहायता के लिए भेजे गये दो अंग्रेज कम्युनिस्ट बेन ब्रैडले और फिलिप स्प्रैट तथा कुछ गैर-कम्युनिस्ट क्रांतिवादी भी थे। वायसराय ने एक विशेष अध्यादेश जारी किया जिसके अनुसार विधान परिषद में अस्वीकृत दोनों विधेयको को लागू करने के अधिकार मिल गये। 'षड्यत्रकारियों' को मजदूर वर्ग की एकता के बडे औद्योगिक

केंद्रों से दूर हटाकर मेरठ लाया गया। यहा पर कई साल तक वास्तव में सन् 1933 तक 'मेरठ षड्यंत्र केस' के नाम पर उन पर मुकदमा चलता रहा। अतत अधिसख्य बंदियों को दोषी घोषित करके उन्हे विभिन्न अवधि की जेल की सजा दी गयी। उनमें से कम्युनिस्टों ने अपने साम्राज्यविरोधी दृष्टिकोण और आदर्शों के औचित्य में अदालत में विस्तृत तर्क दिये लेकिन उसे दबा दिया गया।

नयी जानकारियों से पता चलता है कि सरकार ने जवाहरलाल नेहरू का भी एक षड्यंत्रकारी के रूप म गिरफ्तार करने का इरादा किया था लेकिन यह सोचकर कि उसके बाद आदोलन भयकर हो सकता है इरादा बदल दिया। नेहरू ने मेरठ के नजरबंदों की कानूनी सहायता जरूर करनी चाही लेकिन सन् 1929 31 की घटनाओ के कारण कम्युनिस्टों के मुकदमे की सुनवाई के समाचार महत्वपूर्ण नहीं रह सके और उनकी ओर जनता का ध्यान नहीं गया।

बहरहाल सन् 1929 म पूरे वर्ष भर हडतालें चलती रहीं। अखिल भारतीय मजदूर सघ काग्रेस (ए आई टी यू सी) के नागपुर सम्मेलन मे काग्रेस नेताओ ने वामपथी मजदूर सघों की ह्विट्ले आयोग के पूर्ण बहिष्कार और साम्राज्यवाद के विरुद्ध मजदूर सघ काग्रेस को लीग से सबद्ध करने की माग के प्रश्न पर समर्थन दिया था। एन एम जोशी गुट जो इन मागों के पक्ष मे था, पराजित हुआ। उसने मजदूर सघ काग्रेस को छोड कर अखिल भारतीय मजदूर महासघ (ए आई टी यू एफ) की स्थापना की। इस सगठन ने क्रांतिकारी उद्देश्यो का यहा तक कि राजनैतिक मागों तक का परित्याग कर दिया। यह केवल मजदूरों की हालत को ठीक करने के उद्देश्य से चिपका रहा। लेकिन एक असलियत यह है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा सगठित राष्ट्रीय आदोलन में मजदूर वर्ग के अपेक्षाकृत अधिक क्रांतिप्रिय गुट तक ने हिस्सा नहीं लिया। जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने अपने जीवनचरित मे लिखा

> मजदूरो के उन्नत वर्ग मे राष्ट्रीय काग्रेस को लकर झिझक थी। उन्होंने काग्रेस के नेताओं पर विश्वास नहीं किया। उसकी विचारधारा का बुर्जुआ और प्रतिक्रियावादी माना। मजदूर दृष्टिकोण से ऐसा मानना सही था।

इस प्रकार असहमति की अतर्विरोधी प्रवृत्तियो (जिसमे एक रूढिवादी थी और दूसरी परिवर्तनवादी) और सरकारी दमन ने सन् 1930-40 के बीच के राष्ट्रीय आदोलन मे मजदूरो की हिस्सेदारी को दुर्बल बनाया।

पजाब, उत्तर प्रदेश और बगाल में काग्रेस की नरमपथी अहिसावादी नीतियों से निराश निम्न मध्यम वर्ग के युवको ने आतकवादी कार्रवाइयो को पुन जीवित किया। सन् 1925 मे उत्तर प्रदेश मे मशहूर काकोरी षड्यत्र केस हुआ जिसके अभियुक्तो म से रामप्रसाद बिस्मिल रोशनलाल और अशफाकउल्लाह को फासी की सजा दी गयी। इस केस म बगाली भी शामिल थे। शेष सदिग्ध व्यक्तियो मे से कुछ गिरफ्तारी से बचकर गायब हो गये। सन् 1928 तक पुलिस की गिरफ्त मे न आ सकने वालों मे स सिर्फ चद्रशेखर आजाद बचे थे। उन्होने हिंदुस्तान रिपब्लिकन सेना का सगठन करने में आगे बढकर हिस्सा लिया। इसका नाम बदलकर 'हिंदुस्तान

समाजवादी रिपब्लिकन सघ' रखा गया। लक्ष्य हुआ हिंदुस्तानी समाजवादी रिपब्लिक की स्थापना।

30 अक्तूबर 1928 को साइमन आयाग अपनी जाच क लिए जब लाहार पहुचा तो पजाव के कुशल नेता लाजपतराय के नेतृत्व में विराध में 'साइमन लाट जाओ' के परिचित नारों के साथ प्रदशन हुआ। पुलिस ने अहिसक भीड को पीछे ढकल देन के लिए लाठिया चलाई। लाजपतराय सघर्ष में बुरी तरह जख्मी हो गये आर उनका देहावसान हा गया। जनमत ने लाठीचालन क जिम्मेदार पुलिस अधीक्षक साडर्स को हिदुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन सघ के सदस्य आर पजाव नवजवान भारत सभा के नेता भगतसिह ने गाली मार दी। वह अपने साथियों समेत पुलिस से बच निकलने में सफल रहे। सन् 1907 में जन्मे भगतसिह प्रसिद्ध सरदार अजितसिह के भतीजे थ। सन् 1928 में नवजवान भारत सभा ने पजाव की कीर्ति किसान पार्टी से भी सपर्क किया था आर अक्तूबर में भगतसिह ओर उनके साथियो ने हिदुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन सघ (एच एस आर ए) की स्थापना के लिए दिल्ली मे फीरोजशाह कोटला के नजदीक आयोजित बैठक म भाग लिया था। सभा को यकीन था कि एक जनसम्मत व्यापक क्रांतिकारी कार्रवाई देश को आपनिवेशिक दासता से मुक्त कर सकती थी। उसने नारा दिया 'जनता द्वारा जनता के लिए क्रांति। वह यह भी मानती थी कि गावो म ऐसे राजनैतिक काम करने की जरूरत है जिनसे लोग उद्देश्य का समझ सके। उसने वल देकर कहा कि आतकवाद ही क्रातिकारी सघर्ष का पहला आर अनिवार्य चरण है जिसका उद्देश्य व्यक्तिगत वहादुरी आर वलिदान की आतकवादी कार्रवाइयो के जरिये जनता को जागरूक वनाना है।

इन विश्वासो पर अमल करते हुए रिपब्लिकन सघ ने गुप्त अड्डों से निकल भारतीय जनता के सामने आने आर अपनी कार्रवाइयो की पूरी जिम्मेदारी स्वीकार करने का फैसला किया। 8 अप्रैल 1929 को केंद्रीय विधान परिषद म वित्त सदस्य ने मजदूर विवाद और जनसुरक्षा विधेयकों को एक विशेष अध्यादेश के जरिय लागू करने की घोषणा की ही थी कि इस निरकुश दमन क विराध के प्रतीक रूप मे भगतसिह ओर वटुकेश्वर दत्त ने दर्शकदीर्घा से सरकारी कुर्सियो की ओर एक वम फेंका। उन्होंने सदन में रेड पेम्फलेट नाम से प्रकाशित पुस्तिकाआ की प्रतिया भी फेंकीं। कोई घायल नहीं हुआ क्योकि फूटने वाला वम मारक नहीं था। क्रांतिकारिया ने किसी को मारना या घायल करना नहीं चाहा था लेकिन जैसा कि पुस्तिकाओं में वताया गया था उनकी कोशिश थी कि 'वहरे सुनें'। उसके बाद उन्हाने अपने को यह सोचकर गिरफ्तार करा लिया ताकि वे अदालत को एक मच के रूप म इस्तेमाल करके जनता पर अपनी विचारधारा स्पष्ट कर सकें। कम्युनिस्टा ने भी मेरठ म यही करने की कोशिश की थी।

कम्युनिस्ट मजदूर सगठनकर्ताओं ओर हिंदुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन सघ की विचारधारा में कुछ मूलभूत पहलुओं को लेकर भिन्नता थी। लेकिन उनके तरीकों आर सिद्धाता म वहुत सी समानताएं स्पष्ट हैं। आमतार पर दाना ही गुटा ने जनता के सामने ब्रितानी साम्राज्यवाद की विभाजक चाला ओर उसके वर्वर दमन के विरुद्ध खुली चुनाती रखी। क्योंकि जनता साम्यवाद के लिए तयार नहीं थी आर सुविधाहीन निम्न मध्यम वग मे सन् 1905 के आदोलन के दिनों

न केवल उनकी स्वतत्रता से वंचित रखा है बल्कि वह जनता के शोषण पर टिकी हुई है। उसने भारत को आर्थिक राजनतिक सास्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बरबाद कर दिया है। अत हम मानते है कि भारत का निश्चय हो ब्रिटेन से सबध तोड कर पूर्ण स्वराज प्राप्त करना चाहिए।

लेकिन जिन कारणों से घोषणापत्र न हर वर्ग और गुट को समान ढग से प्रभावित किया था उन्होंने कुछ मुद्दों पर विचार भी पेश किया। प्राचीन हस्तशिल्प और कृषिजन्य पैदावार सदियो से भारतीयों के जीवनयापन का सहारा थी। उनके विनाश को देश की आर्थिक बरबादी का कारण बताया गया था। नये रूपो मे धन को निरतर ब्रिटेन भेजते रहने की भी चर्चा की गयी थी। लेकिन आधुनिक आयोगीकरण की समस्याओं का कोई जिक्र नहीं किया गया था। हालांकि यह भी उसी अनुपात म ब्रितानी पक्षपात का शिकार हुआ था। राजनतिक बरबादी का दोष 'शिक्षा की प्रणाली' को दिया गया था जो स्पष्टीकरण के रूप में सचमुच पर्याप्त नहीं था। घोषणापत्र के अनुसार आध्यात्मिक बरबादी का कारण अनिवार्य निरस्त्रीकरण था। भारतीयों को हथियार रखने की अनुमति नहीं थी। देश में विदेशी सेना ने पड़ाव डाल रखा था। आतरिक सुरक्षा के लिए विदेशी सेना पर आश्रित रहने की भावना पैदा हो गयी थी। इन सभी के परिणामस्वरूप स्वतत्रता के सघर्ष में हथियार के रूप में गाधीवादी अहिंसक नागरिक अवज्ञा का औचित्य सामने आया।

हमारी यह मान्यता है कि स्वतत्रता प्राप्त करने का सबसे प्रभावकारी रास्ता हिंसा से होकर नहीं गुजरता है। अत जहा तक सभव हो सकेगा हम स्वच्छिक ढग से ब्रितानी सरकार से अपने सबधो को खत्म कर देने की तयारी करेंगे। हम नागरिक अवज्ञा के लिए तयार होंगे जिसमें करो का भुगतान न करना भी शामिल होगा। हमारी निश्चित धारणा है कि अन्याय जान की स्थिति तक म यदि हम हिंसा का सहारा न लेकर स्वेच्छा से दी जाने वाली अपनी सहायता बद कर दे और करों की अदायगी रोक दें तो इस अमानवीय शासन का अंत निश्चित है।

इसके बाद एक वाक्य था जिसमे पूर्ण स्वराज की स्थापना के लिए काग्रेस से समय समय पर मिलने वाले निर्देशो पर अमल करने का वायदा था।

जिस "समुद्धा विनाश" ने देश को आच्छादित कर रखा था उसके विश्लेषण म समाजवादी विचारों की गंध नहीं था। कार्यकारिणी समिति ने जो तरीका अपनाया था वह था विदेशी शासकों म हृदय परिवर्तन के आग्रह का। लेकिन इसकी सफलता शासक वर्ग के रवैये पर आश्रित था।

इसी समय गांधीजी न अपने पत्र यग इंडिया म एक लेख लिखा जिसमें प्रशासनिक सुधार के 11 सूत्रों का प्रतिपादन था। उनका विश्वास था कि यदि इरविन न सुधार के उन सूत्रो को स्वीकार कर लिया तो नागरिक अवज्ञा आदोलन रोका जा सकेगा। अभी भी वह अपनी

कार्रवाइयो की योजना को लेकर निश्चित नही थे। महान भारतीय कवि और राष्ट्रवादी तथा कहीं अधिक परिवतनकामी रवींद्रनाथ टैगोर ने पूछा तो गाधीजी ने उत्तर दिया

> म रात दिन क्रोधान्मत्त होकर सोच रहा हू लेकिन कोई रोशनी अधेरे के बाहर आती दिखाई नहीं देती ह।

कुछ देर स, याना 6 मार्च 1930 को उन्होने इरविन को पत्र लिखते हुए उन बुराइया को तत्काल समाप्त करने की माग की जिनका जिक्र उनके 11 सूत्रीय लेख म था। उन्होंने पत्र में यह सकेत किया था कि यदि मागें स्वीकृत नहीं हुई तो उन्हे ब्रितानी कानूनो को एसे तरीके स तोडना पडेगा जो किसाना को ग्राह्य हागा। जवाहरलाल नेहरू न अपन जीवनचरित में विवशतापूर्वक टिप्पणी की

> जब हम लोग विशेष ढग से स्वतत्रता की बात कर रह थे तब राजनतिक आर सामाजिक सुधारों की सूची बनाने का क्या आचित्य था? जब गाधीजी ने एसा कहा ता क्या उनका तात्पर्य भी वही था जो हमारा था या हम लागा न कोई आर भाषा बोली थी?

नमक सत्याग्रह

अतत गाधीजी ने निश्चय किया। वह 12 मार्च 1930 का अपने चुने हुए 78 अनुयायियो के साथ साबरमती आश्रम छोड देंगे आर गुजरात के गावों से होते हुए 200 मील दूर समुद्र तट पर स्थित दाडा तक की पदल यात्रा करगे। वहा पर वह अपने अनुयायियों के साथ खुले ढग से कानून तोडते हुए समुद्र से नमक बनायेंगे। गाधीजी की दाडी यात्रा के साथ साथ देशवासिया में आमतार पर राष्ट्रीय चेतना की एक बिजली दाड गयी। एक दुबली पतली किसान-सी दिखनी आकृति—अपनी छडी के सहारे कदम रखते हुए गाधीजी जैसे-जसे आगे बढ रह थे पूरी राह म ग्रामीण जनता उनके दर्शन के लिए उमडती आ रही थी। वह नमक कानून ताडने जा रह थे। क्याकि सरकार द्वारा कर लगान के कारण रोज की जरूरत की एक चीज की कीमत बढ गया थी। स्वयसवकों के झुड क झुड आकर उनके साथ हात गय। एक शांतिपूर्ण कारवा दाडी की आर बढ रहा था।

सारे देश म बड़े शहरा के निम्न मध्यम वग क लागों में उत्साह की एक तीव्र लहर दौड़ गयी। इसकी एक अभिव्यक्ति था नागरिक अवज्ञा आन्दोलन में स्त्रिया का प्रवेश। 30 अप्रल के यग इंडिया म गाधीजी ने भारतीय स्त्रियों स चरखे पर सूत कातने आर अपने घरों के एकान्त से बाहर निकलकर विदेशी वस्तुए और शराब बचन वाली दूकाना तथा सरकारी सस्थानों पर धरना देने का आग्रह किया था। इसके पहल बहुत कम आरतों न सावजनिक किस्म क राजनैतिक

प्रदर्शनों में हिस्सा लिया था। उनमें से भी अधिकतर या तो चित्तरंजन दास या मोतीलाल नेहरू जैसे राष्ट्रीय नेताओं के परिवार से संबद्ध थी या बड़े शहरों की कालेज छात्राएं थीं। इस बार अपेक्षाकृत बहुत ज्यादा औरतों ने आदोलन में हिस्सा लिया और अपने अपने को गिरफ्तार कराया। केवल दिल्ली में जो कि उन दिनों पुरानपंथी शहर था 1 600 औरतों को राजनैतिक कार्रवाइयों के लिए जेल की सजा मिली। बबई में बहुत बड़ी संख्या में प्रथम वर्ग की औरतों ने राष्ट्रीय संघर्ष में हिस्सा लिया। अंग्रेज पर्यवेक्षको स्लेकॉक ने लिखा है कि नागरिक अवज्ञा आदोलन से और किसी उद्देश्य की पूर्ति हुई हो या नहीं उसने बड़े पैमाने पर भारतीय स्त्रियों को सामाजिक मुक्ति दिलाने का महान कार्य किया। आदोलन का यह एक सकारात्मक पहलू था। 75 वर्षों के सामाजिक सुधार के आदोलन को भारतीय स्त्रियों को मुक्ति करा पाने में जो सफलता नहीं मिली थी वह इस आदोलन ने हफ्तों में प्राप्त कर ली।

इस बीच अप्रैल मई 1930 की गर्मी में कांग्रेस के छोटे बड़े स्वयसेवकों ने नमक कानून का उल्लघन किया। इसके पहले कि गाधीजी धरसना के सरकारी भडार पर सत्याग्रह करके नमक बनाते उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया। उनकी जगह पर अब्बास तयबजी आदोलन के नेता हुए। तैयबजी बबई के महान राष्ट्रवादी मुस्लिम परिवार के वशधर थे। उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरी नेता आग उगलने वाली कवयित्री और राष्ट्रवादी सरोजिनी नायडू थीं। 21 मई के श्रीमती नायडू के धरसना पर धावा बोलने के प्रयत्न का विशद वर्णन वेब मिलर नाम के एक अमरीकी पत्रकार ने किया जो घटनास्थल पर बड़ी कठिनाई से पहुच पाये थे

> यात्रा शुरू करने के पहले श्रीमती नायडू ने प्रार्थना का आग्रह किया। एकत्रित सारे लोग झुक गये। उन्होंने उद्बोधन करते हुए कहा भारत की प्रतिष्ठा आपके हाथों में है आप पर मार पड़ेगी लेकिन आप उसका प्रतिरोध नहीं करेंगे। यहां तक कि बचाव में भी आप अपने हाथ नहीं उठायेंगे।" भारी जयजयकार के साथ उनका भाषण खत्म हुआ।
>
> स्वयसेवकों ने धीरे धीरे और शांतिपूर्वक आधे मील की नमक भडार की यात्रा पूरी की। नमक के भडारों को हर ओर से पानी भरी खाइयों से घेर रखा गया था। उसकी रखवाली के लिए सूरत पुलिस के 400 सिपाही तैनात थे। उन्हे आदेश देने के लिए आधा दर्जन अंग्रेज अधिकारी थे। पुलिस के पास पाच फुटी लाठिया थीं जिनके सिरों पर लोहे जड़े थे। कटील तारों के भीतर जहा पर भडार था 25 बंदूकधारी जवान खड़े थे।
>
> धारा 144 हाल ही में लागू हुई थी जिसके अनुसार किसी भी एक जगह पर पाच आदमी से अधिक एकत्र नहीं हो सकते थे। पुलिस अधिकारियों ने यात्रा करने वालों को तितर बितर हो जाने का आदेश दिया। एक चुना हुआ दस्ता चेतावनी की चुपचाप उपेक्षा करता हुआ आगे बढ़ा देशी पुलिस के दर्जनों जवान आगे बढ़ते हुए

स्वयसेवको पर झपट पडे आर अपनी लोहेजडी लाठियों से उनके सिरो पर बतहाशा मारना शुरू किया। स्वयसेवको म से एक ने भी बचाव म अपना हाथ ऊपर नहीं उठाया मने असुरक्षित खोपडियो पर बरसती हुई लाठिया की घातक तडतडाहट सुनी। इतजार करती हुई भीड हर तडतडाहट के साथ स्वयसेवको की सहानुभूति म आहें भरती रही।

दो तीन मिनटो में जमीन घायल शरीरो से भर गयी। उनके सफद कपडो पर खून क बडे-बडे धब्बे फल गये जब पहल दस्ते के सभी लाग गिर गय तब स्ट्रेचरवाहक झपट कर वहा पहुचे आर आहतो को उठाकर ले गये। पुलिस ने वाहकों स छेडखानी नहीं की।

तब तक दूसरा दस्ता तयार हो गया। नेता उनसे आत्मनियत्रण रखे रहने की पैरवी करते रहे। स्वयसेवक आग बढे इस बार उन्हें उद्बुद्ध करन के लिए कोइ गान कोई जयजयकार नहीं हुई ऐसी कोई सभावना नहा थी जो उन्हे जख्मी हाने या मरने से बचा सके। पुलिस झपटी और उसने विधिवत और मशीनी ढग से दूसर दस्ते को धराशायी कर दिया मैंने एक के बाद एक 18 आहतो को उठाकर ले जाये जाते हुए देखा 42 जख्मी अभी भी जमीन पर पडे हुए स्ट्रेचर-वाहको के इतजार में थे। उनके शरीरों से खून बह रहा था।

इसके बाद भारतीय पुलिस के सिपाहियों का विस्तार से वर्णन था जो तितर बितर हाने क आदश का उल्लघन करने वाली प्रतीक्षारत भीड को आगे बढकर मार-मारकर गिरा रही थी। मिलर की अपनी प्रतिक्रिया थी

कई बार प्रतिराधविहीन व्यक्तियों को विधिवत मार कर खून से लथपथ कर दने वाले दृश्य दखकर म बीमार जसा अनुभव करने लगा। इतना बीमार कि मन उधर से अपनी निगाह घुमा ली मुझ असह्य क्रोध और नफरत का एसा अहसास हुआ जिसका वणन नहीं किया जा सकता।

अहिंसक सगठन लगभग कई अवसरा पर टूटा। नेताओं को बुरी तरह स उत्तजित व्यक्तियों को गाधीजी क आदेश याद रखन का आग्रह करना पड़ा। एसा लगा कि निहत्थी भीड पुलिस पर व्यापक ढग से टूट पडने ही वाली था। अग्रज पुलिस अधीक्षक अपने बदूकधारियों का एक छोटा-सा घेरा पर ल गया आर भीड पर गोली चलान को तैयार हा गया। लेकिन नेता स्वयसेवको पर नियत्रण रखन म सफल हो गये।

दोपहर क 11 बजत बजत मौसम बहुत गम हो गया था। तापमान 116 डिग्री फारनहाइट पर पहुच गया था और प्रदर्शन समाप्तप्राय था। 320 व्यक्ति बुरी तरह जख्मी हुए थ और दो की मृत्यु हुई था। उनकी सेवा करन वाले राष्ट्रवादी डाक्टरों की सख्या कम थी।

जब मिलर ने अपना सवाद विश्व प्रेस को भेजना चाहा तो उसे अधिकारियों ने तत्काल रोक दिया और बाद में उसे समर कर दिया। काफी बाद में मिलर ने उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित किया।

गाधीजी की गिरफ्तारी के विरोध में सारे देश में प्रदर्शन आयोजित हुए। बबई म भिडी बाजार बाडला और साल्पन म दगे भडक उठे लेकिन जो जुलूस यूरोपीय आवासों के रास्ते से गुजरा वह बिल्कुल शांतिपूर्ण था। मद्रास में पुलिस ने अधाधुध पिटाई की। बगाल बिहार और उडीसा म विदेशी कपडो का सबसे अधिक बहिष्कार हुआ। उत्तर प्रदेश में किसानो और जमींदारो से राजस्व न अदा करने का आह्वान किया गया। अक्तूबर, 1930 के बाद किसानों से कहा गया कि वे जमींदारो को लगान न द। मध्यप्रात म जगल कर के विरुद्ध सत्याग्रह किया गया। कर्नाटक म 'कर का भुगतान न करने का' एक सफल आदोलन हुआ।

आदोलन का तेजी से प्रसार हुआ और वह देश के दूर दराज क्षेत्रों तक पहुच गया। पश्चिमोत्तर सीमाप्रात की पश्चिमी पहाडिया म पठान आदिवासी ब्रितानी शासन के विरुद्ध प्राय विद्रोह करते रहे थे। इस प्रांत के पश्चिमी बानू और कोहाट के नदी घाटी क्षेत्र और डेरा इस्माइल खा और पशावर के लोग स्थानीय सरदारो के अतर्गत अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण ढग से रह रहे थ। कारण वहा खेतीबाडी की सुविधाए थीं।

पेशावर के नजदीक के एक गाव उतमनजई के एक सरदार खान अब्दुल गफ्फार खा ने पहली पठान शिक्षा समिति शुरू की थी। उन्हाने सन् 1919 म हिजरत और पठानो के समर्थन मे कार्य किया था जिसके कारण उन्हें पहले जेल में और फिर एक लबे समय के लिए प्रात से बाहर निर्वासन में रखा गया। सन् 1929 के कुछ पहले ही वह लोटे थे। उनके बडे भाई डाक्टर खा साहब को आधुनिक शिक्षा का लाभ प्राप्त था। अब्दुल गफ्फार खा ने बडे भाई के साथ अहिसक गाधीवादी आदोलन के समर्थन में बहुत से पठानों को सगठित किया था। वह अपनी चारित्रिक शक्ति और दृढ़ता के लिए इतने अधिक लोकप्रिय थे कि उन्ह 'सीमात गाधी' कह कर पुकारा जाने लगा था। उन्होंने पहले पराम जिगा या क्वाली समिति की एक राष्ट्रवादी शाखा का सगठन किया। यह शाखा काग्रेस की स्वयसेवक टुकडियो की तरह थी जो खुदाई खिदमतगार नाम स लोकप्रिय हुई वे अपनी वर्दी के कारण लाल कुरती (रेड शर्ट) के रूप में भी पुकारे जाने लगे। उन्होने पठानों की क्षेत्रीय राष्ट्रवादिता के लिए तथा उपनिवेशवाद और हस्तशिल्प के कारीगरो को गरीब बनाने के विरुद्ध आवाज उठायी। उन्हे गरीब किसानो और शहर के हस्तशिल्प के कारीगरों दोनों का व्यापक समर्थन मिला। 1930 में खुदाई खिदमतगारों की सख्या 80 हजार थी। देश के दूसरे भागो में गाधीवादी नेताओ को अपने अनुयायियो पर नियत्रण रखने में जितनी कठिनाई हुई उससे कहीं अधिक कठिनाई खान अब्दुल गफ्फार खा को अपने अनुयायियो की हिसक उत्तेजना पर नियत्रण करने में हुई

20 अप्रैल 1930 को बकरीद के अवसर पर बडी सख्या में पेशावर मे गरीब किसान जमा होने वाले थे। नागरिक अवज्ञा आदोलन इसी मोके पर शुरू किया जाने वाला था। सीमा के

बहुत से कबायली मदानी इलाकों मे मासमी काम खत्म करन के बाद ईद के उत्सव में भाग लेने के लिए उपस्थित थे आर जल्द ही अपन घर लाट जान वाले थे। जब स्थानीय काग्रसी जन गिरफ्तार हो गये तो शहरी भीड विराध में उठ खडी हुई आर उसने उ ह पुलिस की गिरफ्त स छुडा लन की कोशिश की। कबायली भी उस भीड़ के साथ हा गये। आक्रोश बढ गया और दोना आर से गालिया चलीं। एक जनविद्राह शुरू हो गया। पशावर के विद्रोह को कुचल देने के लिए जो ब्रितानी बख्तरबद गाडिया भेजी गयीं थीं, उ हें रोकने क लिए अवरोध खडे कर दिये गये। अधिकारिया आर नगर के अभिजात वर्ग के लोगा ने सना की छावनी म शरण ली। इसी के साथ साथ लडाकू सिख सुधारको आर राष्ट्रवादी अकालियों ने सेना के भारतीय सिपाहियों में विद्रोह भावना प"ा करना शुरू कर दिया था। जब रायल गढवाल राइफल्स के दो प्लाटूना के क्रफहिल सनिकों को भीड़ पर गोली चलाने का आदेश "िया गया तो उन्होने अपने एक साथी चद्रसिह गढवाली के अनुरोध पर ध्यान "िया आर गोली चलाने से इकार करते हुए अपने मुसलमान पठान भाइयो के साथ मित्रवत व्यवहार करना शुरू कर दिया। यह एक ओर प्रमाण था 'फूट डालो आर राज्य करो' की ब्रितानी नीति की दुर्बलता का। यदि इन शोषित लोगों को सगठित रहने की शिक्षा पहले ही दे दी जाती तब नीति सफल न हा पाती।

छावनी स आये अग्रेज सनिका ने ब्रितानी प्लाटूनो को घेर लिया और बाद मे उन पर सैनिक न्यायालय के कानून के अनुसार (कोर्ट मार्शल) मुकदमा चला। उनके कुछ नेताओ को विद्रोह करने क अपराध में मृत्युदड दिया गया। बहरहाल, मई के प्रारभ में पहाडिया के अफरीदी और मुहम्मद कबीले के लोग विद्रोह मे शामिल होने के लिए पेशावर तक पहुच गय। पजाब म विशेषकर अकालिया की तरफ से पशावर के प्रति एकता का प्रदर्शन किया गया। उन्होने वहा के स्थानीय विद्रोहिया की सहायता के लिए अपना एक दस्ता भेजा। इस दस्ते का झलम नदी पर ब्रितानी सेनिका ने रोक लिया। अतत ब्रितानी सेना दड देने की मुहिम पर पश्चिमोत्तर सीमा प्रान म प्रवेश कर गयी आर कबालियों को खदेडकर पहाडियों मे वापस भगा दिया।

पूर्वी बगाल के बदरगाह चिटगाव मे एक कुशल आतकवादी सूर्यसेन के नेतृत्व मे वही के निम्न-मध्यवग के युवका न एक सशस्त्र विद्रोह करने की कोशिश की थी। श्री सेन ने सन् 1918 म बगाल क एक क्रातिकारी गुट के सदस्य के रूप में अपनी कार्रवाइयों की शुरुआत की थी। बाद में वह सन् 1921 म असहयोग आदोलन में शामिल हुए आर एक स्थानीय राष्ट्रवादी स्कूल में शिक्षक बन गये। इन गुटों न एक साथ ही पूर्व बगाल के शस्त्रागारों पर आक्रमण करने आर सशस्त्र विद्रोह करने की योजना बनाई

सूर्यसेन के नायब अबिका चक्रवर्ती, एक स्थानीय काग्रेसी लोकनाथ बाल तथा बाद के वर्षो म एक मशहूर कम्युनिस्ट गणेश घाष ने स्थानीय स्कूल-कालेज के छात्रों को क्रांतिकारी कार्रवाइयो के लिए प्रेरित और सगठित किया। इनमें आनद गुप्त आर तगरा बाल (टाइगर) जैसे तरुण आर कल्पना दत्त तथा प्रीतिलता वादेदार सरीखी साहसी युवतिया थीं।

सूर्यसेन न 18 अप्रेल 1930 को चिटगाव नगर मे भारतीय रिपब्लिकन सेना की चिटगाव

शाखा की ओर से एक घोषणापत्र जारी किया जिसमें भारतीयो से ब्रितानी शासन के विरुद्ध उठ खडे होने का आह्वान किया गया था। उसी रात अपने सहयोगियों सहित चिटगाव म चार केद्रो पर यूरोपिया पर आक्रमण करने के लिए निकल पडे। भेष बदलने की गरज से उन्होने ब्रितानी भारत की सेना की वर्दिया पहन लीं और 50 युवकों के साथ पुलिस शस्त्रागार पर आक्रमण किया। यह घटना चिटगाव शस्त्रागार आक्रमण के नाम से जानी गयी।

लेकिन जल्दबाजी में आक्रमणकारी लूटी हुई लेविस बदूकों और राइफ्लो के लिए कारतूस ले जा पाने म सफल नहीं हुए। पुलिस के सहायक महानिरीक्षक की देखरेख में एक सरकारी टुकडी ने (जो शस्त्रा आदि की दृष्टि से बहुत सपन्न नहीं थी) उन पर आक्रमण कर दिया और उन्हे नगर से खदेडकर चिटगाव के पार की पहाडियो म चले जाने पर विवश कर दिया। 22 मई को ब्रितानी रेजीमेट ने अपने जलालाबाद पहाडी क्षेत्र में 57 क्रातिकारियों को घेर लिया लेकिन उनमे स बहुत से क्रातिकारी गुरिल्ला युद्ध शुरू करने के लिए बच निकलने मे सफल रहे। वहा 61 ब्रितानी सैनिक मरे पडे थे। तेगरा बाल गोलीचालन शुरू होने के बाद ही घायल हो गये थे। लोकनाथ से उन्होने अतिम शब्द कहे म जा रहा हू, युद्ध अत तक करना।

बगाल म क्रांतिकारी आतकवाद इसी के बाद फैला। अगस्त म ढाका के मिटफोर्ड हास्पिटल स्कूल के छात्र विनय बोस ने पुलिस के एक वरिष्ठ अंग्रेज अधिकारी की (ढाका में) गोली मार कर हत्या कर दी और गिरफ्तारी से बच निकले। श्री बोस दिसबर मे बादल और दिनेश के साथ कलकत्ता के डलहाजी स्क्वेयर स्थित सरकारी मुख्यालय राइटर्स बिल्डिग्स में घुसे। उन्होने जेलो के महानिरीक्षक का उसके कार्यालय म ही गोली मार दी और गलियारो से भागते हुए सामने पडने वाले यूरोपीय अधिकारियो को अपनी पिस्तालो का निशाना बनाते गये। पकडे जाने के बजाय बादल ने साइनाइड खाकर अपना अत कर दिया। विनय और दिनेश ने खुद को गोली मार ली। विनय कुछ दिनों के बाद मर गये। दिनेश बच गये थे। उन पर मुकदमा चला और उन्हे फासी दी गयी।

आतकवाद को उत्तर भारत में दक्ष चद्रशेखर आजाद ने जिन्दा रखा। पुलिस ने उनके साथियों को पकड लिया और बम आदि मिलने के स्रोतो का पता लगा लिया लेकिन वह गिरफ्त म नही आ सके। फरवरी 1931 मे पुलिस के विश्वासघात के कारण इलाहाबाद के एलफ्रेड पार्क म लडते लडते वह वीरगति को प्राप्त हुए। उनका शरीर गोलियो से छलनी हो गया था। उसके पहले सन् 1930 में सरकार ने लाहौर षड्यत्र केस अध्यादेश के अतर्गत ऐसे उच्च कानूनी अधिकार प्राप्त कर लिये जिनकी मदद से वह गवाही के सामान्य नियमो और अपील के अधिकार के बिना भगतसिह और उनके साथियो पर मुकदमे चला सकती थी। 7 अक्तूबर को भगतसिह सुखदेव और राजगुरु को मृत्युदड और उनके दूसरे साथियो को आजीवन देशनिकाल की सजा दी थी। उनमे से बहुतों को पोर्टब्लेयर (अडमान) स्थित कुख्यात सेलुलर जेल म नजरबद रखा गया।

क्रातिकारी आतकवादियो के ये आक्रमण पूर्वी बगाल और उत्तर प्रदेश के निम्न मध्यम

वर्ग के युवकों की देशभक्ति के आवेग का प्रतिबिंब सामने लाते है। ये आवेग राष्ट्रीय आदोलन के परपरागत रास्ता के जरिये अभिव्यक्ति नहीं पा सकते थे। अहिसा का गाधीवादी दर्शन भी उनकी कल्पना को आकर्षित नही कर पाया, अत वे आतकवाद के रास्ते पर मुड़े। लेकिन उसमें हिस्सा लेने वाले लडके लडकियों के साहस के बावजूद उनकी हिसक कार्रवाइयो म ही उनके अभिशाप के बीज छिपे हुए थे इसलिए सरकारी पुलिस ओर सेना की शक्ति के सामने उनकी असफलता निश्चित थी। ब्रितानी सरकार सचमुच भयभीत नहीं थी। उसने केवल एक कठोर निश्चय किया था। क्रांतिकारी आतकवादियो की जड़ें उखाड फकने आर उन्हे बरबाद कर देन का एक कारण यह था कि आतकवादी आक्रमणा की स्फूर्ति में बाद में एक सहानुभूतिपूर्ण जनविद्रोह नहीं हुआ। चूंकि आम जनता को आतकवादियों ने न तो सगठित किया था आर न ही उस राजनीति के रग में रगा था अत वह हिंसक क्रांति लाने या उसमे हिस्सा लेने के लिए तैयार नहीं थी।

पर अन्य जगह पर मजदूरों द्वारा जन विद्रोह हुआ था। वह जगह थी शोलापुर दक्षिणी महाराष्ट्र का रूई पैदा करने वाला जिला। यहा पर नागरिक अवज्ञा आदोलन की शुरुआत, स्थानीय काग्रेस समिति द्वारा स्थापित 'युद्ध परिषद' द्वारा मई में हुई नगर में राष्ट्रीय झडा फहराया गया था जबकि पुलिस तथा ब्रितानी राज के वफादार नागरिक आर अधिकारियो ने भागर रेलवे स्टेशन पर शरण ली थी।

शालापुर का समाचार सुनकर ब्रितानी अधिकारियों ने ब्लैकआउट कर दिया। दो हजार अग्रज सनिका को विद्रोह को दबाने के लिए शालापुर भजना पडा। बहुत से विद्रोही क्रांतिकारियो को या तो फासी के तख्ते पर लटका दिया गया या जेल मे डाल दिया गया।

इन क्रांतिकारी कार्रवाइयो के साथ साथ बहुत से किसान आदोलन फैले। इनको बढाने का कारण सन् 1930 40 के बीच का 'कर न चुकाने का' आदोलन था। लेकिन इसकी जडे भू स्वामिया द्वारा किसाना क शोषण की गहराई म थी।

दुनिया भर के पूजीवादियों की सकट की स्थिति के कारण कृषिजन्य पदावारो की कीमत अतर्राष्ट्रीय बाजार में गिर गयी थी। जैसे जैसे बिक्री म किसाना के मुनाफे का हिस्सा कम हुआ, वे भूमिस्वामिया को लगान के रूप म और सरकार को राजस्व तथा दूसरे करों के रूप में बकाया अदा करने मे निरतर असमर्थ होते गये।

उत्तर प्रदेश की काग्रेस समिति (जिसके अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू थे) ने मार्च 1930 में एक प्रस्ताव पास करके सुझाव दिया कि भूमि कर में कमी करने साहूकारों को केवल आशिक मुआवजा देकर सभी कर्जो के भुगतान की कानूनी मोहलत लेने आर किसानों को बेदखल करने के भूस्वामियों के स्वेच्छिक अधिकार को सीमित करन के मसलो को भी राष्ट्रीय कार्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। काग्रेस कार्यकारिणी समिति ने केवल भू-कर म कमी का प्रस्ताव स्वीकार किया जिससे किसान आर भूस्वामी दोनों ही सतुष्ट हुए। उसने दूसरे मसलों को स्वीकार नहीं किया।

पश्चिम वगाल के मिदनापुर जिले म गुरखा सनिको और सामूहिक जुर्माना करने वाली पुलिस ने जोर जुल्म की वागडोर विलकुल ढीली कर दी। यहा तक कि उन्होंने औरता तक को नही बख्शा। किसानो ने खुशी खुशी सारे विनाश को वर्दाश्त किया। उनकी झोपडिया आर अन्य सपत्ति वरवाद कर दी गई लेकिन उसके वावजूद उन्होंने कर देने से इकार कर दिया।

पहला गोलमेज सम्मेलन

यह सारी विपत्ति पैदा करने वाले साइमन आयोग ने सन् 1930 क मध्य म अतत अपनी रपट प्रस्तुत की। नववर म ब्रितानी सरकार ने लदन म रेम्जे मैकडोनाल्ड की खुद की अध्यक्षता में पहले गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया। यह सम्मेलन भारत क सर्वदलीय सम्मलन का एक सस्करण था। काग्रेस ने स्वभावतया उसका वहिष्कार किया। अन्य भारतीय सदस्यों तथा देशी राजाओं के प्रतिनिधियो ने सहमति दी कि देशी रियासतो को शमिल करके एक भारतीय सघ वनाना चाहिए जिसम ससदीय प्रणाली की सरकार हो। औपनिवेशिक हसियत का सामूहिक दायित्व पर आधारित कार्यपालिका का एक मत्रिमडलीय स्वरूप सम्मेलन को स्वीकार्य था।

इसके तत्काल बाद ही कार्यकारिणी के उन सदस्यो को रिहा कर दिया गया जा जेल म थे। गोलमेज सम्मलन के प्रतिनिधियो के भारत लोटने पर तजवहादुर सप्रू गाधीजी से मिले ओर उन्हे काग्रस के नाम पर लार्ड इरविन से मिलने ओर वातचीत करने के लिए राजी कर लिया।

इसी दौरान दिसबर 1930 मे मुस्लिम लीग ने इलाहावाद के अपने सम्मेलन म नागरिक अवज्ञा आदोलन का खुलकर विरोध किया। इसी करण इरविन का यह दावा करने का मौका मिल गया--क्योकि गाधीजी उस वग के हिता की वात नहा करते अत काग्रस भारत क सभी लोगो की प्रतिनिधि नहीं है।

गाधी-इरविन समझौता

17 फरवरी से 5 मार्च 1931 तक गाधीजी इरविन से समझाते की वातचीत करते रहे। काग्रेस का स्वतत्रता का प्रस्ताव आर 26 जनवरी का वायदा दोना की समझाते की वातचीत के दौरान उपेक्षा की गयी। इससे नेहरू ओर दूसरे वामपथी नेता वहुत दुखी हुए। गाधीजी ने सहमति दे दी थी कि पहले गोलमेज सम्मेलन म जो समझाते हुए थे उसके आधार पर विचार विमर्श का सिलसिला शुरू होगा। सरकार द्वारा यह आश्वासन दिये जान पर कि हानि उठाने वाला को हर्जाना मिलेगा नागरिक अवज्ञा आदोलन समाप्त कर दिया जायगा। 5 मार्च 1931 को दिन के ढाइ वजे वातचीत के परिणामा पर विचार विमर्श करने के लिए कार्यकारिणी की बैठक हुइ आर उसमें दो वग हो गये। समझाते की वातचीत के लिए इरविन के तैयार होन को वहुत

से लोगों ने काग्रेस की सफलता माना आर उसकी प्रशसा की। कुछ अन्य लोग उससे सहमत नहीं हुए। महात्मा गाधी ने निजी तार पर नेहरूजी के सामने अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण किया। वाद मे नेहरूजी ने लिखा

> यह अर्थ लगाना कि सराकर के स्वरूप को लेकर समझाते की दूसरी धारा ने विचार विमर्श की सभावना पंदा की मरी समझ से ऐसा तर्क था जो जवरन थाप दिया गया था। म कायल नही हुआ लेकिन उनकी वातो स मुझे थोडी सात्वना मिली। एक दो दिन तक म अनिश्चय म पडा रहा। नही जानता था कि क्या किया जाय। उस समझौते को बचाने का कोई प्रश्न नहीं था तव

वास्तव मे 5 मार्च को दोनों पक्षा ने समझाते पर हस्ताक्षर किय। उसे 'गाधी-इरविन समझौता' के नाम से जाना गया।

गाधीजी ने वायसराय के साथ अपनी वातचीत मे वहुत से मसले उठाये थे। एक प्रश्न उन राजनतिक बंदियों के क्षमादान को लेकर था जिन्हे विशेष अध्यादेशा के अतर्गत हिसक कार्रवाइयों के लिए दडित किया गया था। वस्तुतया गाधीजी ने उन अध्यादेशा को वापस लेने की परवी की थी। उन्होन उन लोगा को हर्जाना दिलाने की वात की थी जिनकी जमीने जब्त कर ली गयी थीं। गाधीजी द्वारा उठाये गये इन सभी प्रश्नो को लेकर इरविन अपनी वात पर अडे रहे। उन्होन कुछ क्षेत्रों में भूमिकर कुछ कम करन की रजामन्दी जाहिर की लकिन भगतसिह, सुखदेव आर राजगुरु के मृत्युदड की सजा खत्म कर देने के वडे मसले पर उन्होंने गाधीजी के आग्रह को न केवल दृढतापूर्वक अस्वीकार कर दिया वल्कि यह भी कहा कि वह उसे स्थगित करने को भी तैयार नहीं है। 23 मार्च, 1931 को तीना को फासी पर लटका दिया गया। अनेक वहाना की आड म सरकार ने दमनकारी कदमो मे भी किसी तरह की ढिलाई नहीं की। गाधीजी ने जो रियायतें चाही थी, उन्हें पाने म सफल नही हुए।

कराची काग्रेस

भगतसिह सुखदेव और राजगुरु का फासी दिये जाने के 6 दिन वाद 29 मार्च को लाहार के वाद पहली वार कराची मे काग्रेस का अधिवशन हुआ। काग्रेस के आधिकारिक इतिहास लेखक पट्टाभि सीतारामय्या के अनुसार उस वक्त भगतसिह का नाम सारे देश म गाधीजी की ही तरह लाकप्रिय हो गया था। वस्तुत गाधीजी को कराची पहुचने पर एक विरोधी प्रदर्शन का सामना करना पड़ा। अधिवेशन में आतकवादिया की वीरता आर उनके व्यक्ति-वलिदान की प्रशसा में एक प्रस्ताव स्वीकृति क लिए प्रस्तुत किया गया था। यह काग्रेस की अहिसक कट्टरपंथिता के विरुद्ध था आर गाधीजी ने उस केवल तव स्वीकार किया जव उसकी मूल शब्दावली में सशोधन किया गया। प्रस्ताव नये रूप म यों था

किसी भी तरह की राजनैतिक हिंसा से अपने को अलग रखते और उसे अमान्य करते हुए कांग्रेस उनकी वीरता और बलिदान के प्रति अपनी प्रशंसा को लिखित ढंग से व्यक्त कर रही है।

सुभाषचन्द्र बोस के समर्थन से युवक स्वयंसेवकों ने उस संशोधन का विरोध किया था लेकिन वे बहुत थोड़े से मतों से पराजित हो गये।

कुल मिलाकर कराची अधिवेशन का महत्वपूर्ण राजनैतिक प्रस्ताव मद्रास और कलकत्ता अधिवेशनों की समझौते की स्थिति पर वापिस आ गया। इसने पूर्ण स्वराज की मांग की लेकिन गांधी और इरविन के उस समझौते को भी स्वीकार किया जिसने लक्ष्यों पर पुनर्विचार करने का रास्ता खोल दिया था। अस्वाभाविक नहीं है कि जनवरी 1930 की उत्साह की लहर कुछ हद तक कम होने लगी। उस वक्त की स्थिति में जनता की हिस्सेदारी की संभावनाएं बहुत कम थीं। दूसरे कदम का फैसला नेताओं को ही करना था।

लेकिन एक अर्थ में कराची कांग्रेस ने जनवरी 1930 के रास्ते पर एक अगला कदम रखा। मौलिक अधिकारों और आर्थिक नीति पर एक प्रस्ताव पास हुआ जो भविष्य के जनतंत्र में कांग्रेस के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रमों का रूप प्रस्तुत करता था। इसके स्वरूप का निर्धारण स्पष्ट ढंग से पहले नहीं किया गया था। इसके मुख्य मुद्दे थे

1. लोकसम्मत मौलिक अधिकारों का आश्वासन
2. जनता के सभी वर्गों से जातीय और धार्मिक लाचारियों की समाप्ति
3. विभिन्न क्षेत्रों की राष्ट्रीय भाषाओं का विकास और भाषाई आधार पर भारत के प्रान्तों का गठन
4. करों में कमी
5. बहुत सी देशी रियासतों और पिछड़े क्षेत्रों में प्रचलित बेगार की प्रथा की समाप्ति
6. नमक कर की समाप्ति
7. मजदूरों के विशेषाधिकारों की सुरक्षा। जैसे काम करने की स्वस्थ स्थितियां, न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण, बेरोजगारी का बीमा, आठ घंटे प्रतिदिन का काम और छुट्टियों का वेतन।

यद्यपि कराची कांग्रेस ने अर्द्धसामंती भू स्वामियों की बड़ी जागीरों की समाप्ति की मांग करने में अपने को असमर्थ पाया लेकिन उसने भूमि सुधार संबंधी अपना एक कार्यक्रम तैयार करने का काम शुरू कर दिया। इससे साबित होता है कि सन् 1930 की कार्रवाइयों में वामोन्मुखी क्रांतिकारी प्रवृत्तियों की वास्तविक असफलता के बावजूद कांग्रेसी नेताओं को किस तरह पिछले चार वर्षों के जन विद्रोह के परिणामस्वरूप परिवर्तनवादी जनतंत्र के कम से कम कुछ उसूलों को स्वीकार करना पड़ा। स्वतन्त्रता संग्राम के शेष वर्षों में राष्ट्रवादी नेताओं को इन्हीं जनतांत्रिक सिद्धांतों के झंडे के नीचे चलना पड़ा। इस तरह, अगर एक तरफ कराची अधिवेशन समझाने-बुझाने के तर्क के जरिये भीतरी और बाहरी मतभेदों को समाप्त कर देने में गांधीवादी

दर्शन की राजनैतिक सफलता का द्योतन करता है तो दूसरी ओर वहीं से काग्रेस के कार्यक्रम में परिवर्तनकारी समाजवादी प्रवृत्तियो के प्रभावशाली ढग से आने का सूत्रपात होना है।

दूसरा गोलमेज सम्मेलन और साप्रदायिक प्रश्न

काग्रेस अधिवेशन के तत्काल बाद ही कराची मे किसान मजदूर पार्टी आर अखिल भारतीय युवा लीग के भी सम्मेलन हुए। किसान पार्टी ने मजदूरो आर किसाना के प्रश्न पर एक एसा कार्यक्रम स्वीकार किया जो काग्रेस के 'मालिक अधिकारो ओर आर्थिक नीति' के प्रस्ताव स एक कदम आगे था। युवा लीग ने पूर्ण स्वराज के सघर्ष को जारी रखने की माग की। इसने गाधी-इरविन समझौते आर दूसरे गोलमेज सम्मेलन में काग्रेस के भाग लेने के निर्णय की भी निदा की।

दूसरी तरफ साप्रदायिकता की समस्या तीव्रता से वढ रही थी। 24 और 25 मार्च 1931 को कानुपर म हिसक साप्रदायिक दगे हो चुके थे जिनमे दोना ओर के कुछ व्यक्ति मारे गये थे। यह साप्रदायिक दगों के दोवारा फलने का परिचायक था। इसके वाद ही जिन्ना तथा प्रतिक्रियावादी मुसलमानो के गुट ने काग्रेस के राजनतिक कार्यक्रमा स अपने का अलग कर लेने की घोषणा की।

सन् 1931 मे अप्रल से लेकर जून तक, काग्रेस गोलमेज सम्मेलन में अपने उस दृष्टिकोण पर विचार विमर्श करती रही जो उसने प्रस्तुत किया था। सरकार एक वडे प्रतिनिधिमडल का स्वीकार करने के लिए तयार थी लेकिन इसके बावजूद काग्रेस का प्रतिनिधित्व करने के लिए सिर्फ गाधीजी को चुना गया। यदि गाधीजी के साथ डा असारी जसे राष्ट्रवादी मुसलमान भी लदन गये होते तो मुमकिन है कि ब्रितानी जनमत को यह विश्वास दिलाया जा सकता था कि काग्रेस निश्चय ही प्रगतिशील मुसलमाना के मत का प्रतिनिधित्व करती हे। इसके बदले काग्रेस ने यह उम्मीद की थी कि सम्मेलन मे डा असारी का मनोनयन उनके अपने ही अधिकार के नाते हो जायेगा। सुभापचद्र वोस ने भी बताया कि गाधीजी ने यह कहना शुरू कर दिया था अगर मुसलमाना ने नये सविधान म प्रतिनिधित्व ओर निर्वाचन मडल के प्रश्न पर सयुक्त माग की तो वह उसे स्वीकार कर लेंगे। वाद मे गाधीजी का स्पष्ट ढग से यह कहना कि पृथक निर्वाचन मडल की माग स्वीकार नहीं करेगे सुभापचद्र वोस की दृढता और राष्ट्रवादी मुसलमाना के निम्नलिखित वक्तव्य का ही परिणाम था

> यदि किन्हीं कारणो से महात्मा ने हिदुआ ओर मुसलमानों के लिए एक ही निर्वाचन मडल की माग त्याग कर प्रतिक्रियावादिया की माग स्वीकार की तो वे (राष्ट्रवादी मुसलमान) महात्मा ओर प्रतिक्रियावादी मुसलमानों का विरोध करगे क्योकि वे इस

का एक रास्ता पहले से ही ढूंढ निकाला था। गाधीजी ने संविधान सबधी सुधार के मसले को अभी भी प्राथमिकता दी लेकिन उन लोगो ने इसके पहले साप्रदायिक एकता पर बातचीत शुरू करने का बार बार आग्रह किया। अल्पसख्यक समिति में इस मुद्दे पर गतिरोध पदा हो गया। इस समिति की बठक की अध्यक्षता प्रधानमत्री न की थी। उन्होंने कहा कि सभी सदस्य अपने हस्ताक्षर के साथ साप्रदायिक प्रश्न के हल के लिए एक सयुक्त प्रार्थना पत्र उन्हे इस आश्वासन के साथ दें कि वे उनके निर्णय को स्वीकार करगे। सभी सदस्य इस पर राजी नहीं हुए। हो भी नहीं सकते थे। अग्रेज जानते थे कि विभिन्न साप्रदायिक नेता एक दूसरे को काटने की कोशिश करेंगे। गाधीजी ने समिति में बहुत तर्कपूर्ण ढग से अपना पक्ष प्रस्तुत किया कि यदि हमारे पारस्परिक भेद ब्रिटिश आधिपत्य के कारण उत्पन्न नहीं है और यदि उन्होंने जिद का रूप धारण कर लिया है तो इसका समाधान स्वराज संविधान का आधार नहीं हो सकता अपितु स्वय स्वराज का संविधान तयार करना ही हो सकता है। मुझे इस विषय में जरा भी संदेह नहीं हैं कि साप्रदायिक भेदभाव का हिमशैल स्वतत्रता के सूर्य की गर्मी पाते ही पिघल जायगा।

लेकिन आगा खा जसे मुसलमान साप्रदायिकतावादियो ने सम्मेलन में सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी हितो को ब्रितानी साम्राज्यवाद के सरक्षण में सुरक्षित किये रखने की जिद पकड ली। हिंदू और सिख साप्रदायिकतावादी भी साम्राज्यवाद के हाथो की कठपुतली बनते दिखाई दिये। उन सभी ने अपने अपने ढग से गाधीजी द्वारा सम्मेलन में एक सगठित मोर्चा प्रस्तुत करने के प्रयत्न को असफल करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई

अतत दिसबर 1931 में मक्डानाल्ड ने सन् 1930 के समझौते की शर्तों के अनुसार मसले को आगे बढाने का प्रस्ताव किया। उन्होंने विलिंग्डन की नीति का अनुमोदन किया और भारत सरकार के लिए प्रस्तावित विधेयक के मुख्य मुद्दों की एक प्रारंभिक जानकारी दी। प्रस्तावित विधेयक में एक शक्ति सपन्न सघीय केंद्र और स्वायत्तता की व्यवस्था थी। प्रातों को स्वायत्तता के सीमित अधिकार दिये गये थे। वित्त ब्रिटिश व्यापार और सुरक्षा (इसमे युद्ध का निर्णय करने का अधिकार भी शामिल था) सघीय क्षेत्र के विषय थे जिन पर वेस्ट मिनिस्टर की ससद और वायसराय का सर्वाधिकार था। निराशा में गाधीजी भारत लौट आये।

नये सिरे से सरकारी दमन

विलिंग्डन की सरकार ने सन् 1930 में उठाये गये इरविन के कदमो की तुलना में सारे राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन करने के लिये अधिक सख्त कदम उठाने का फसला किया। गाधीजी के लदन से लौटने के पाच दिन पहले ही जब उत्तर प्रदेश के काग्रेसियो ने यह कहकर कि सरकार से बातचीत चल रही है किसानो से लगान अदा न करने का आग्रह किया तो उनके नेताओं को बड़ी सख्या में गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तार होने वालों में नेहरू और पुरुषोत्तम दास

के लिए नागरिक अवज्ञा आदोलन स्थगित कर दे। एक साल बाद अप्रैल 1934 में आदोलन को अंतिम रूप से तिलाजलि दे दी गयी।

उसी दौरान नवबर 1932 मे ब्रितानी सरकार ने लदन मे तीसरे गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया। उसमे काग्रेस का कोई प्रतिनिधि नहीं था। काग्रेस ने इस तर्क पर आमत्रण स्वीकार न करने का फैसला कर लिया था कि सरकार ने जो दृष्टिकोण अपना लिया है उसके कारण सम्मेलन में शामिल होने से किसी सार्थक उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। बहराल सम्मेलन मे जो विचार विमर्श हुआ उसके परिणामस्वरूप कुछ अतिरिक्त सुधारो के साथ सरकार ने सन् 1935 का भारतीय विधेयक पास करने का फैसला किया। नये विधेयक में केंद्र मे सघीय शासन और प्राता को पहले से अधिक स्वायत्तता देने का प्रस्ताव था। पहली बार देशी रियासते भी विचार विमर्श का सीधा विषय बनीं क्योकि सघीय शासन मे ब्रितानी भारत के प्राता के साथ रियासतो को भी शामिल किया जाना था। ऐसा लगा कि इसकी वजह से भारत को एक देश और यहा के लोगो को एक राष्ट्र मानने के सिद्धात की सयोगवश पुष्टि हो गयी। लेकिन अग्रेजो का वास्तविक इरादा राष्ट्रवादी नेताओ के साम्राज्यवाद विरोधी सिद्धात और कार्यक्रम के पलडे को राजाओं का इस्तेमाल करके सतुलित करना था। इसीलिए रियासतो को केद्र के द्विसदनी सघीय विधान परिषद मे उनके अनुपात से ज्यादा प्रतिनिधित्व दिया गया। केवल इतना ही नही, रियासतों के प्रतिनिधियों का चुनाव जनता के मत द्वारा नहीं होना था। वे शासको द्वारा नियुक्त किये जाने वाले थे। देश के शेष भाग मे भी मताधिकार भयकर रूप से सीमित था। ब्रितानी भारत मे मत देने का अधिकार 14 प्रतिशत से अधिक लोगो को नहीं था। लेकिन इतनी सुरक्षा के साथ गठित विधान परिषद को भी पूरे अधिकार नहीं मिलने वाले थे। सुरक्षा और विदेशी सबध पर उसका कोई नियत्रण नहीं था। उसकी देखरेख में आने वाले दूसरे विषयो में भी गवर्नर जनरल ने विशेष नियत्रण का अधिकार अपने पास रखा था। गवर्नर जनरल और गवर्नरो की नियुक्ति ब्रितानी सरकार द्वारा होती रहती थी और वे उसी के प्रति सीधे जिम्मेदार थे।

प्राता मे स्वायत्तता के जो अधिकार दिये गये थे, वे भी गवर्नर में निहित विशेष अधिकारियों द्वारा रद्द किये जा सकते थे। गवर्नर को न केवल चुने हुए प्रतिनिधियो द्वारा प्रस्तावित किसी कानूनी कदम को रद्द कर देने का निषेधाधिकार था बल्कि उन्हे अपनी मर्जी से कानून लागू करने और अध्यादेश जारी करने का भी अधिकार था। नागरिक सेवा और पुलिस पर नियत्रण रखने के अधिकार भी गवर्नर के पास ही थे।

सन् 1935 के भारतीय विधेयक से बहुत कम लोग सतुष्ट हुए। काग्रेस के लिए वह पूर्णतया निराशाजनक था। दूसरों ने उसे विभिन्न मात्रा में अपर्याप्त पाया। ब्रितानी सरकार ने भारत की जनता पर शासन करने वाले राजनैतिक और आर्थिक अधिकार छोड़ नहीं दिये थे। केवल सरकार के ढाचे में हल्का सा परिवर्तन हुआ था। जनमत से निर्वाचित मंत्रियों को ब्रितानी प्रशासन मे शामिल कर लिया था लेकिन विदेशी हुकूमत को चलते रहना था।

विधेयक के प्राता से सबद्ध भाग को तत्काल लागू किया जाना था। सघीय भाग पर बाद

मे अमल होना था। विधेयक के प्रावधाना स पूरी तरह असहमत होने पर उसकी अमलदारी में सहयोग देने की जगह पर काग्रेस ने चुनाव लडने का निर्णय मूलतया ब्रितानी सरकार पर यह सावित करने के लिए लिया कि दल को देश की जनता का किनता वडा समर्थन प्राप्त है। इस उद्देश्य मे पूरी सफलता मिली। अधिकतर प्राता म वह भारी वहुमत स जीती। इसमें *रचमात्र भी संदेह नहीं किया जा सकता था कि भारतीय जनता के विशाल वहुमत ने उसे समर्थन* दिया। वहुत से लोगो ने तर्क दिया कि चुनाव जीतने के वाद पदों को अस्वीकृत कर देने का कोई आचित्य नहीं था। नेहरू तथा अन्य वामपथी तत्व पद स्वीकार करने के विरुद्ध थे। उन्होंने कहा कि ऐसा करने से स्वतत्रता सघर्ष में उलझन पैदा होगी। लेकिन वहुमत पद स्वीकार करने के पक्ष में था। काग्रेस ने जुलाई 1937 में 11 प्रांतों म से 7 में अपने मंत्रिमडल बनाये। वाद म उसने दो ओर प्रांता में भी (अन्य दलों के सहयोग से) सयुक्त मत्रिमडल गठित किया। गैर काग्रेसी मंत्रिमडल केवल पजाव आर वगाल म वने।

प्रातीय सरकारों के अधिकार सीमित हान के कारण काग्रेस मंत्रिमडलो ने प्रशासन के मूल चरित्र मे परिवर्तन लाने का काम नही किया। उन्हाने किसी आमूल परिवर्तन की भी शुरुआत नहीं की। कारण काग्रेस का स्वय का सामाजिक आधार इसके सगठन म मजदूरा-किसानों से लेकर पूजीपतियों ओर जमींदारो का हाना इसके अधिक प्रभावशाली नेताओं का रूढिवादी चरित्र लेकिन अपनी अधिकृत छोटी सीमाआ में उन्हाने कुछ दूर तक जनता की हालत सुधारने की निश्चय ही कोशिश की। उन्होने शासन प्रवध के एक नये दृष्टिकोण का सूत्रपात किया आर सवा तथा ईमानदारी क प्रशासनीय मानक स्थापित किये। प्रारंभिक तकनीकी तथा उच्चतर शिक्षा आर जन स्वास्थ्य सेवाआ म सुधार लान की ओर पहले से अधिक ध्यान दिया गया। किसानों का मदद के लिए काश्तकारी ओर कर्ज से राहत देने वाले नये कानून पास किये गये हालांकि इस तरह का विधेयक अक्सर भू-स्वामिया आर जमींदारों की सहमति से पारित होने के कारण 'समझाता' होना था। मजदूर सघा ने काम करने की वेहतर हालत और अधिक मजदूरी के लिए वातचीत चलाने में अपने को अधिक स्वतत्र महसूस किया हालांकि कुछ प्रांतों में उन्ह तीखा सघर्ष करन के लिए विवश होना पडा। नागरिक स्वतत्रता पर लगे नियत्रण म ढील दी गयी प्रस की स्वतत्रता म वृद्धि हुई मगर इसक वावजूद पुलिस आर प्रशासन के अधिकारिया का भय आमतार पर जारी रहा। उसके प्रति लोगों की उदासीनता उसी तरह वनी रही।

लेकिन सवसे महत्वपूर्ण लाभ मनोवैज्ञानिक था। जनता का अहसास वदल गया। प्रशासन क पदों पर जेल के परिचित व्यक्तियों को देखना जीत के स्वाद की तरह था। हवा में आशावादिता आर आत्मविश्वास की एक महक थी। यही वह विंदु था जव स्वतत्रता के प्राथमिक संदेशा का जनता न अनुभव किया।

6

स्वतत्रता की उपलब्धि

दूसरे विश्वयुद्ध के ठीक पहले के पाच वर्षों म भारत में पर्याप्त ढग से नया चितन चलता रहा। यद्यपि लोग राष्ट्रवादिता, साम्राज्यवाद विरोध आर अतत स्वतत्रता प्राप्त करने क आदर्शों से पूरी तरह प्रतिवद्ध थे लेकिन उनम से सभी ने न ता काग्रस के कायक्रम आर कार्यविधि का स्वीकार किया था आर न ही चितन का साफ साफ ध्रुवीकरण हुआ था। न सिर्फ गरकाग्रेसी नेताआ आर गुटो ने विभिन्न विचारधाराओं और काम करने के तरीकों की परखी की था बल्कि स्वय काग्रेस के भीतर राजनीतिक चिनन का दा समानातर धाराए विकसित हुई थी आर दाना की शक्ति म वृद्धि हुई थी।

इस नये चिनन का पहला नतीजा एक अर्थ मे अनिवायनया नकारात्मक था। यह महसूस किया गया कि एक क्रातिकारी शक्ति के रूप म आतक्वाद चुक गया है। ब्रितानी शासन को खत्म करने क उद्देश्य से जनता को एक राष्ट्रीय विद्रोह के लिए उभारने म से सफलता नहीं मिली। ज्यादातर आतक्वादियों को फासी पर लटका देने या जेल म डाल देने या उनके कम्युनिस्ट आर दूसरे आदोलनों म शामिल हो जाने के कारण क्रातिकारी आतकवाद समाप्तप्राय हो गया।

सकारात्मक पक्ष में स्पष्टतया समझने योग्य तीन प्रवृत्तिया थीं (1) काग्रेस क भीतर और बाहर समाजवादी विचारो का प्रसार (2) मजदूर सघ आदोलन का विकास जो राष्ट्रीय स्वतत्रता आदोलन स बिल्कुल स्वतत्र था आर (3) किसान आदोलन जो बढ रहा था।

सन् 1929 म अमरीका में काफी बडी आर्थिक मदी थी। यह मदी अनिवार्यतया दूसरे पूजीवादी देशों म भी फैला। उत्पादन म तेजी से कमी आई आर विदेश व्यापार चिताजनक सीमा तक गिर गया। इसकी वजह से भयकर आर्थिक सकट पदा हुआ। बडे पमाने पर बेरोजगारी बढी। इस प्रवृत्ति के उल्टे रूस की तस्वीर बहुत आशाजनक थी। दो पचवर्षीय याजनाआ के पूरा हान क साथ वहा के उत्पादन में चागुनी वृद्धि हो गयी थी। अतर बहुत साफ था। उसने कम्युनिस्ट नमूने क समाजवाद आर आर्थिक योजनाआ के लाभ की ओर ध्यान खीचा।

बाहरी दुनिया के इन विकासो ने भारत का भी ध्यान पर्याप्त ढग से आकृष्ट किया। परिणाम यह हुआ कि समाजवादी विचारो न आम जनता आर नेता दाना को नये तरीके से सोचने के लिए सक्रिय किया। युवक मजदूर आर किसान इस नयी विचारधारा की ओर खास तार से आकर्षित हुए थे।

काग्रेस के भीतर इस नयी वामपथी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप जवाहरलाल नेहरू सन् 1936 और 1937 म लगातार दो बार काग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। उनके बाद आये सुभाषचद्र बोस जो स्वय अपने क्रान्तिकारी चितन के लिए मशहूर थे। सन् 1938 म काग्रेस के अध्यक्ष पद पर उनका चुनाव हुआ। फिर सन् 1939 मे भी गाधीजी और उनके बहुत से अनुयायियो के विरोध के बावजूद वह अध्यक्ष पद के चुनाव म जीते। सन् 1936 म लखनऊ अधिवेशन में नेहरू ने काग्रेस के उद्देश्य के रूप म समाजवाद की स्वीकृति की वकालत की थी। यह भी कहा था कि जनता को साप्रदायिकता से अलग रखने का यही सबसे अच्छा तरीका है। अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होने कहा

> म इस तथ्य का कायल हू कि हिन्दुस्तान की और दुनिया की समस्याओ के हल की कुजी समाजवाद म निहित ह ओर जब म इस शब्द का इस्तेमाल करता हू तो वह इस्तेमाल वैज्ञानिक ओर आर्थिक अर्थ में होता ह एक अस्पष्ट मानवतावादी तरीके से नही उसम हमारे राजनीतिक और सामाजिक ढाचे के व्यापक और क्रातिकारी परिवर्तन भूमि ओर उद्योग में निहित स्वार्थ और उसके साथ ही भारतीय रियासतों की सामन्ती तथा स्वेच्छाचारी शासन व्यवस्था की समाप्ति शामिल है। उसका मतलब ह निजी सपत्ति की समाप्ति (बेशक एक सीमित अर्थ म वह बनी रह सकती है) और वर्तमान मुनाफाखोरी की प्रणाली के स्थान पर सहकारिता की सेवाओ के एक उच्चतर आदर्श की स्थापना। इसका मतलब ह हमारी इच्छाओ आदतो ओर प्रवृत्तियो म अतत परिवर्तन यानी वर्तमान पूजीवादी व्यवस्था से आमूल भिन्न एक नयी सभ्यता का उद्भव।

वह समाजवादी प्रवृत्ति काग्रेसी नेतृत्व के बाहर की समान ढग स प्रत्यक्ष थी। उसकी वजह से कम्युनिस्ट पार्टी का विकास ओर काग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना हुई। प्रारंभिक दिनो में कम्युनिस्ट पार्टी न पी सी जोशी के नेतृत्व मे काम किया। काग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना आचार्य नरेद्रदेव और जयप्रकाश नारायण न सन् 1934 म की। इसका एक सगठन था एक पत्रिका थी। इसने स्पष्ट किया था कि पूर्ण स्वराज इसका लक्ष्य ह। वह काग्रेस को 'समाजवादी सिद्धात मानने क लिए विवश करने को प्रतिबद्ध थी। केरल आध्र और तमिलनाडु म काग्रेस समाजवादी नेता उत्तर भारत के अपने जसे नेताओ की तुलना म मार्क्सवाद के अधिक नजदीक पहुच गय।

दमन के कारण मजदूर सघ का आदोलन भी हुआ। कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबध लगाने क बाद सन् 1934 के अंतिम दिनो म सरकार ने रेड फ्लैग मजदूर सघ (आर एफ टी यू एफ) पर भी प्रतिबंध लगा दिया। अत मेरठ के मुकदमे क अत म जो कम्युनिस्ट जेल से छूटे उनके सामने सिवाय इसके कोई दूसरा विकल्प नहीं था कि वे अखिल भारतीय मजदूर सघ काग्रेस (ए आई टी यू सी) क नये सिरे स सदस्य बनकर कार्य कर। इस मजदूर सघ म काग्रेसियों और

रायवादियों (एम एन राय) की बहुलता थी। व लाग अल्पमत म थे। इसी बीच जोशी चमनलाल आर मृणाल कांति वास के नेतृत्व वाले भारतीय राष्ट्रीय मजदूर महासघ (आइ एन टी यू एफ) का अखिल भारतीय रेलव कर्मचारी महासघ (ए आई आर एफ) मे विलय हा गया। इसके नेता वी वी गिरि थे। उस समय काग्रेस मे जिस तरह की राष्ट्रवादिता प्रचलित थी उसके अनुसार श्री गिरि ओर श्री बोस एक दूसरे के अधिक नजदीक थ। एक सयुक्त सगठन स्थापित किया गया जिसका नाम राष्ट्रीय मजदूर महासघ (एन टी यू एफ) पडा। इस सगठन को राष्ट्रवादी वर्ग के उन वामोन्मुख व्यक्तियो का समर्थन प्राप्त था जो कम्युनिस्टो या एम एन राय ओर उनके अनुयायियों के वर्ग सघर्ष के सिद्धात को स्वीकार नही कर सके थे।

रड फ्लेग मजदूर महासघ पर प्रतिबध लगाने के पहले तीनो महासघों ने एक सीमित ढग से सन् 1934 की गर्मियो मे उन कपडा मिल मजदूरा के हडताल के आयोजन म हिस्सा लिया था जिनकी मजदूरी म चडी कटाती कर दी गयी थी। हड़ताल मे लगभग 1 लाख 20 हजार मजदूरा ने हिस्सा लिया था। पुलिस का दमन दक्षिणपथी मजदूर सघ के नेताओं का उदासीन रुख आर हडताल के दार म बेरोजगार मजदूरा की अस्थायी भर्ती। उन दिनो अकेले बबई म 90 हजार बेरोजगार मजदूरों के कारण हडताल जून म असफल हो गयी थी।

इस दोर में एक तीसरी प्रवृत्ति भी विकसित हुई थी। वह थी शेशवकालीन किसान आदोलन में गाधीवाद काग्रेसी समाजवाद और साम्यवाद के प्रसार की। सन् 1920 30 के बीच की मजदूर आर किसान पार्टियों तथा 1929-31 की मन्दी के कारण स्वत चल पडने वाले किसाना के विरोध आदालन को विलिग्डन न कुचल दिया था। इधर कुछ जिलों के किसान नेताओ न मेदान म आकर पुन अपनी गतिविधिया चलाना शुरू किया।

विहार म सहजानद सरस्वती ने एक प्रभावशाली स्थानीय किसान सभा का सगठन करके उन वामान्मुख भूमिसुधार कार्यक्रमा की परवी को जा उत्तर प्रदेश म पहल ही लाकप्रिय हो चुके थे। एक दूसरे प्रमुख किसान नेता कार्यानद शमा थ जिन्होने विहार के पिछड़े जिला म बाद के वर्षों म प्रभाव अर्जित किया। पश्चिमात्तर सीमा प्रात म खुदाई खिदमतगारा आर दक्षिणी महाराष्ट्र म रायवादियो न किसाना की मागा का फिर से उठाया। हैदराबाद की वड़े क्षेत्रफल वाली देशी रियासत म स्वामी रामानद तीर्थ ने दक्षिणी महाराष्ट्र से लगे हुए जिलों के गरीब किसाना क शाषण का प्रतिरोध किया। उन्होंने महाराष्ट्र जिल क एक गाधीवादी स्कूल से जीवन शुरू किया बबई शहर म मजदूर सघ आदोलन के सुधारवादी खेमे म शामिल हुए आर फिर आरगाबाद जिले म गाधीवादी ग्राम कल्याण सघ की स्थापना की। स्वामी रामतीर्थ के प्रयत्नो ने ही वाद क वर्षों में हदराबाद राज्य जन काग्रेस के लिए एक व्यापक किसाना आधार तयार किया। इसी जन काग्रस न सन् 1947 के वाद हेदराबाद को भारतीय सघ में मिलाने क सघर्ष का नेतृत्व किया। दक्षिण भारत के जातीय सगठनों ने नगरपालिकाओं और जनतात्रिक स्वशासी सरकारा म अपेक्षाकृत अधिक हिस्सदारी की माग की थी। इन सगठना म उत्तरी तमिलनाडु क वन्नियार (जिसमें अनुसूचित जाति के सदस्यो का सख्यानुपात बहुमत था) दक्षिणी तमिलनाडु

(सख्यात्मक दृष्टि से बहुमत में) के नाडार और थेवर और केरल के इराव प्रमुख थ। दक्षिण पश्चिमी बगाल के मानभूमि आर पुरुलिया तथा विहार के राची आर सिहभूम जिलों म गाधीवादी कार्यकर्ताओ ने पिछडे किसान वर्ग में गाधीजी की राष्ट्रवादिता आर अहिसा के आदर्शों क प्रचार का क्रम शुरू कर दिया था। ये विचार कभी कभी सुविधाहीन आदिवासियो तक पहुचे। छोटा नागपुर म तानाभगत आदिवासी विरोध आदोलन चला जिसन बाद में गाधी महाराज नाम स एक पथ बनाया। आसाम से लगे हुए नागालड म अपने एक धर्मप्रचारक के नेतृत्व म कुछ नागाओं ने ब्रितानी शासन के विरुद्ध हिसक विद्रोह किया। धर्मप्रचारक ने गिडालो नाम की युवा बालिका को उनकी रानी घोषित किया। लोग मानते थे कि गिडालो को दैवी शक्ति प्राप्त है। उस रानी ने राष्ट्रवादी आदोलन को समर्थन देने की घोषणा की। सन् 1930-40 के अंतिम वर्षों म एक धार्मिक विद्वान मौलाना अब्दुल हमीद खा भाशानी ने दक्षिणी आसाम के सिलहट जिले में एक शक्तिशाली किसान आदोलन सगठित किया जो पडोसी जिले ममनसिह (पूर्व बगाल) तक फैला।

ये सारे आदोलन न तो एकबद्ध थे न ही काग्रेस के नियत्रण म। बहुत सी किसान सभाओं का नेतृत्व काग्रेस समाजवादियो ने किया था। कभी कभी कुछ आदोलनो को प्ररणा आर नेतृत्व कम्युनिस्ट सगठनो ने किया। प्रमाण के लिए सन् 1937 का बगाल का तारकेश्वर सत्याग्रह और त्रावणकोर राज का वायला सत्याग्रह। जहा कहीं पर नेतृत्व काग्रेस के रचनात्मक कार्यकर्ताओं के हाथ मे था वहा कुल मिलाकर किसानो की जागृति म राष्ट्रवादी आर सुधारवादी रगत थी। दूसरे क्षेत्रों मे किसानों के लगाव का सबध स्थानीय वर्ग समस्या से था। यदि राष्ट्रवादी आदोलन से उसका कोई सबध था तो वह महज आकस्मिक ओर बहुत दूर का था। इनमें से कुछ आदोलनो में धार्मिक नेतृत्व आश्चर्यजनक ढग से विद्यमान था। पिछडे इलाकों म किसान तबके की भावना जब-तब अधकचरी नैतिकता के नारो से बहुत अधिक उत्तेजित हो उठती है। इस नैतिकता की गुहार लगाने वाले उनक धर्म जाति या कबीले के स्थानीय गुरु आर पुरोहित होते है। अनेक देशो के मुक्ति आदोलनो के इतिहास म शोषण का परोक्ष रूप से विरोध करते हुए किसानो के बीच धर्म की गुहार के उदाहरण प्राय मिलते ह।

इसी के साथ साथ ऐसे बहुत से राजनैतिक कार्यकर्ता जो ग्रामीण किसान वर्ग को शिक्षित आर सगठित करने में लग हुए थे कम्युनिस्टो आर काग्रेस समाजवादियों द्वारा प्रस्तुत मार्क्सवादी विचारधारा से तीव्रता के साथ प्रभावित हुए। प्रदर्शन के/सयुक्त राजनैतिक मोर्चों न दोनों को एक ही जगह पर मिलने का अवसर दिया। इसी तरह जब कभी बडी सख्या मे राजनैतिक कैदियों को एक जगह रखा गया उनमें आपस मे सपर्क स्थापित हुए। प्रमाण के लिए हिजली आर बक्सर के नजरबदी कैंप या माडले आर अडमान के जेल। बहुत से गाधीवादियों और आतकवादियों को जेल की सजा के दोरान किताबें और प्रचार पुस्तिकाए पढने का समय मिला आर उनसे प्रभावित होकर वे अहिसावाद वामपथ और सामूहिक दुस्साहसी वीरता छोडकर वर्ग सघर्ष की मार्क्सवादी अवधारणा मे विश्वास करने लगे। मई दिवस के अवसर पर सन् 1935 मे अडमान

जेल के 31 नजरवदो ने (जिनमे भगतसिह के शेष साथी भी शामिल थे) कम्युनिस्ट समन्वय (समिति) की स्थापना की। बाद के दिनो मे अडमान में वद चिटगाव गुट के कुछ सदस्य भी साम्यवाद की ओर झुक गये। लेकिन इनकी सख्या गावों म लगे हुए उन राजनेतिक कायकताओ का तुलना म वहुत कम थी जो गाधीजी की सर्वोदय विचारधारा के व्याख्याकार थे।

ये ही वे सामान्य प्रवृत्तिया थीं जिनके सदर्भ में मुक्ति सग्राम मे नये समयाते विकसित हुए।

राष्ट्रीय सघर्ष और रियासती जनता के आंदोलन

ब्रितानी भारत का शासन सीधे वायसराय की कार्यकारी सत्ता द्वारा होता था। देश के शेष भाग में रजवाडा के अनेक राज्य थे जिन्हे अग्रज देशी रियासत कहत थे। कुछ रियासतें क्षेत्रफल मे वहुत वडी थी आर उनकी जनसख्या विशाल थी। कुछ बहुत छोटी थीं आर उनकी जनसख्या भी उसी अनुपात में कम थी। वे सारे देश म आर ब्रितानी भारत मे विखरी हुई थीं। उनका शासन स्वय रजवाडो और जागीरदारो के माध्यम से अग्रेज करते थे।

रियासतो मे रजवाडा का शासन स्वेच्छाचारी था। उनमें से अधिकतर इस वात का ध्यान रखने थे कि ब्रितानी शासकों से उनके सबध अपक्षित विनयी मर्यादा के साथ वने रह। कुछ ने एसा नही किया। ब्रितानी अधिकारी इस वजह से नाराज हुए। एसे राजाओं को परिणाम भुगतना पडा यानी रियासत पर स उनका अधिकार जाता रहा। लेकिन ध्यान दने की मुख्य वात यह है कि भारत म ब्रितानी शासन आर उसके प्रभाव न प्रतिक्रियावादी सामती निरकुश शासन का रूप लिया। इसे अधिकतर रियासतों मे न केवल बरकरार रखा गया वरन् वह निरतर चलता रहा। कुल मिलाकर यहा पर जनतान्त्रिक सरकार के चिह्न अत्यत कम थे। रजवाडे आर उनके सामत सरदार जिस शानशाकत ऐश्वर्य आर फिजूलखर्ची का जीवन जीते थे उसके मुकावले में जनता के रहन सहन का स्तर एकदम गिरा हुआ था। सामान्य परिस्थितियों में आतरिक विद्रोह या वाहरी प्रभाव के कारण एक भ्रष्ट आर निरकुश राजा की गद्दी छिन जाती थी। भारत मे रजवाडों के मामले मे ब्रितानी शासन ने इन दोना स्थितिया को असभव कर दिया। रजवाडों ने अपने को सुरक्षित महसूस किया आर अपनी सामती स्थिति की जडें गहरी कर लीं।

इन असतोषजनक आर प्राय अतर्विरोधी परिस्थितियो ने रियासतो मे स्थानीय सगठनों का जन्म दिया जिनके माध्यम से वहा की जनता की आम बेचैनी का व्यक्त सामने आया। उन सगठनो को आमतौर पर प्रजामडल कहा गया। मसूर म एक राज्य काग्रेस थी। व सभी सगठन स्थानीय थे ओर उनका सवध अपनी रियासत विशेष के मसलो तक सीमित था। प्रथम विश्वयुद्ध म अपनी तरफ से रजवाडा ने जो सनिक दस्ते भेजे थे उनके सिपाहियों ने लोटने पर अपनी रियासतो मे जनतांत्रिक विचारो क प्रसार म मदद की। इसके अलावा आदोलन ने एक गहरा प्रभाव पैदा किया।

सन् 1920 में पहली बार कांग्रेस ने नागपुर के वार्षिक अधिवेशन में राजाओं से तत्काल अपनी अपनी रियासतों में पूर्णतया उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की मांग की। लेकिन इसी के साथ कांग्रेस के प्रस्ताव में यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि रियासत के लोग निजी तौर पर कांग्रेस का सदस्य बन सकते हैं लेकिन उस सदस्यता के नाम पर वे अपनी रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। अगर वे ऐसा करना चाहते हों तो निजी हैसियत से कर सकते हैं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम पर नहीं। कांग्रेस के अन्य भारतीय सदस्यों पर भी यह शर्त लागू थी। आमतौर पर कांग्रेस की मान्यता थी कि रियासतों में राजनैतिक गतिविधियों का संगठन और नियंत्रण वहां के स्थानीय प्रजामंडलों द्वारा होना चाहिए।

ब्रितानी सरकार ने सभी रजवाड़ों को मिलाकर एक शुद्ध सलाहकार संस्था का गठन किया था जिसे नरेन्द्र मंडल कहा जाता था। उद्देश्य था सरकार से उनके संबंधों का मानकीकरण। यह मंडल रजवाड़ों को विभिन्न श्रेणियों में किए जाने से पैदा विवादों के कारण अपने आप में ही विभाजित था। साइमन आयोग की नियुक्ति के ही साथ में सरकार ने हरकोर्ट बटलर भारतीय रियासत समिति की भी नियुक्ति की थी। समिति का काम रियासतों और केंद्र सरकार के बीच बेहतर संबंध स्थापित करने के उपायों की सिफारिश करना था।

सरकार की इस कार्यवाई के जवाब में रियासती जनता के राष्ट्रवादियों यथा काठियावाड़ के बलवंत राय मेहता और मणिलाल कोठारी और दक्षिण के जी आर अभयंकर ने दिसंबर 1927 में अखिल भारतीय रियासती जनता (ए आई एस पी सी) सम्मेलन किया। यद्यपि सम्मेलन पश्चिमी भारत की प्रेरणा पर आधारित था फिर भी उसमें देश भर के 700 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। रियासती जनता सम्मेलन का उद्देश्य वहां की सरकारों पर रियासत के लोगों के जनमत के बल पर प्रशासन में आवश्यक सुधार लाने के लिए प्रभाव डालना और सभी रियासतों में निर्वाचक सिद्धांत के अनुगत जन प्रतिनिधियों द्वारा स्वशासी सरकार स्थापित करना था। सम्मेलन ने सार्वजनिक राजस्व और राजा की निजी आमदनी के अंतर को स्पष्ट कराना भी चाहा। निजी खर्च में जनता के धन के दुरुपयोग को रोकने के लिए यह आवश्यक था। सम्मेलन ने कार्यपालिका और न्यायपालिका को अलग कर देने की भी पैरवी की ताकि निरंकुश ढंग से शासन करने के अधिकार समाप्त हो जाएं। सम्मेलन की अंतिम मांग ब्रितानी भारत और देशी रियासतों के बीच संवैधानिक रिश्ते की स्थापना की थी जिसमें वहां की जनता की आवाज का प्रभाव हो। तर्क दिया गया कि ऐसा करने से सारे भारत के लिए स्वराज की उपलब्धि की अवधि कम हो जायगी।

लगभग दिसंबर 1927 के पहले आयोजन के साथ ही सम्मेलन एक स्थायी राजनीतिक संगठन हो गया। वह निरंतर सामंत विरोधी रहा लेकिन कांग्रेस की तरह स्पष्टतया साम्राज्यवाद विरोधी नहीं। कारण यह था कि जहां तक रियासतों की जनता का संबंध है सामंती प्रणाली ही अधिक प्रत्यक्ष रूप में उनका शोषण कर रही थी। इस तथ्य को काफी हद तक स्पष्ट भी किया गया।

सम्मेलन की स्थापना का एक तात्कालिक नतीजा यह हुआ कि रियासता की जनता का सघप, स्थानीय घटना आर अपने आप मे कटा हुई या सीमित चीज न रहकर अखिल भारतीय महत्व का हो गया। जवाहरलाल नेहरू ने लाहार काग्रेस क अध्यक्ष प द स पूर्ण स्वराज क बारे मे बालते हुए आधिकारिक घाषणा की

> भारतीय रियासत शप भारत स अलग हाकर नही रह सकती। रियासना क भविष्य का निर्धारण करने का अधिकार जिस जनता को ह वह जनता निश्चय ही उन रियासना की ही होगी।

सन् 1929 की काग्रस न भी रियासती जनता सम्मलन की मागा का अनुमोदन किया था।

काग्रस क इस दृट मन का कि रियासता का पूर भारत का अभिन्न अग मानना चाहिए साधा नतीजा यह हुआ कि सम्मलन ने ब्रितानी सरकार स यह स्वीकार करने का आग्रह किया कि पहले गोलमेज सम्मलन म रियासती जनता का प्रतिनिधित्व हा। आग्रह स्वाकार नहीं किया गया। तब रियासती सम्मलन न काग्रेस को एक स्मरणपत्र भजकर एक एसे अखिल भारतीय सघीय सविधान की परवी की जिससे कराची काग्रस द्वारा ब्रितानी भारत के लिए मागे गये मालिक अधिकारा आर सुविधाओं को रियासत की जनता भी प्राप्त कर सक। इस प्रकार सामत विराधी आदोलन का जनतत्रीकरण हा गया आर वह राष्ट्राय आदालन स जुड गया।

लेकिन गाधीजी ने सन् 1920 के आदालन म हस्तक्षेप न करन वाली नीति पर बल दिया। उनका तर्क था कि बाहर स शुरु किया हुआ आदालन सफल नहा हा सकता आर रियासत की जनता को आत्मनिभरता की सीख लनी चाहिए। या उन्हान काग्रस क इस प्रस्ताव का प्रात्साहन किया कि रजवाडा क अपना प्रजा का मालिक अधिकार देना चाहिए।

सन् 1935 के भारतीय विधेयक म सघीय सिद्धात का मान्यता दी गयी लेकिन प्रस्तावा म जाड़ताड करक एसी स्थिति पदा कर दी गयी जिसम रियासता का राष्ट्रवादिता क तकाजा की राह में अवराध क रूप म इस्तमाल किया गया। यह न कवल आनुपातिक प्रतिनिधित्व क मा य स्वरूप क अनुसार नहा था वरन् रियासता के प्रतिनिधि भी रियासती जनता क वास्तविक प्रतिनिधि नहीं थ। व शासका द्वारा सिर्फ मनोनीत किय जान वाल थे।

बहुत सी रियासता विशेषकर राजकाट जयपुर कश्मीर हदराबाद आर त्रावणकोर म उल्लखनीय आदोलन हुए आर उनम माग की गयी कि जनतात्रिक सिद्धाता का स्वाकार किया जाना चाहिए आर सरकारी प्रशासन का पुनर्गठन हाना चाहिए। रजवाडा न उसका जवाब निर्मम दमन स दिया। उनमें स कुछ न जनविद्रोह की आधा को साप्रदायिक भावनाआ की ज्वाला म बदलने की काशिश की। प्रमाण के लिए हदराबाद क नवाब न जन आदोलन पर मुस्लिम विरोधी आदोलन का ठप्पा लगाने की कोशिश की। ठीक इसी तरह कश्मीर के महाराजा न जन आदालन को हिदू विराधी सिद्ध करने की काशिश की। त्रावणकार म शगूफा छाडा गया

की होती तो उसने यह समझ लिया होता कि यदि बहुत से मुसलमानों ने उसके पक्ष में मत नहीं दिया तो यह स्थानीय धार्मिक अल्पमत के इस मत की ही अभिव्यक्ति है कि धार्मिक बहुसंख्यक अर्थात् हिंदू प्रांतीय सरकारों में अपनी बहुसंख्यक स्थिति का प्रयोग उन्हें नेस्तनाबूद करने में कर सकते हैं। कांग्रेस यह महसूस नहीं कर सकी कि इस तरह का भय किसी भी देश में अल्पसंख्यकों को स्वाभाविक ढंग से होता है। उस भय को कांग्रेस दल के भीतर और बाहर चलने वाले साम्प्रदायिक चिंतन ने बढ़ाया। बहुत से कांग्रेसी नेताओं ने महसूस किया कि दल के भीतर साम्प्रदायिकता के विरुद्ध दृढ़ संघर्ष करके साम्राज्यवाद विरोधी और स्वतंत्र मुसलमानों के प्रति मित्रता और समझदारी का रुख अपना करके उन्हें शिक्षित करके जीता जा सकता था। इसके लिए किसान वर्ग को सामंतवादी तत्त्वों के विरुद्ध संगठित करना चाहिए था। उस परिस्थिति में यही करना एक जवाब था।

मार्च 1937 में नेहरू ने मुसलमानों से व्यापक संपर्क करने और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के बारे में उन्हें बताने के लिए कांग्रेस की एक शाखा गठित करने की घोषणा की। इसकी वजह से उत्तरी भारत के मुसलमानों के मजलिसे-अहरार और जमीयत-उल्माए हिंद जैसे धार्मिक गुटों को कांग्रेस के साथ करने में मदद मिली लेकिन व्यापक जनसंपर्क का कार्यक्रम पूरी तरह सफल नहीं हुआ क्योंकि कांग्रेसी नेता शोषित वर्ग के सभी लोगों को प्रेरित और संचालित करने में सफल नहीं थे।

लेकिन संपर्क के कार्यक्रम ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जमींदार लियाकत अली खां जैसे लीगियों के भय को बढ़ा दिया। वह अब जिन्ना के कट्टर हिंदू विरोधी समर्थक हो गये। उन्हें भय था कि कांग्रेस के भूमि संबंधी परिवर्तनकारी कार्यक्रमों के तेज विकास से उनकी अर्द्धसामंती स्थिति खत्म होगी और मुसलमानों में पैदा होने वाली साम्राज्य विरोधी भावना के कारण साम्प्रदायिक नेताओं को मिलने वाला सरकारी संरक्षण खत्म हो जायेगा।

लेकिन साम्प्रदायिक नेता खुलकर यह नहीं कह सके कि उनके कांग्रेस का विरोध करने के कारण ये ही हैं। बल्कि इसके बदले उन्होंने कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की असफलता को बढ़ा चढ़ाकर कारण के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने कांग्रेस पर यह आरोप लगाया कि उसने बंगाल में जमींदार समर्थक दक्षिणपंथी नीति अपनाई। उत्तर प्रदेश में उन्होंने कांग्रेस की असफलता का नाजायज इस्तेमाल अपनी जनसंपर्क की नीति को विकसित करने में किया। साथ ही कांग्रेस पर आरोप लगाया कि उसने उच्चवर्गीय मुसलमानों को कमजोर बनाया। जिन्ना ने लीग के सन् 1937 के लखनऊ सम्मेलन में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए कहा कि कांग्रेस मंत्रिमंडल मुसलमानों के प्रति अत्याचारी और दमनकारी रहा है।

मुस्लिम लीग ने अपने राजनीतिक आग्रहों को प्रकट करने के लिए एक सुनियोजित आंदोलन आरम्भ किया। सन् 1938 के अंत तक उसकी 170 नयी शाखाएं स्थापित हो चुकी थीं। 90 उत्तर प्रदेश में और 40 पंजाब में। अकेले उत्तर प्रदेश में 1 लाख सदस्य बनाये गये। सन् 1940 में की गयी पाकिस्तान की मांग के संदर्भ में बंगलादेश के एक इतिहासकार प्रोफेसर ए एफ

सलाहुद्दीन अहमद ने मुस्लिम लीग की राजनीति के इस पक्ष का सही मूल्यांकन किया ह। अप्रल 1972 में कलकत्ता म विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की एक सगोष्ठा म प्रस्तुत अपने निबध मे उन्हाने कहा

> जिस आन्दोलन की परिणति पाकिस्तान के निमाण म हुई वह आदाल ~ धार्मिक नही था.. लगता है कि हिंदुओ के राजनीतिक प्रभुत्व का भय आन्दोलन का प्रभावित करने में महत्वपूर्ण रहा क्योकि उसने मुस्लिम सप्रदाय के राजनतिक, आथिक आर सास्कृतिक हिता पर प्रतिकूल प्रभाव डाला होना। हालाकि परपरागत इस्लाम म राजनीति आर धम अविभाज्य हे लेकिन यह स्थिति समकालीन मुस्लिम समाज क लिए सही नहीं रह गयी ह। आदोलन के बहुत कम नेताआ म परपरागत इस्लाम क लिए कोई गहरा लगाव था। निश्चित रूप से इसी वजह से कट्टर मुसलमानो का प्रनिनिधित्व करने वाले मैहसुल इसरार ओर मतुलहिद जसे सगठना न इसी आधार पर लीग का समर्थन नहीं किया कि उसका नेतृत्व इस्लामी नही हे। इन कट्टर मुसलमान धमशास्त्रिया के विरोध के बावजूद लीग को मुसलमाना के माध्यम वर्ग आर उनक जरिये मुस्लिम जनना के समर्थन का लाभ मिला। (यह ध्यान रखना चाहिए कि सभी मुस्लिम धर्मशास्त्री लीग के विरोधी नही थे) उनके लिए पाकिस्तान ने बिना किसा प्रतिस्पर्द्धा के भय क बहुमुखी विकास का अवसर दिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध

सितबर 1939 में युद्ध छिड जाने पर भारतीय नेता एक कठिन स्थिति म पड गये। वे फासिस्टवादी दर्शन के बिल्कुल विरुद्ध थे जेसा कि जाहिर था वह एक तरह का एकदलीय शासनतत्र था जिसम रगभेद सबधी दुराग्रह भी शामिल था। यहा तक कि सन् 1939 के पहले के वर्षो मे आक्रमण क विस्तारवादी कायक्रम क साथ जब फासिस्टवाद एक राजनतिक दर्शन क रूप म उभर रहा था तभी जवाहरलाल नहरू जसे अनेक नेता यूराप म उसको विकसित होते देखकर बहुत चिंतित हुए थे। काग्रस ने बहुत ही स्पष्ट ढग स उसकी निदा करते हुए स्पन इथियोपिया आर चेकोस्लोवाकिया की पीडित जनता को खुला समर्थन देने की घोषणा की थी। जापान म भी फासिस्टवाद की प्रवृत्ति के विकास पर उनका दृष्टिकोण वैसा ही रहा आर जब जापान न चीन पर आक्रमण किया तो उन्होने तर्कसम्मत ढग स चीन का समर्थन करत हुए जापान को आक्रामक कहा। लेकिन वे साम्राज्यवाद के भी उतने ही प्रबल विरोधी थे। अत युद्ध को लेकर उनका दृष्टिकोण इस बात पर निर्भर करने वाला था कि उसके लक्ष्य आर उद्देश्य क्या ह। यदि वह युद्ध एशिया आर अफ्रीका क दशा म अपने उपनिवेश या अपन औपनिवेशिक प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए परेशान पुरानी साम्राज्यवादी शक्तिया या फासिस्टवादी सत्ता का प्रतिनिधित्व

करने वा । उन नवसाम्राज्यवादियो के बीच हो रहा है जो उपनिवेशवादी लूट म अपना हिस्सा चाह रहे है, तब भारत का उसम कोई दिलचस्पी नहीं होगी। लेकिन यदि मित्र राष्ट्र अपना रवया बदल कर दुनिया म जनतन्त्र कायम करने के उद्देश्य से सचमुच ईमानदारी के साथ फासिस्टवाद से लड रहे है तो भारत उनको अपनी शक्ति भर हर सभव समर्थन देगा। लेकिन मित्र राष्ट्रो को निश्चित प्रमाणो द्वारा यह सिद्ध करना पड़ेगा कि उन्होने जो दावे किये थे उन्हीं पर अमल करगे। खासतौर पर ब्रिटेन को तत्काल भारत को साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक प्रभुत्व छोड़ कर भारतीयो को स्वय अपनी सरकार चलाने के लिए उचित मात्रा मे अधिकार देना चाहिए।

लेकिन भारतीय जनता और उसके नेताओ की इन भावनाओ को महत्वहीन मानकर उन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। 3 सितबर 1939 को युद्ध की घोषणा कर दी गयी। इससे भारत स्वत युद्ध मे शामिल होने के लिए प्रतिबद्ध हो गया। सन् 1935 के भारतीय विधेयक के सघीय भाग पर अभी भी अमल नहीं किया गया था अत शुद्ध सवैधानिक दृष्टि से वायसराय की यह कार्रवाई कानूनी भी थी और मान्य भी। लकिन इससे भारतीय जनता की भावनाओं के ब्रिटेन के अनुकूल हो जाने की सभावना लगभग नहीं थी। देश की एक केद्रीय विधान परिषद थी। प्रान्तो में लोकप्रिय सरकार थी। देश म सुसगठित और पूरी तरह मान्यता प्राप्त राजनैतिक दल थे। भारतीय जनता के बहुत स नेता थे जिनसे ब्रितानी सरकार ने अनेकों बार पारस्परिक सहमति के आधार पर समस्याओ का हल ढूढने के लिए विचार विमर्श किया था लेकिन इनमे स किसी से राय नहीं ली गयी। भारतीय जनता के लिए यह स्थिति ज्यादा स्तब्ध कर देने वाली इसलिए भी थी क्योकि आसन्न युद्ध सबधी भारतीय नेताओ के रुख का सकेत सरकार को पहले ही मिल चुका था। सन् 1939 की गर्मियो म काग्रेस केद्रीय विधान परिषद के अधिवेशन स यह विरोध करते हुए गैरहाजिर हो गयी थी कि भारतीय सैनिक एहतियाती तौर पर मलाया और सुदूर पूर्व के देशों म भेजे जा रहे है।

लेकिन सभवतया नेताओं की अत्यत तीखी फासिस्ट विरोधी भावना के कारण युद्ध की घोषणा पर काग्रेस की तात्कालिक प्रतिक्रिया समन्वयात्मक थी। 14 सितबर 1939 को काग्रेस ने एक वक्तव्य जारी किया जिसम दल के दृष्टिकोण की स्पष्ट व्याख्या थी

> अगर युद्ध का उद्देश्य यथावाद साम्राज्यवादी आधिपत्य उपनिवेश निहित स्वार्थ और विशेषाधिकारों की रक्षा है तब भारत की उसमे कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती है लेकिन यदि मसला जनतन्त्र का या जनतन्त्र पर आधारित विश्व व्यवस्था का है तब उसम भारत की गहरी दिलचस्पी है एक स्वतन्त्र और जनतान्त्रिक भारत स्वतन्त्र देशो के साथ आक्रमण के विरुद्ध पारस्परिक सुरक्षा और आर्थिक सहयोग देने के लिए खुशी खुशी कधे स कधा मिलायेगा लकिन सहयोग निश्चय ही बराबर वालों म और आपस की रजामन्दी स होना चाहिए अत कार्यकारिणी ब्रितानी सरकार से आग्रह करती है कि वह स्पष्ट रूप स घोषित करे कि जनतन्त्र साम्राज्यवाद और

परिकल्पित नयी व्यवस्था क सदर्भ म युद्ध के उसक उद्देश्य क्या ह? खास तार पर यह कि उन उद्देश्या का भारत पर किस तरह लागू करना ह उन्ह इस वक्त किस तरह से अमल म लाया जाना ह। किसा भी घोषणा की सही जाच उसक वतमान प्रयोग म ह।

भारतीय दृष्टिकोण स वायसराय का उत्तर अत्यन असतोपजनक था। उत्तर दन म एक महीन तक टालमटोल करने के बाद वायसराय ने 17 अक्तूबर 1939 को अपनी असमधना पर खद प्रकट करते हुए कहा कि वह युद्ध के उद्देश्यों क बारे मे इसस अधिक कुछ नहीं बना सकत ह जितना प्रधानमत्री ने बनाया ह। जहा तक तात्कालिक वर्तमान का प्रश्न था वायसराय अपनी कायकारी समिति म कुछ आर भारतीया को शामिल करने को तैयार थ। युद्ध क दार में भारतीयो को पर्याप्त अधिकार देना अव्यावहारिक माना गया था। एक गाजर (ढाढस बधान के लिए) सुरक्षित दूरी पर इस उम्मीद म लटका दिया गया था कि निर्भयतापूर्ण निराशा का शिकार बना दिये गय भारतीय राष्ट्र को उसे देखकर कुछ सात्वना मिलेगा। युद्ध के बाद ब्रिटेन यह देखने क लिए कि सन् 1935 के भारताय विधेयक में कान स सशाधन आवश्यक ह (ताकि भारत महान उपनिवेशा के बाद अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके) विभिन्न वर्गो आर गुटा स राय-मशविरा करन को तयार हो गया।

उसमें तत्काल या दूर भविष्य तक में सत्ता का छाड देने की ब्रिटन की इच्छा का काइ सकेत नहीं था—अभा भी भारत को साम्राज्यवाद के अनगत ओपनिवेशिक दर्जा ही प्राप्त करना था। पूर्ण आर समग्र स्वतत्रता नहीं। वक्तव्य काग्रस क लिए एकदम स्वाकार याग्य नहा था अत कार्यकारिणा न वायसराय के इस प्रस्ताव का अस्वाकृत कर दिया आर काग्रसी मत्रिमडला स कहा कि वे अक्तूबर के अत तक त्यागपत्र दे द।

लेकिन दरवाजा जरा-सा खुला रखा गया था। वक्तव्य में यह सकत था कि यदि ब्रिटेन क दृष्टिकोण आर नाति में परिवतन होता ह तब सहयोग की गुजाइश हो सकती ह। वक्तव्य मे कहा गया था कि "इन परिस्थितियों में कार्यकारिणी सभवतया ब्रिटेन का काई सहयाग दे हा नहीं सकती क्योंकि उसका मतलब साम्राज्यवादी नीति का अनुमोदन करना होगा "

इसका मतलब 'सशर्त सहयाग' का प्रस्ताव था बशर्ते कि भारत क प्रति ब्रितानी नीति मे परिवर्तन हा।

यहा तक कि एक साल बाद अक्तूबर 1940 म जब गाधीजी न नये सिरे से सत्याग्रह *आन्दालन शुरू करन का बात सोची तो फसला किया गया कि उस कुछ चुने हुए व्यक्तियों* तक हा सामित रखा जाय। इसका कारण यह था कि सरकार क उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण क बावजूद गाधीजी या कोई भी काग्रसी नहा चाहता था कि जन आदालन के कारण युद्ध का तयारी म भयकर अव्यवस्था पदा हो। सत्याग्रह का वास्तविक उद्देश्य ब्रिताना सरकार के इस दाव को गलत साबित करना था कि भारत युद्ध का तयारी में पूरी तरह स मदद द रहा है। वायसराय को लिखे एक पत्र में गाधीजी ने निजा तार पर सत्याग्रह चलान क उद्देश्य का स्पष्टीकरण किया था

काग्रस नान्मागा^ की नान की उतनी ही विरोधी है जितना कोई ब्रितानी नागरिक हा सक्ना ह। लक्नि उमके उद्देश्या को उस सीमा तक नहीं ले जाया जा सक्ता जहा स व युद्ध म न्सिा लन लग। आर क्योंकि आप तथा भारताय मामलों के मत्रा न घापित कर दिया है कि भारत अपना न्च्छा स युद्ध की तयारी में मदद दे रहा ह यह स्पष्ट कर दना जरूरी हा जाता ह कि इसम भारतीय जनता के वहुत वड वहुमत की न्लिचस्पी नहीं ह। व नात्सीवाद और भारत पर हुकूमत करने वाले दुहर निरकुश शासन तत्र में भेद नहीं करते।

क्रिप्स मिशन

नागरिक अवना का यह व्यक्तिगत आदोलन अक्तूवर 1940 म शुरू हुआ। सत्याग्रह शुरू करने वाल पहल नना के रूप मे गाधीजी ने विनोवा भावे का चुनाव किया। सन् 1941 तक यूराप म युद्ध अपन शिखर पर पहुच गया था। ब्रिटेन क युद्ध मे पराजित होने क वावजूद पालड वेल्जियम हालड नार्वे फ्रास और पूर्वी यूरोप के अधिकतर दशो को हराकर जमनी ने जून 1941 म रूस पर आक्रमण कर दिया। पर्ल हारवर पर अचानक आक्रमण करके न्सिवर में जापान युद्ध म शामिल हो गया। इस प्रकार सन् 1941 के अत तक युद्ध ने वह शक्ल ल ली जिसम सारी दुनिया जलती हुई दिखाई दी। अमरीका आर रूस उसम पूरी तरह शामिल होकर मित्र राष्ट्रा क साथ लड रहे थे। लेकिन इससे ऐसा नहीं लगा कि विजय शीघ्र हो जायेगी। दूसरी तरफ एशियाई स्थल में शुरू में ही सफलताए जापान को मिली। उसने फिलीपीन्ज हिदचीन इडोनेशिया मलाया और वर्मा पर शीघ्रता से विजय प्राप्त कर ली। मार्च 1942 मे जापानी फौजों ने रगून पर कब्जा कर लिया। भारत के सीमातों पर सीधा खतरा पदा हो गया।

अव ब्रिटेन हताशा म भारत का पूरा और सक्रिय सहयोग पाने के लिए परेशान था ताकि न केवल जापान को आगे वढने से रोका जा सके वरन् युद्ध की समग्र तैयारी मे मन्द मिले। ब्रिटेन ने महसूस किया कि भारत का फिलहाल भविष्य में स्वशासी सरकार वनाने के पूर अधिकार दने का निश्चित वायदा करना पडेगा। तदनुसार ब्रितानी सरकार न युद्धकालीन मंत्रिमडल के एक सदस्य सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को घोषणा के एक मसविदे के साथ भारत भजा। वह एक तज-तर्रार वकील और प्रतिवद्ध समाजवादी थे। भारतीय प्रश्नों समस्याओं का उन्हाने गभीरतापूर्वक लवे अरसे से अध्ययन किया था। उनके विषय में एक आम धारणा थी कि भारतीय आकाक्षाओ के प्रति उनके मन म सहानुभूति का भाव है। नेहरूजी से उनका व्यक्तिगत परिचय था। लेकिन घोषणा का जो मसविदा वह लाये थे उसमें सिफारिश क नाम पर कुछ खास नहीं था। उसम यह प्रस्ताव था कि युद्ध की समाप्ति के वाद भारत को ओपनिवेशिक दर्जा द दिया जायेगा। मसविदे में भारत को अलग हो जाने का भी अधिकार दिया गया था। प्रस्ताव पर

अमल करने के लिए युद्ध स्थिति के खत्म होते ही एक संविधान सभा का गठन किया जायगा। सभा में ब्रितानी भारत आर देशी रियासता के सदस्य होने थे। ब्रितानी भारत के सदस्या का चुनाव प्रातीय विधान परिषदा के निचल सदन द्वारा किया जायगा। रियासता के सदस्या का मनोनयन सरकार करेगी। सभा सरकार द्वारा निर्मित संविधान को स्वीकार करने आर भारत से एक संधि-व्यवस्था पर बातचीत करने को तयार थी। लेकिन उसम एक व्यवस्था यह थी कि यदि कोई प्रात भारतीय सघ से अलग रहना चाहे ता रह सकता है आर ब्रिटेन स सीधी बातचीत कर सकता है। युद्ध के दार मे किसी तरह का सवैधानिक परिवर्तन करन का प्रस्ताव नहीं रखा गया लेकिन यह उम्मीद जाहिर की गयी थी कि भारत क नेता आर राजनैतिक दल एक 'राष्ट्रीय सरकार' के गठन आर सचालन में सहयोग करने के लिए तयार होंगे। सुरक्षा मत्री भारतीय होगा लेकिन उसक वास्तविक सैनिक पक्षों की देखभाल ब्रितानी प्रधान सनापति करते रहग।

इस घोषणा को सभी राजनीतिक दलों ने अस्वीकृत कर दिया हालाकि उनके कारण भिन्न आर प्राय एकदम अतर्विरोधी थे। काग्रेस से यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी कि वह प्रातो के भारतीय सघ म न मिलने के सिद्धात को स्वीकार करे। लेकिन कार्यकारिणी समिति ने आत्मनिर्णय के जनतात्रिक सिद्धात को स्वीकार किया। अत अपभा स आगे बढ़कर उसने अपन प्रस्ताव में कहा, "कार्यकारिणी देश की किसी क्षेत्रीय इकाई को उसकी घोषित आर मान्य इच्छा के विरुद्ध भारतीय सघ मे बने रहने के लिए दबाव डालने की बात साच नहीं सक्ती।" काग्रेस ने संविधान सभा मे मनानीत सदस्या का लाया जाना भी स्वीकार नहीं किया। सबसे बडी बात यह थी कि उसने भविष्य के वायदा पर विश्वास नही किया। उसने उसी वक्त राजनैतिक सत्ता में एक निश्चित हिस्सा चाहा। विदेशी भूमि पर लडन के मूल्य के रूप म उसने दश में तत्काल स्वशासी सरकार स्थापित करनी चाही। दूसरी तरफ मुस्लिम लीग ने प्राता के भारतीय सघ स अलग बने रहने की सभावना का स्वागत किया। कारण यह था कि उसम परोक्ष रूप म यह स्वीकार किया गया था कि यदि मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्र चाह तो भारतीय सघ स अलग अपना एक स्वतत्र सघ बना सकत ह। लेकिन लीग ने प्रस्ताव की आलाचना इस वजह से की कि संविधान का मसविदा तयार करन के लिए जा विधि अपनाई जाने वाला थी वह अस्पष्ट थी आर प्रस्ताव भी अपने आप म इतना बेलाच था कि उसमें किसी तरह के सशाधन की गुजाइश नहीं थी। हिंदू महासभा को दश के विभाजित हो जाने का भय था अत उसन प्रस्ताव का विरोध किया। सिख साम्प्रदायिकतावादियो को भय था कि मुस्लिम बहुमत वाला पजाब भारतीय सघ से बाहर रहने का निर्णय करेगा। आबेडकर आर सी एम राजा यह साचकर भयभीत थ कि अछूतो को सवर्ण हिंदुआ की मर्जी पर छोड दिया जायेगा क्याकि विशेष ढग स यह नहीं बताया गया था कि प्रशासन पर भारतीया का कितना नियत्रण होगा। अत सभी का प्रस्ताव अनिश्चित समय के लिए अस्पष्ट आर असतोषजनक लगा। स्वायत्त सरकार के प्रस्ताव द्वारा कुछ विशेष न मिलन की स्पष्ट जानकारी बाद में तब हुइ जब अकस्मात क्रिप्स ने यह स्पष्टीकरण

दिया कि ब्रितानी सरकार का इरादा केवल वायसराय की कार्यकारी समिति का विस्तार करना था। उन्होंने बातचीन के प्रारंभिक दौर में 'राष्ट्रीय सरकार' और 'मंत्रिमंडल' का जिक्र किया था। अनत प्रस्ताव अस्वीकृत हो गये और क्रिप्स मिशन गतिरोध को समाप्त करने में असफल रहा।

सन् 1942 का विद्रोह

क्रिप्स मिशन की असफलता ने देश को विषाद और आक्रोश का शिकार बना दिया। लगभग सभी क्षेत्रों में निराशा थी। अपवाद केवल मुस्लिम लीग और वे व्यक्ति थे जिन्होंने रोजगार के बढे हुए अवसरों का लाभ उठाया और युद्ध में ठेकेदारी करके खूब धन कमाया। लेकिन प्रश्न यह था कि अगला कदम क्या हो? निष्क्रियता असह्य था।

गांधीजी ने क्रिप्स के प्रस्ताव में बहुत दिलचस्पी नहीं ली थी लेकिन उसकी असफलता से उन्हें भी बड़ी निराशा हुई। दक्षिण पूर्व एशिया की बदलती हुई स्थिति से भी वह परेशान थे। ब्रिटेन मलाया सिंगापुर और बर्मा से पीछे हट गया था। उसके बाद बंगाल पर कोई प्रतिरोध नहीं रह गया और जापान वहां के लिए सब कुछ हो गया। इसी से मिलता-जुलता अभिशाप ने फिलीपाइन्स और इंडोनेशिया को ग्रस लिया था। 'तगड़ा सुरक्षा' के नाम पर 'स्कार्चड् अर्थनीति' के कारण देश पूरी तरह बरबाद हो गये थे। (स्कार्चड् अर्थनीति सेना की वह नीति होती है जिसके अनुसार वह पीछे हटते हुए सारी चीजों को स्वयं इसलिए नष्ट करती जाती है ताकि बढ़ती हुई शत्रु की सेना उसका लाभ न उठा सके)। यह सोचकर यदि सीमांत पर आक्रमण हुआ तो बंगाल में हजारों की संख्या में नदियों में पड़ी हुई छोटी नाव दुश्मन के हाथ लग जायगी ब्रितानी सरकार ने उन्हें नष्ट कर दिया था। उसके बाद जो विपत्ति पैदा हुई वह भयंकर थी। यह प्रमाण भारत के सामने था और वह सोच सकता था कि वैसी स्थिति में भविष्य 'कैसा होगा'। न केवल बंगाल की अर्थव्यवस्था बुरी तरह लड़खड़ा गया थी बल्कि खाद्यान्नों के बटवारे में भी एक बड़ा संकट पैदा हो गया था। गांधीजी और कांग्रेस के नेता बेचैनी के साथ चाहते थे कि जो कुछ मलाया और बर्मा में घटित हुआ उसकी भारत में पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। जब जनता को सैनिक आक्रमण का सामना करना पड़ा था तो वह भय और आतंक का शिकार हो गयी। उन्होंने संकट का चुनौती के साथ सामना नहीं किया। भारत को ऐसी स्थिति से भी बचाना चाहिए था। गांधीजी इस नतीजे पर पहुंचे कि भारतीय जनता के मन से इस भय को दूर भगाने और आक्रमण का मुकाबला करने के लिए तैयार करने का यही एक रास्ता हो सकता है कि उसके दिमाग में यह बैठा दिया जाये कि वह अपनी मालिक खुद है और देश की रक्षा करना उसका दायित्व है। वह इस विश्वास पर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकती कि सुरक्षा की जिम्मेदारी ब्रिटेन की है। अतः उन्होंने ब्रितानी सरकार से भारत छोड़ देने और सत्ता को भारतीयों के हाथ सौंप देने की मांग के साथ एक आंदोलन शुरू करने का फैसला किया।

उन्होंने इसकी व्याख्या की "मै जानता हू कि ऐसे नाजुक वक्त पर इस अद्भुत विचार से बहुत से लोग स्तंभित हुए है। यदि मुझे अपने प्रति ईमानदार रहना था तो पागल करार दिय जाने का खतरा माल लकर भी मुझे सच्चाई की बात करनी थी। मै इसे युद्ध आर भारत का विपत्ति से मुक्त करने म अपनी ठोस देन मानता हू।

बहुत से नेताओं का ख्याल था कि वह अवसर ऐसी सख्त माग के लिए उपयुक्त नहा था। एक तरफ उन्ह आतक और अराजकता के परिणामों का ओर दूसरी तरफ जापान तथा दूसर निर्दयी दुश्मनो द्वारा भारतीय जनता को निस्सहाय दासता में जकड देने का भय था। नहरू अभी भी दूसरी तरह से सोच रह थे। क्रिप्स मिशन की असफलता ने नताओं का दश की सुरक्षा म पूरी तरह सहयोग करने का अवसर प्राप्त करने से वंचित कर दिया था। क्या दश को ऐसी व्यापक उथल पुथल के हवाले कर देना था जिसका नतीजा फासिस्टवाद विरोधी कदम उठान वाल मित्र राष्ट्रों की पराजय हो? नेहरू की विशेष चिता यह थी कि भारत पर आधिपत्य जमान वाले साम्राज्यवादी ब्रिटेन से युद्ध आर जमनी-जापान से लडने वाले रूस आर चीन का साथ छोड देने म से किसका चुनाव किया जाये। तर्क और बहस-मुबाहिसे बहुत लबे आर तीखे थे। गाधाजी दृढ थे लेकिन समझाने-बुझाने पर भी अत्यधिक बल दे रह थे। उन्होने इस बात पर रजामदी जाहिर की कि यदि राजनैतिक सत्ता फौरन भारत को साप दी जाती ह तब ब्रितानी सनाए भारत म रह सकती है और ऐसे अड्ड भी दिये जा सक्ते ह जहा स वे अपना युद्ध सचालन कर सके। यदि यह भी स्वीकार नहीं किया गया तो वह काग्रेस छोड देगे आर "भारत की बालू से एक ऐसा आदालन पेदा करगे जो खुद काग्रस से ही बडा हागा।

जुलाई के प्रारभ में वर्धा म काग्रेस की कार्यसमिति की बैठक हुई और राष्ट्रीय माग का मसविदा तयार हुआ। समिति न ब्रिटेन से माग की कि वह फारन सत्ता भारतीयों को साप कर भारत छोड दे। अगर प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया ता "काग्रेस न चाहते हुए भी सन् 1920 से अर्जित अपना सारी अहिसक शक्ति का इस्तेमाल करके सीधी कार्रवाई का आदालन शुरू करगी।" 7 अगस्त को इस नीति सबधी फसले का अनुमोदन करन के लिए बबई म अखिल भारतीय काग्रेस समिति की बैठक बुलाई गयी।

इस बीच चीन की तीनों सेनाओं क प्रधान जनरल च्याग काई शक आर अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट न ब्रिटेन का भारत में सबध बना लेने और गतिरोध खत्म करने क लिए समझाने-बुझाने की कोशिश की। लेकिन चर्चिल किसी की भी सुनने को तयार नहीं थे। उन्होंने खुलआम घोषणा की कि उन्हें सम्राट का प्रधानमत्री इसलिए नहीं बनाया गया ह कि वह ब्रितानी साम्राज्य का बटाधार कर द।

अखिल भारतीय काग्रेस का अगस्त 1942 का बबई का अधिवेशन एतिहासिक बन गया है। उसी में मशहूर भारत छोडो प्रस्ताव पास हुआ। जो भी हो माग तो थोथी आर दुराग्रहपूर्ण नहीं थी। उसम युद्ध की तयारी म सहयोग देन का प्रस्ताव था। उसने सरकार को तत्काल कदम उठान का चुनौती भी दी "भारत की स्वतत्रता की घोषणा के साथ एक स्थायी सरकार

गठित हो जायेगी और स्वतंत्र भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का एक मित्र बनेगा। मुस्लिम लीग से वायदा किया गया कि ऐसा संविधान बनेगा जिसमें संघ में शामिल होने वाली इकाइयों को अधिक से अधिक स्वायत्तता मिलेगी और बचे हुए अधिकार उसी के पास रहेंगे। प्रस्ताव का अंतिम अंश था : देश ने साम्राज्यवादी और एकतंत्रवादी सरकार के विरुद्ध अपनी इच्छा जाहिर कर दी है। अब उस उस बिंदु से लौटाने का बिलकुल औचित्य नहीं है। अतः समिति अहिंसक ढंग से, जहां तक संभव हो सके, व्यापक धरातल पर जनसंघर्ष शुरू करने का प्रस्ताव स्वीकार करती है : यह संघर्ष अनिवार्यतया गांधीजी के नेतृत्व में होगा।"

प्रस्ताव पास होने के बाद गांधीजी ने उपस्थित प्रतिनिधियों को संबोधित किया। अपने भाषण के दौरान उन्होंने कहा : "वास्तविक संघर्ष इसी क्षण नहीं हो रहा है। आपने महज मेरे हाथ में कुछ अधिकार दे दिये हैं। मेरा पहला काम वायसराय से मिलना और उनसे कांग्रेस की मांग स्वीकार करने के लिए पैरवी करना होगा। इसमें दो या तीन हफ्ते लग सकते हैं। आप इस बीच के समय में क्या करने जा रहे हैं? चरखा है : लेकिन कुछ और भी है जिसे आप को करना है। इसी क्षण से आप में से हर स्त्री पुरुष को अपने को स्वतंत्र महसूस करना चाहिए। इस तरह मानो आप साम्राज्यवाद के जुए के अंदर बिलकुल नहीं हैं।"

लेकिन सरकार ने गांधीजी के वायसराय से मिलने तक का इंतजार नहीं किया। सरकारी मशीनरी को बिल्कुल तैयार रखा गया। वह राक्षसी क्रोध में बिजली जैसी रफ्तार से सक्रिय हो गयी। 8 अगस्त की रात कांग्रेस की बैठक रात में देर से खत्म हुई थी। उसके कुछ ही घंटों के भीतर गांधीजी और कांग्रेस कार्य समिति के नेताओं को गिरफ्तार करके एक विशेष रेलगाड़ी द्वारा बंबई से बाहर भेज दिया गया। गांधीजी को पूना में आगा खां पैलेस में रोक लिया गया और शेष नेता अहमदनगर किले में नजरबंद कर दिये गये।

9 अगस्त की सुबह एक 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव और नेताओं की गिरफ्तारी की खबर जनता तक पहुंच गयी। वह एकदम अवाक् और स्तंभित हो गयी। पुलिस की प्रतिक्रिया तात्कालिक थी। वह स्वतः प्रेरित ढंग से अपने (कु)कर्तव्य के पालन में जुट गयी। जिंदगी में ठहराव आ गया और सारे कार्यकलाप रुक गये। हर शहर और कस्बे में हड़ताल हुई। हर जगह प्रदर्शन हुए। जुलूस निकले। हवा में नेताओं की रिहाई की मांग करने वाले राष्ट्रीय गीत और नारे गूंज उठे। उत्तेजित और क्रुद्ध होने के बावजूद कुल मिलाकर जनता शांतिपूर्ण थी। लेकिन तनाव था और भीड़ के बड़े आकार को देखकर ही सरकार घबरा गयी। जब भी भीड़ ने तितर-बितर हो जाने के पुलिस के आदेश की अवहेलना की, पुलिस ने गोली चलाई। सिर्फ दिल्ली में 11 और 12 अगस्त के दो दिनों के विभिन्न मौकों पर पुलिस ने निहत्थी भीड़ पर 47 बार गोलियां चलायीं। 76 आदमी मारे गये और 114 घायल हुए। सारे देश में एक ही दृश्य था—जनता का प्रदर्शन, पुलिस की हिंसा, गोलीचालन और गिरफ्तारी।

बहुत जल्द ही परिस्थिति नियंत्रण से बाहर हो गयी। अधिकांश नेता जेलों में थे, कुछ छिप गये थे। जनता की उत्तेजना अपने शिखर पर थी और कोई उसका नेतृत्व करने वाला

नहीं था। अलग अलग व्यक्तियो और गुटो ने भरसक अपनी समझ से परिस्थिति का आकलन किया और उसके अनुसार काम किया। पुलिस के निरंतर दमन और अध्यादेश राज ने जनता की भावना को और उभार दिया। काग्रेस ने नागरिक अवज्ञा का आह्वान नहीं किया था। अत अलग अलग व्यक्तियों ने आक्रोश भरी चुनौती के रूप में जो कार्रवाई शुरू की वह बढ़कर एक आदोलन में बदल गयी और फिर आदोलन ने विद्रोह का रूप ले लिया।

विद्रोह मे अगुवाई छात्रों मजदूरों और किसानो ने की। कारखानो और स्कूल-कालजो मे हडतालें हुई। ब्रितानी शासन का प्रतीक समझे जाने वाले पुलिस थानो डाकखानो और रेलवे स्टेशनों पर आक्रमण किये गये। उनमें आग लगाई गयी। उन्हे ध्वस्त किया गया। बाद मे तोडफोड की भी कुछ कार्रवाइया हुई। टेलीफोन के तार काटने और रेल की पटरी उखाड़ने की कोशिश हुई। किसानो को निरतर कर न चुकाने के लिए उद्बोधित किया जाता रहा। बहुत से क्षेत्रों मे किसानो ने वैकल्पिक सरकारें बनाई और वहा कई कई दिनो या हफ्तो तक ब्रितानी सरकार की प्रशासनिक इकाइयों का अस्तित्व नहीं रहा। बलिया शहर पर स्थानीय नेताओं ने कब्जा कर लिया और उन्हें भगाने के लिए सेना की टुकड़ी बुलानी पडी। मुनहटा और कर्नाटक में किसानो ने छिप कर ब्रितानी शासन के प्रतिरोध मे गुरिल्ला कार्रवाईया शुरू की और यह क्रम सन् 1944 तक चलता रहा। व्यापक पैमाने पर क्रातिकारी हिसा हुई। विद्रोह केवल ब्रितानी भारत तक ही सीमित नहीं रहा। रियासतो मे भी बहुत से लोग इससे प्रभावित हुए। सरकार ने अपना गुस्सा दिखाया और आतक तथा जोरजुल्म की बागडोर ढीली कर दी गयी। लाठी-गोलीचालन और बडी सख्या में गिरफ्तारियो का सिलसिला इतना तेज और आम हो गया कि देश एक पुलिस राज मे बदल गया। अनेको अवसरो पर निहत्थी भीड पर हवाई जहाज से मशीनगन द्वारा गोलिया चलाई गई। पुलिस का अत्याचार रोज की घटना हो गयी। सामूहिक जुर्माने और मुकदमे की सक्षिप्त सुनवाई करके लोगो को सजा देना आम बात हो गयी। विद्रोह थोडे समय तक चला लेकिन यह काफी तेज रहा। सरकार उसे दबा देने मे सफल हुई लेकिन पुलिस और सेना की गोलियो से 10 हजार से अधिक लोगो को मार डालने के बाद देश मे सन् 1857 के बाद इतना भयकर और देशव्यापी दमन नहीं हुआ था।

सन् 1942 का विद्रोह सफल नहीं हुआ क्योंकि बिना नेतृत्व वाली असगठित और निहत्थी जनता साम्राज्यवादी सरकार की बडी शक्ति से जीत नहीं सकती थी। लेकिन विद्रोह से दो उपलब्धिया हुई। उसने साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारत के आक्रोश और स्वतत्र होने के सकल्प को प्रभावशाली और सुनिश्चित ढग से व्यक्त किया। उसने जीवन तराजू से तोल कर यह बता दिया कि देश में राष्ट्रीयता की भावना उस सीमा के पार पहुच चुकी है जहा पर जनता अपनी स्वतत्रता के अधिकार के लिए बडी से बडी तकलीफ उठाने और बलिदान करने को तैयार है। दूसरे यह कि सन् 1942 के विद्रोह के बाद ब्रितानी शासकों के दिमाग में यह बात अच्छी तरह आ गयी कि भारत में उनके साम्राज्यवादी शासन के सिर्फ गिने चुने दिन रह गये है।

सन् 1942 का आदोलन एक अर्थ में भारत के स्वतत्रता आदोलन की समाप्ति का परिचायक

है। अगस्त 1942 के विद्रोह के बाद प्रश्न सिर्फ यह तय करने के समय का रह गया था कि सत्ता का हस्तानातरण किस तरीके से हो आर स्वतन्त्रता के बाद सरकार का स्वरूप क्या हो? इसमे कोई संदेह नहीं कि सन् 1942 के विद्रोह आर 1947 म स्वतन्त्रता मिलने के बीच के समय म साठ-गाठ बनाने आर सादेबाजी करने के अनेको प्रयास आर राजनैतिक परिवर्तन हुए। लेकिन इस तथ्य म कोइ संदेह नहा रह गया था कि स्वतन्त्रता संग्राम अपनी समाप्ति पर था और विजय मिलने ही वाली थी।

शिमला सम्मेलन

सन् 1945 मे वसन्त के अत तक यूराप में युद्ध समाप्ति पर था। भारतवर्ष म लिन लिथगो की जगह पर वेवेल वायसराय बन गये थ। वेवेल एक पेशेवर सिपाही थे और लिनलिथगो के वायसराय काल मे भारत के मुख्य सेनापति थे। उस वक्त सनिक विशेषज्ञो का मत था कि युद्ध कुछ दिनो तक चल सकता है यानी कम से कम एक साल तक आर एक सनिक के रूप म वेवल ने स्वय इस मत स सहमति व्यक्त की। अगस्त 1945 म परमाणु अस्त्र भी इस्तेमाल मे आये लेकिन जिस नाटकीय ढग स एशिया म युद्ध का अत हुआ उसके राज का पता नही चला। एशिया मे युद्ध के चलते रहने का मतलब हाना भारतीय सैनिक अड्डा और उसके साधनों का अधिक से अधिक इस्तेमाल और लाभ। देश म उस वक्त की राजनैतिक परिस्थिति को ध्यान म रखते हुए वेवेल ने गतिरोध का तोडने आर भारत का जनता तथा उसके नेताओ को जापान के विरुद्ध युद्ध मे हिस्सा लेने के लिए तयार करने का एक रास्ता ढूढ निकालना आवश्यक समझा।

अप्रल 1945 म यूराप म युद्ध खत्म हो गया। चर्चिल ने त्यागपत्र दे दिया। नये चुनाव होने वाले थे। 14 जून को 1945 क भारतीय विधयक के ढाचे के अतर्गत 'कुछ आर सवधानिक सुधार लाने के प्रस्तावो' की घोषणा की गयी। काग्रेस कार्यसमिति के सभी सदस्यो को रिहा कर दिया गया। गाधीजी पर नजरबन्दी का जो आदेश था वह उसके पहले ही उठा लिया गया था। राजनैतिक नेताओ के प्रतिनिधियो की एक बैठक करने का फसला हुआ जो 25 जून को शिमला म शुरू होने वाली थी।

प्रस्ताव कुछ दूर तक समन्वय पैदा करने वाले थ लेकिन एक अर्थ म असतोषजनक और भडकाने वाले थ। वायसराय की कार्यकारी समिति म उन्हे आर प्रधान सेनापति को छोडकर शेष सभी सदस्य भारतीय होने वाले थ। अधिकारिक आर वायसराय के विशेषाधिकार खत्म नही किये जाने वाले थे लेकिन यह आश्वासन दिया गया था कि उनका इस्तेमाल विवेकहीन तरीके से नहीं किया जायगा। इस सीमा तक यह कुछ प्रगतिशील था। उसके बाद आइ विभाजक प्रवृत्तिया। प्रस्ताव के अनुसार समिति म मुसलमानो आर सवर्ण हिंदुओं का अनुपात बराबर होगा। इसका मतलब यह था कि मुस्लिम लीग को राजनैतिक समानता के बदले साम्प्रदायिक

समानता की माग को पहली बार ब्रितानी नीति की सरकारी घोषणा म अनुमोदन किया गया था। लकिन प्रस्ताव के संवैधानिक समझौते पर पहुचने या उसे आरोपित करने के प्रयत्न नहीं थे। उन पर शिमला सम्मेलन मे विचार विमर्श किया जाना था। सम्मेलन का शुरुआत के साथ एक उम्मीद बधी थी लेकिन शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि जिन्ना की हठधर्मिता और साम्प्रदायवादियो की पिछले दरवाजे से की हुई कार्रवाइ के कारण सफलता असभव है। समझौता वार्ता जिन्ना के इस दुराग्रह के कारण टूट गयी कि कार्यकारी समिति के सारे मुसलमान सदस्यों का मनोनयन सिर्फ लीग करेगा। ब्रितानी सरकार ऐसे किसी समझौते पर हस्ताक्षर करने को तैयार नहा था जिसमें मुस्लिम लीग एक पक्ष न हो। फूट डालो और राज करो की नीति अपने शिखर पर था।

आजाद हिंद फौज

सन् 1942 के आदोलन के कुचल-दिये जाने के बाद से लेकर सन् 1945 मे युद्ध के अत तक देश म मुश्किल से कोई राजनैतिक गतिविधि रही। सारे लोकप्रिय नेता जेल म थ और परिस्थिति ऐसी नहीं थी, जिसम नया नेतृत्व सामने आ सके। आमतौर पर असंतोष और खिन्नता की भावना थी हालांकि अप्रकट रूप से भीतर भीतर आग सुलग रही थी। युद्ध आगे खिचा लेकिन राष्ट्रीय आदोलन में ठहराव आ गया था।

सुभाषचद्र बोस रूस से भारत की स्वतन्त्रता के संघर्ष में मदद लेने के उद्देश्य से मार्च 1941 मे चुपचाप देश से चले गये थे। लेकिन जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया और वह मित्र राष्ट्रों में शामिल हो गया। सुभाष बाबू रूस से इस उद्देश्य से जर्मनी चले गये कि वहा पर मदद प्राप्त कर सके। जर्मनी से थोडे आश्वासन पाकर वह जापान गये ताकि उसकी मदद से भारत मुक्ति युद्ध का सगठन कर सके। ब्रितानियो ने भारतीय अफसरो और सैनिको को छोडते हुए मलाया और बर्मा को खाली कर दिया था। इसी बीच जापान ने उन सैनिको और अफसरो को मिलाकर आजाद हिंद फौज का सगठन करने की कोशिश की। जापानियो ने सिर्फ मलाया म 60 हजार अफसरो-सैनिको का बदी बनाया था। दक्षिण-पूर्व एशिया के देशो म जो भारतीय नागरिक रहते आये थे व भी देश लौट आने म असमर्थ होकर भटक रहे थे। सुभाषचद्र बोस ने इस सेना का नेतृत्व अपने हाथ म लिया। इसने जापानियों के साथ मिलकर भारत की तरफ बढ़ना शुरू किया। आजाद हिंद फौज के अफसरो और सैनिको म देशभक्ति की भावना थी और उन्होंने मुक्तिदाता के रूप म भारत म प्रवेश करना चाहा। सुभाषचद्र बोस स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार के अध्यक्ष होने वाले थे।

जापान की पराजय के साथ आजाद हिंद फौज की योजना असफल हो गयी। टोक्यो जाते हुए हवाई जहाज की एक दुर्घटना में सुभाष चद्र बोस की मृत्यु हो गयी। यह सही है कि बहुत से नेताओ ने जापान और उसके फासिस्टवादी मित्रो की सहायता से भारत की स्वतन्

समानता की माग का पहली वार ब्रितानी नीति की सरकारी घोषणा म अनुमोदन किया गया था। लकिन प्रस्ताव के संवैधानिक समझौते पर पहुचने या उसे आरोपित करने क प्रयत्न नहीं थे। उन पर शिमला सम्मेलन मे विचार विमर्श किया जा रहा था। सम्मेलन की शुरुआत के साथ एक उम्मीद वधा थी लेकिन शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि जिन्ना की हठधर्मिता और साम्राज्यवादियो की पिछले दरवाजे से की हुई कार्रवाई के कारण सफलता असभव है। समझौता वार्ता जिन्ना क इस दुराग्रह के कारण टूट गयी कि कार्यकारी समिति क सारे मुसलमान सदस्यो का मनोनयन सिर्फ लीग करेगी। ब्रितानी सरकार एस किसी समझौते पर हस्ताक्षर करने को तयार नहीं था जिसमें मुस्लिम लीग एक पक्ष न हो। फूट डालो ओर राज करो की नीति अपन शिखर पर था।

आजाद हिंद फौज

सन् 1942 के आन्दोलन के कुचल-दवा दिये जाने के वाद से लेकर सन् 1945 में युद्ध के अत तक दश म मुश्किल से कोई राजनतिक गतिविधि रही। सारे लोकप्रिय नता जेल म थे और परिस्थिति ऐसी नहीं थी जिसम नया नेतृत्व सामन आ सके। आमतार पर असतोष आर खिन्नता की भावना थी हालांकि अप्रकट रूप से भीतर भीतर आग सुलग रही थी। युद्ध आगे खिचा लेकिन राष्ट्रीय आदोलन मे ठहराव आ गया था।

सुभाषचद्र बोस रूस से भारत की स्वतत्रता के सघर्ष में मदद लेने के उद्देश्य स मार्च 1941 में चुपचाप देश से चल गये थे। लेकिन जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया ओर वह मित्र राष्ट्रो में शामिल हो गया। सुभाष वाबू रूस से इस उद्देश्य से जर्मनी चल गये कि वहा पर मदद प्राप्त कर सकें। जर्मनी से थाडे आश्वासन पाकर वह जापान गये ताकि उसकी मदद स भारत मुक्ति-युद्ध का सगठन कर सक। ब्रितानिया ने भारतीय अफसरो आर सनिको को छोड़ते हुए मलाया आर वर्मा को खाली कर दिया था। इसी वीच जापान न उन सनिकों ओर अफसरा को मिलाकर आजाद हिंद फौज का सगठन करन की कोशिश की। जापानिया ने सिर्फ मलाया में 60 हजार अफसरा सनिको को वदी वनाया था। दक्षिण पूर्व एशिया क दशो म जो भारतीय नागरिक रहत आये थे व भी देश लाट आन म असमर्थ होकर भटक रह थे। सुभाषचद्र वास ने इस सेना का नेतृत्व अपने हाथ म लिया। इसने जापानिया के साथ मिलकर भारत का तरफ वढना शुरू किया। आजाद हिंद फाज क अफसरों आर सनिको म देशभक्ति की भावना थी आर उन्हाने मुक्तिदाता क रूप म भारत म प्रवेश करना चाहा। सुभाषचद्र वास स्वतत्र भारत की अस्थायी सरकार के अध्यक्ष हान वाले थे।

जापान की पराजय के साथ आजाद हिंद फोज की योजना असफल हो गयी। ताइयो जाते हुए हवाई जहाज की एक दुर्घटना म सुभाष चद्र बास की मृत्यु हो गया। यह सही है कि बहुत से नेताओं ने जापान आर उसके फासिस्टवादी मित्रा की सहायता स भारत को स्वतत्र

कराना पसन्द नहीं किया लेकिन युद्ध के अंतिम वर्षों में सुभाष चंद्र बोस और आजाद हिंद फौज ने भारत में उन राष्ट्रवादियों की हताश भावना को ढाढस बंधाया जो निराशा और असहायता से त्रस्त थे। उन्होंने सेना के जवान और भारतीय जनता के हर वर्ग के सामने साहस और देशभक्ति की एसी मिसाल रखी जो प्रेरणा देने वाली भी थी और मर्यादा से जोड़ने वाला भी।

इसलिए जब सरकार ने आजाद हिंद फौज के कुछ अफसरों के विरुद्ध ब्रितानी शासन की वफादारी की शपथ तोड़ने और विश्वासघात करने के आरोप में मुकदमा चलाने की घोषणा की तो राष्ट्रवादी विरोध की लहर फैल गयी। सारे देश में विशाल प्रदर्शन हुए। अफसरों को रिहा कर देने की निरंतर मांग की गयी। न केवल कांग्रेस बल्कि सभी राजनैतिक दलों ने मुकदमे की सुनवाई का विरोध किया। आजाद हिंद फौज के अफसरों की रिहाई की जोरदार आवाज उठाई। कांग्रेस ने भूलाभाई देसाई तेज बहादुर सप्रू कैलाशनाथ काटजू और आसफ अली सरीखे प्रख्यात वकीलों को मिलाकर आजाद हिंद फौज बचाव समिति का संगठन किया। जिस समय दिल्ली के लाल किले के एतिहासिक कक्ष में ये राष्ट्रवादी सेना सैनिक अफसरों के बचाव में खड़े हुए सारे देश की नजरें उधर ही टिकी थीं। सभी 'क्या होगा' के अहसास से बंधे हुए थे। सैनिक अदालत ने अफसरों को दोषी करार देकर सजा दे दी। लेकिन सारा देश भावना के ऐसे गहरे आवेग में था कि सरकार को उसके सामने हथियार डाल देने पड़े थे। सजा खत्म कर दी गयी और सैनिक अफसरों को रिहा कर दिया गया।

संघर्ष का अंत

युद्ध की समाप्ति के साथ यह स्पष्ट था कि भारत की स्वतंत्रता को ज्यादा टाला नहीं जा सकता। देश में और देश के बाहर बहुत से ऐसे परिवर्तन हुए जिनके कारण ब्रिटेन को इस स्थिति का कायल होना पड़ा। सोवियत संघ और अमरीका दोनों महाशक्तियों के रूप में उभरे थे और दोनों ही भारतीय स्वतंत्रता के पक्ष में थे। हालांकि ब्रिटेन युद्ध में विजयी हुआ था लेकिन उसकी अर्थव्यवस्था और सैनिक शक्ति बुरी तरह लड़खड़ा उठी थी। उसे पुनर्गठन और पुनर्स्थापना के लिए समय की आवश्यकता थी। उसकी जनता खासतौर पर उसके सैनिक कर्मचारी युद्ध से थक गये थे और साम्राज्य की रक्षा के लिए मुसीबतों में पड़े रहने को तैयार नहीं थे। चुनाव में कन्जरवेटिव दल पराजित हो चुका था और सत्ता लेबर दल के हाथ में आ गया थी। यह दल भारतीयों की मांग स्वीकार करने के पक्ष में था। ऐसा सोचने का सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि भारत में परिस्थिति बिल्कुल बदल गया थी और ब्रिटेन के लिए उस पर आगे कब्जा जमाये रखना संभव नहीं था। आजाद हिंद फौज के मुकदमे की सुनवाई से निर्णयात्मक ढंग से यह साबित हो गया था कि राष्ट्र का दमन के भय से कब्जे में नहीं रखा जा सकता। वह अस्पष्ट वायदों से संतुष्ट नहीं होगा। भारत की युद्ध की भावना उभर गयी थी और यदि राष्ट्रवादियों की मांगें ठीक ढंग से स्वीकार नहीं की गयीं तो परिस्थिति विस्फोटक हो जायेगी। फरवरी 1946 में बंबई में भारतीय नौसेना के अनापित नाविकों का विद्रोह भारतीय वायुसेना में हड़ताल और

जबलपुर के भारतीय सिगनल कोर के असतोष की अभिव्यक्ति इन सभी ने इसकी बिना शुबहा सिद्धि कर दी थी। यहा तक कि पुलिस और शासनतत्र ने भी अपने राष्ट्रवादी झुकाव की अभिव्यक्ति करना शुरू कर दिया था। उनकी मदद से राष्ट्रीय आदोलन का दबाना या खत्म करना खतरे से खाली नहीं होता। इसके अलावा सारे ब्रितानी भारत और रियासतो मे हडतालो और प्रदर्शनो की सख्या बढती जा रही थी।

अत ब्रितानी सरकार ने सत्ता का हस्तातरण करने और उससे सबद्ध तात्कालिक और लबे समय की व्यवस्थाओं के विवरण तयार करने का फैसला किया। उसने एक मत्रिमडलीय मिशन भारत भेजा। विभिन्न दलों और सगठनो के प्रतिनिधि नेताओ से लबे और विस्तृत विचार-विमर्श के बाद मिशन ने अपनी योजना घोषित की जिसे काग्रेस और मुस्लिम लीग दोनो ने स्वीकार किया। लेकिन बाद मे योजना के अर्थ को लेकर मतभेद पदा हो गये। वेवल उत्सुक थे कि अतरिम सरकार की स्थापना जितनी जल्दी सभव हो कर दी जानी चाहिए। अनत सितबर, 1946 मे जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व मे काग्रेस ने ऐसी सरकार का गठन किया। अक्तूबर मे मुस्लिम लीग भी मत्रिमडल मे शामिल हो गयी लेकिन उसने सविधान निर्माण मे शामिल न होने का फैसला किया। ब्रितानी प्रधानमत्री क्लीमेंट एटली ने 20 फरवरी 1947 को घोषणा की कि ब्रिटेन अधिक से अधिक जून 1948 तक सत्ता भारत को सौप देगा।

सत्ता के हस्तातरण की व्यवस्था करने के लिए लार्ड लुई माउटबेटेन को वायसराय बनाकर भारत भेजा गया। काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच भयकर मतभेद पैदा हो गये थे लेकिन इसके बावजूद उन्होंने एक समझौता योजना तैयार कर ली। साथ ही सत्ता के हस्तातरण की तारीख भी निश्चित कर दी जो घोषित तिथि से साल भर से अधिक पहले की थी। भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतत्र होगा लेकिन उसका विभाजन हो जायेगा। पश्चिमी क्षेत्र के पजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रात सिध और बलूचिस्तान और बगाल का पूर्वार्द्ध और आसाम का सिलहट जिला मिलाकर पाकिस्तान नाम का एक स्वतत्र देश बनेगा (और उसका उद्घाटन भी उसी समय होगा)। वसे यह व्यवस्था भी की गयी थी कि पश्चिमोत्तर सीमा प्रात और सिलहट की जनता की इच्छा का पता लगाने के लिए बाद में जनमत कराया जायगा।

स्वतत्रता मिलने का गर्व और प्रसन्नता विभाजन के दुख उदासी और उसके परिणामो में घुल गयी। लेकिन राष्ट्र निराश नहीं था। स्वतत्रता तो पहला कदम था। भारत ने आत्मविश्वास निष्ठा और उम्मीद के साथ स्वतत्रता जनतत्र और सामाजिक न्याय की चुनौतियो का मुकाबला करने के लिए अपने कदम बढाना शुरू किया।

कराना पसद नहीं किया लेकिन युद्ध के अतिम वर्षों म सुभाष चद्र बोस और आजाद हिंद फाज ने भारत म उन राष्ट्रवादियो की हताश भावना को ढाढस बधाया जो निराशा आर असहायता से त्रस्त थे। उन्होंने सेना के जवान आर भारतीय जनता क हर वर्ग क सामने साहस आर देशभक्ति की ऐसी मिसाल रखी जा प्ररणा दने वाली भी थी आर मर्यादा से जोडन वाली भी।

इसलिए जब सरकार ने आजाद हिंद फाज के कुछ अफसरों के विरुद्ध ब्रितानी शासन की वफादारी की शपथ तोडन और विश्वासघात करन क आरोप में मुकदमा चलाने की घोषणा की तो राष्ट्रवादी विरोध की लहर फल गयी। सारे देश मे विशाल प्रदर्शन हुए। अफसरा को रिहा कर देने की निरतर माग की गयी। न केवल काग्रेस वल्कि सभी राजनैतिक दलों ने मुकदमे की सुनवाई का विरोध किया। आजाद हिंद फाज क अफसरों की रिहाई की जोरदार आवाज उठाई। काग्रेस न भूलाभाइ देसाई तेज बहादुर सप्रू कैलाशनाथ काटजू आर आसफ अली सरीखे प्रख्यात वकीला का मिलाकर आजाद हिंद फाज बचाव समिति का सगठन किया। जिस समय दिल्ली के लाल किले के एतिहासिक कक्ष म य राष्ट्रवादी नता सनिक अफसरो क बचाव में खड हुए सारे देश की नजरें उधर ही टिकी थी। सभी 'क्या होगा' के अहसास से बधे हुए थे। सेनिक अदालत ने अफसरों को दोषी करार देकर सजा दे दी। लेकिन सारा देश भावना के ऐसे गहरे आवेग म था कि सरकार को उसके सामने हथियार डाल देने पडे थे। सजा खत्म कर दी गयी और सैनिक अफसरा को रिहा कर दिया गया।

सघर्ष का अत

युद्ध की समाप्ति के साथ यह स्पष्ट था कि भारत की स्वतन्त्रता को ज्यादा टाला नहीं जा सकता। देश म आर देश के बाहर बहुत से ऐसे परिवर्तन हुए जिनके कारण ब्रिटेन को इस स्थिति का कायल हाना पडा। सोवियत सघ और अमरीका दोनो महाशक्तियो के रूप मे उभरे थे ओर दोनों ही भारतीय स्वतन्त्रता के पक्ष म थ। हालांकि ब्रिटेन युद्ध में विजयी हुआ था लेकिन उसकी अर्थव्यवस्था आर सनिक शक्ति बुरी तरह लडखडा उठी थी। उसे पुनर्गठन आर पुनस्थापना के लिए समय की आवश्यकता थी। उसकी जनता खासतार पर उसक सैनिक कर्मचारी युद्ध से थक गये थे ओर साम्राज्य की रक्षा के लिए मुसीबतो मे पडे रहने को तैयार नहीं थे। चुनाव म कनजरवेटिव दल पराजित हो चुका था आर सत्ता लेबर दल क हाथ मे आ गयी थी। यह दल भारतीयो की माग स्वीकार करने के पक्ष म था। ऐसा साचने का सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि भारत म परिस्थिति बिल्कुल बदल गयी थी आर ब्रिटेन के लिए उस पर आगे कब्जा जमाये रखना सभव नही था। आजाद हिंद फाज के मुकदमे की सुनवाई से निर्णयात्मक ढग से यह साबित हो गया था कि राष्ट्र का दमन के भय से कब्जे मे नहीं रखा जा सकता। वह अस्पष्ट वायदों से सतुष्ट नहीं होगा। भारत की युद्ध की भावना उभर गयी थी ओर यदि राष्ट्रवादियों की माग ठीक ढग से स्वीकार नहीं की गयीं ता परिस्थिति विस्फोटक हो जायेगी। फरवरी 1946 में बबई म भारतीय नासेना के अनापित नाविको का विद्रोह भारतीय वायुसेना म हडताले ओर

जबलपुर के भारतीय सिगनल कोर के असंतोष की अभिव्यक्ति इन सभी ने इसकी बिना शुबहा सिद्धि कर दी थी। यहां तक कि पुलिस और शासनतंत्र ने भी अपने राष्ट्रवादी झुकाव की अभिव्यक्ति करना शुरू कर दिया था। उनकी मदद से राष्ट्रीय आंदोलन को दबाना या खत्म करना खतरे से खाली नहीं होता। इसके अलावा सारे ब्रिटानी भारत और रियासतों में हड़तालों और प्रदर्शनों की संख्या बढ़ती जा रही थी।

अतः ब्रिटानी सरकार ने सत्ता का हस्तांतरण करने और उससे संबद्ध तात्कालिक और लंबे समय की व्यवस्थाओं के विवरण तैयार करने का फैसला किया। उसने एक मंत्रिमंडलीय मिशन भारत भेजा। विभिन्न दलों और संगठनों के प्रतिनिधि नेताओं से लंबे और विस्तृत विचार-विमर्श के बाद मिशन ने अपनी योजना घोषित की जिसे कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने स्वीकार किया। लेकिन बाद में योजना के अर्थ को लेकर मतभेद पैदा हो गये। सब लोग उत्सुक थे कि अंतरिम सरकार की स्थापना जितनी जल्दी संभव हो कर दी जानी चाहिए। अंततः सितंबर 1946 में जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने ऐसी सरकार का गठन किया। अक्तूबर में मुस्लिम लीग भी मंत्रिमंडल में शामिल हो गयी लेकिन उसने संविधान निर्माण में शामिल न होने का फैसला किया। ब्रिटानी प्रधानमंत्री क्लार्मेंट एटली ने 20 फरवरी, 1947 को घोषणा की कि ब्रिटेन अधिक से अधिक जून 1948 तक सत्ता भारत को सौंप देगा।

सत्ता के हस्तांतरण की व्यवस्था करने के लिए लार्ड लुइ माउंटबेटेन को वायसराय बनाकर भारत भेजा गया। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच भयंकर मतभेद पैदा हो गये थे लेकिन इसके बावजूद उन्होंने एक समझौता-योजना तैयार कर ली। साथ ही सत्ता के हस्तांतरण की तारीख भी निश्चित कर दी जो घोषित तिथि से साल भर से अधिक पहले की थी। भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र होगा, लेकिन उसका विभाजन हो जायगा। पश्चिमी क्षेत्र के पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत, सिंध और बलूचिस्तान और बंगाल का पूर्वार्द्ध और आसाम का सिलहट जिला मिलाकर पाकिस्तान नाम का एक स्वतंत्र देश बनेगा (और उसका उद्घाटन भी उसी समय होगा)। वैसे यह व्यवस्था भी की गयी थी कि पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत और सिलहट की जनता की इच्छा का पता लगाने के लिए बाद में जनमत कराया जायगा।

स्वतंत्रता मिलने का गर्व और प्रसन्नता विभाजन के दुख से उत्पन्न और उसके परिणामों में घुल गयी। लेकिन राष्ट्र निराश नहीं था। स्वतंत्रता तो पहला कदम था। भारत ने आत्मविश्वास निष्ठा और उम्मीद के साथ स्वतंत्रता, जनतंत्र और सामाजिक न्याय की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए अपने कदम बढ़ाना शुरू किया।